ISSN : 2319-7137 **Volume : 15/Issue : 01**
January to June-2022

INTERNATIONAL
LITERARY QUEST

An International Multidisciplinary Peer Reviewed Refereed Research Journal

Editor in Chief
Prof. Ashok Singh

Editor
Dr. Vikash Kumar
Dr. Surendra Pandey

©सम्पादक

प्रधान सम्पादक

प्रो0 अशोक सिंह (कुलपति, संत गहिरा गुरु विश्वविद्यालय, सरगुजा, अम्बिकापुर, छत्तीसगढ़)

सम्पादक

डॉ0 विकास कुमार (असिस्टेंट प्रोफेसर, हिन्दी विभाग, श्री वार्ष्णेय महाविद्यालय, अलीगढ़, उत्तर प्रदेश)

डॉ0 सुरेन्द्र पाण्डेय (असिस्टेंट प्रोफेसर, हिन्दी विभाग, कूबा पी0जी0 कॉलेज, दरियापुर, नेवादा, आजमगढ़)

उप सम्पादक

डॉ0 रत्नेश कुमार त्रिपाठी (असिस्टेंट प्रोफेसर, इतिहास विभाग, सत्यवती कॉलेज, दिल्ली विश्वविद्यालय)

डॉ0 विनय कुमार शुक्ल (असिस्टेंट प्रोफेसर, हिंदी विभागाध्यक्ष, रामानुजप्रतापसिंह देवशासकीय स्ना.महा.,बैकुण्ठपुर,कोरिया,छ.ग.)

डॉ0 सुनील कुमार सिंह (असिस्टेंट प्रोफेसर, विभागाध्यक्ष, इतिहास विभाग, अर्मापुर स्ना. महाविद्यालय, कानपुर)

कार्यकारी सम्पादक

डॉ0 सच्चिदानन्द चौबे (एसोसिएट प्रोफेसर, अध्यक्ष, इतिहास विभाग, सिद्धार्थ विश्वविद्यालय, कपिलवस्तु, सिद्धार्थनगर, उ.प्र.)

डॉ0 अरूण कुमार मिश्रा (असिस्टेन्ट प्रोफेसर, हिन्दी विभाग, मुनीश्वरदत्त स्नातकोत्तर महाविद्यालय, प्रतापगढ़, उ.प्र.)

डॉ0 मोहम्मद आदिल (असिस्टेंट प्रोफेसर, इतिहास विभाग, भवन्स मेहता पी.जी. कालेज, कौशाम्बी, उ.प्र.)

सह सम्पादक

डॉ0 वर्षा सिंह (एसोसिएट प्रोफेसर, अंग्रेजी विभाग, देशबंधु कॉलेज, दिल्ली विश्वविद्यालय)

डॉ0 अतुल अरोरा (असिस्टेंट प्रोफेसर, विधि विभाग, श्री वार्ष्णेय महाविद्यालय, अलीगढ़)

डॉ0 सुदर्शन चक्रधारी (पूर्व शोध छात्र, प्रा.भा.इ. सं. पुरातत्त्व विभाग, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय)

प्रबन्ध सम्पादक

डॉ0 नीरू वार्ष्णेय (असिस्टेंट प्रोफेसर, अंग्रेजी विभाग, श्री वार्ष्णेय महाविद्यालय, अलीगढ़)

डॉ0 रिपुंजय कुमार सिंह (पूर्व शोध छात्र, हिन्दी विभाग, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय)

राणा अवद्यूत कुमार (शोध छात्र, भोजपुरी अध्ययन केन्द्र, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय)

विधि परामर्शदाता

डॉ0 रणजीत सिंह चौहान

अधिवक्ता, सर्वोच्च न्यायालय

ISSN : 2319-7137

मूल्य : रु0 250.00

सम्पादकीय पता

डॉ0 विकास कुमार
सिविल लाइन, तकिया रोड,
सासाराम, रोहतास (बिहार)
ई-मेल : internationalliteraryquest@gmail.com
मो0 : 09470828492, 9934468661
वेबसाइट- www.internationalliteraryquest.com

डॉ0 सुरेन्द्र पाण्डेय
एस.एन. 14/191, सरायनन्दन, खोजवाँ,
वाराणसी, उ0प्र0, मो0नं0 09451173404, 7705040045
Email: surendrpanday@gmail.com

मुद्रक :
राजैरिया ऑफसेट
जगतपुरी, दिल्ली-110093

नोट : सभी पद अवैतनिक एवं अव्यावसायिक हैं। प्रकाशित लेखों एवं उद्धरणों का दायित्व स्वयं लेखकों का है। लेखों एवं उद्धरणों से सम्बन्धित किसी भी वाद-विवाद के लिए लेखक स्वयं जिम्मेदार होगा।

संपादक मण्डल

प्रो0 अनीता सिंह, अंग्रेजी विभाग, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी

प्रो0 रवीन्द्रनाथ सिंह, प्राचीन भारतीय इतिहास, संस्कृति एवं पुरातत्व विभाग, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी

डॉ0 प्रभाकर सिंह, हिन्दी विभाग, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी

डॉ0 एस0 आर0 जयश्री, प्रोफेसर, हिन्दी विभाग, केरल विश्वविद्यालय, केरल

प्रो0 बी0 गनेशन, बैंगलोर विश्वविद्यालय, कर्नाटक

डॉ0 मिकी निशिओका, एसोसोसिएट प्रोफेसर, रिसर्च डिवीजन ऑफ एशियन, लैंग्वेजेज एण्ड कल्चर III रिसर्च इंस्टिच्यूट ऑफ वर्ल्ड लैंग्वेजेज, ओसाका यूनिवर्सिटी, जापान

प्रो0 क्रीम उ जो, भारतीय अध्ययन विभाग, हाइकू यूनिवर्सिटी, दक्षिण कोरिया

प्रो0 आरिफ नजीर, हिन्दी विभाग, अलीगढ़ मुस्लिम यूनिवर्सिटी

डॉ0 सुनीता सिंह, शिक्षा संकाय, ली0 मोयने कॉलेज, सायराक्यूस, न्यूयार्क, अमेरिका

डॉ0 मृत्युंजय सिंह, प्रोफेसर, हिन्दी विभाग, एस0पी0 जैन कॉलेज, सासाराम, बिहार

डॉ0 नलिनी माथुर, प्रोफेसर, इतिहास विभाग, भगिनी निवेदिता कालेज दिल्ली विश्वविद्यालय

डॉ0 संतोष पटेल, सहायक रजिस्ट्रार, दिल्ली शिक्षक विश्वविद्यालय

डॉ0 नरेन्द्र शुक्ल, अध्यक्ष, रिसर्च एण्ड पब्लिकेशन डिवीजन, नेहरू मेमोरियल म्यूजियम एवं लाइब्रेरी, नई दिल्ली

डॉ0 रमेश कुमार, प्रोफेसर एवं अध्यक्ष, हिन्दी विभाग, श्री वार्ष्णेय महाविद्यालय, अलीगढ़

डॉ0 रामचरण मीना, प्रोफेसर, हिन्दी विभाग, मोतीलाल नेहरु महाविद्यालय, दिल्ली विश्वविद्यालय

डॉ0 वेदवती राठी, प्रोफेसर एवं अध्यक्ष, हिन्दी विभाग, धर्म समाज महाविद्यालय, अलीगढ़

डॉ0 सावित्री सिंह, एसोसिएट प्रोफेसर, संस्कृत विभाग, महिला महाविद्यालय, सासाराम, रोहतास, बिहार

डॉ0 दिग्विजय सिंह, हिन्दी विभाग, के0डी0बी0 डिग्री कॉलेज, दुबहर, बलिया

डॉ0 प्रिया सिंह, राजनीतिशास्त्र विभाग, गुलाब देवी महिला, पी0जी0 कॉलेज, बलिया

डॉ0 राजकुमार उपाध्याय मणि, अध्यक्ष, प्रयोजनमूलक विभाग, संत गाहिरा विश्वविद्यालय, सरगुजा, अम्बिकापुर, छत्तीसगढ़

डॉ0 आशुतोष कुमार सिंह, एसोसिएट प्रोफेसर, हिन्दी विभाग, प्रो. रज्जू सिंह उर्फ रज्जू भैया विश्वविद्यालय, प्रयागराज, उ.प्र.

डॉ0 देवेन्द्र प्रताप सिंह, एसोसिएट प्रोफेसर, हिन्दी विभाग, कूबा पी0जी0 कालेज, दरियापुर, नेवादा, आजमगढ़

डॉ0 विकास कुमार सिंह, असिस्टेन्ट प्रोफेसर, प्राचीन भारतीय इतिहास, संस्कृति एवं पुरातत्व विभाग, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी

डॉ0 सपना भूषण, असिस्टेन्ट प्रोफेसर, हिन्दी विभाग, वसन्त कन्या महाविद्यालय, कमच्छा, वाराणसी

श्री राकेश कुमार, असिस्टेन्ट प्रोफेसर, हिन्दी विभाग, श्री वार्ष्णेय महाविद्यालय, अलीगढ़

डॉ0 अभय कुमार, असिस्टेन्ट प्रोफेसर, विभागाध्यक्ष, हिन्दी विभाग, बी.आर.एम. महाविद्यालय, मुंगेर विश्वविद्यालय, मुंगेर, बिहार

डॉ0 रितु वार्ष्णेय गुप्ता, असिस्टेन्ट प्रोफेसर, हिन्दी विभाग, किरोरीमल कॉलेज, दिल्ली विश्वविद्यालय

डॉ0 भारतेन्दु पाठक, असिस्टेंट प्रोफेसर, कश्मीर विश्वविद्यालय, हजरतबल, श्रीनगर

डॉ0 प्रीति जायसवाल, असिस्टेंट प्रोफेसर, हिन्दी विभाग, महात्मा गांधी काशी विद्यापीठ, वाराणसी

डॉ0 कमलेश सिंह, असिस्टेंट प्रोफेसर, हिन्दी विभाग, धर्मसमाज महाविद्यालय, अलीगढ़

अनुक्रम

1.	गृहस्थ का कर्त्तव्य पथ **डॉ0 अजित कुमार जैन**	**8-11**
2.	नेहरू ग्राम भारती मानित व. व. जमुनीपुर कोटवा प्रयागराज प्रेमचंद के उपन्यासों में सामाजिक चेतना रीता पाल	**12-17**
3.	**वृद्धावस्था विमर्श के अग्रदूत : भिखारी ठाकुर** **डॉ. संतोष कुमार**	**18-23**
4.	दलित महिला संघर्ष और शिक्षा का आइना डॉ. मंजु रानी	**24-27**
5.	**मानव के आर्थिक क्रियाकलाप: कृषि और पर्यावरण के संबंध में** डॉ. सीमा शुक्ला	**28-31**
6.	**कवि संतोष पटेल के काव्य में अंबेडकरवाद** **डॉ0 ममता**	**32-39**
7.	Comparative study of the intellectual level of high school students **Dr. Rajani Rani Varshney**	**40-44**
8.	विज्ञापन और हिन्दी भाषा **डॉ. ऋतु वार्ष्णेय गुप्ता**	**45-47**
9.	दिव्यांग एवं सामान्य बालकों के समायोजन स्तर का तुलनात्मक अध्ययन **संजीव कुमार त्रिपाठी**	**48-58**

10.	माध्यमिक स्तर के सरकारी एवं गैर सरकारी सहायता प्राप्त विद्यालयों के शिक्षकों के शिक्षण प्रभावशीलता का तुलनात्मक अध्ययन **विजय बहादुर यादव**	**59-64**
11.	जैन साहित्य में योग और उपयोग **डॉ0 अजित कुमार जैन**	**65-68**
12.	भक्ति की अदभुत मूर्ति : मीराबाई **डॉ. मंजू रानी**	**69-76**
13.	अनिवार्य प्राथमिक शिक्षा के लिए किये गये सरकारी एवं निजी प्रयासों के प्रति शिक्षकों एवं अभिभावकों के अभिवृत्ति का अध्ययन **अच्युत कुमार यादव**	**77-83**
14.	हिन्दी उपन्यास का परिचय एवं सामाजिक चेतना भूमि **सन्तोष कुमार**	**84-87**
15.	महिला सशक्तिकरण पर वित्तीय समावेशन में प्रधानमंत्री जनधन योजना के प्रभाव का अध्ययनः छत्तीसगढ़ राज्य के विशेष संदर्भ में **प्रियंका द्विवेदी**	**88-93**
16.	''भारतीय इतिहास लेखन और इतिहास–पुराण परम्परा : एक पुनरावलोकन'' **डॉ0 महेन्द्र पाठक,** एसोसिएट प्रोफेसर, का0सु0 साकेत, अयोध्या **दुर्गेश दत्त शुक्ल,** शोध छात्र	**93-96**
17.	हिन्दी उपन्यासों में चित्रित दलित जीवन **डॉ0 बृजेश कुमार पाण्डेय**	**97-100**
18.	अज्ञेय के काव्य में बिम्बधर्मी विशेषण **डॉ0 सव्यसाची**	**101-108**

19.	हिन्दी कहानी की भाषा तथा बदलता स्वरूप **विजय लक्ष्मी गुप्ता**	**109-119**
20.	शिक्षा द्वारा मानव विकास एवं संवर्द्धन **डॉ. लाल सिंह**	**120-124**
21.	शिक्षकों के शैक्षिक अभिप्रेरणा एवं कृत्य संतोष के मध्य सम्बन्ध का अध्ययन **चन्द्र प्रकाश मणि त्रिपाठी**	**125-131**
22.	उषा प्रियंवदा के उपन्यासों में भारतीय सामाजिक वैशिष्ट्य **सिन्दू यादव**	**132-138**
23.	**समकालीन हिंदी उपन्यास: राजनीतिक यथार्थ** प्रमोद कुमार पटेल	**139-141**
24.	Sports as a means to develop the social values among the youth **Shahanawaz Khan**	**142-145**
25.	आधुनिक काल में महिला शिक्षा की स्थिति **डॉ0 सुनीता गुप्ता**	**146-149**
26.	संवेगात्मक बुद्धि के सन्दर्भ में माध्यमिक स्तर के विद्यार्थियों की शैक्षिक उपलब्धि का अध्ययन **अतुल कुमार सिंह**	**150-158**
27.	तुलसी काव्य धारा में नारी चिन्तन **डॉ0 अरुण कुमार मिश्र**	**159-166**
28.	प्रयोगवादी कविता के बिम्ब **रेणु बाला**	**167-171**

29.	प्राथमिक स्तर के शिक्षकों के पारिवारिक वातावरण का उनके शिक्षण दक्षता पर पड़ने वाले प्रभाव का अध्ययन **विमल कुमार शुक्ल**	**172-179**
30.	आचार्य चतुरसेन शास्त्री के उपन्यासों की सामाजिक–यथार्थवादी पराकाष्ठा **डॉ0 विकास कुमार**	**180-194**
31.	आचार्य चतुरसेन शास्त्री का ऐतिहासिक एवं सांस्कृतिक उपन्यास **डॉ0 सुरेन्द्र पाण्डेय**	**195-199**
32.	इस्लामिक शिक्षण संस्थाओं में पढ़ाने वाले शिक्षकों में आधुनिक संचार माध्यम के प्रति जागरूकता का अध्ययन **नाजिया**	**200-204**
33.	भारत की राजनीतिक व्यवस्थाओं में परिवर्तन एवं सुधार : एक समीक्षा **देवी लाल**	**205-208**
34.	संगीत जगत में काज़ी नज़रूल इस्लाम का योगदान **डॉ0 रूमा चटर्जी**	**209-211**
35.	माध्यमिक स्तर के विद्यार्थियों में तनाव का उनके शैक्षिक उपलब्धि पर पड़ने वाले प्रभाव का अध्ययन **सुनील कुमार**	**212-219**

ISSN : 2319-7137, Volume: 15/Issue: 01, January-June : 2022

गृहस्थ का कर्त्तव्य पथ

डॉ0 अजित कुमार जैन
एसो0 प्रोफेसर एवम् अध्यक्ष,
संस्कृत विभाग, एस0वी0 कॉलेज,
अलीगढ़, (उ0प्र0)

अपने–अपने धर्म अर्थात् कर्म में प्रवृत्त होना सभी का कर्त्तव्य है। अपने धर्म से विरत होकर परधर्म में रत होना अत्यन्त हानिकारक और खतरनाक है। श्री योगिराज कृष ने श्रीमद्भगवद्गीता में अर्जुन के लिए कहा है–

''परधर्मो भयावहः''[1]

भारतीय संस्कृति धर्मप्रधान संस्कृति है। यहाँ गृहस्थ के उचित कर्त्तव्यों की विवक्षा प्रसंगतः प्राप्त है। सद्गृहस्थ सदैव अपने सद्गुणों में अनुरक्त होता हुआ अपने सत्कर्तव्यों के पालन में रत रहता है। यही मार्ग उसके लिए प्रशस्त है। आज भौतिकवाद के चकाचौंध में लालची मन से करणीय और अकरणीय, नीति और अनीति, रीति और अरीति, धर्म और अधर्म, उचित और अनुचित का भेद भूलकर मनुष्य यदृच्छया मार्ग में प्रवृत्त हो रहा है। यह वस्तुतः अनुचित है।

भारतीय इतिहास में दानवीर भामाशाह, महामात्य चामुण्डराय, दीवान अमरचंद, चाणक्य, जैनश्रेष्ठी पाणाशाह, सम्राट खारवेल आदि अनेकों गृहस्थों के प्रशस्त कर्तव्यों का वर्णन प्राप्य है जिन्होंने समय–समय पर अपने प्रशस्त कार्यों से संस्कृति को समृद्ध बनाया है।

पण्डित आशाधर सूरि ने गृहस्थ के कर्त्तव्यों के विषय में कहा है[2]–

मूलोत्तर गुणनिष्ठामधितिष्ठन् पञ्चगुरुपदशरण्यः।

दान यजन प्रधानो ज्ञान सुधा श्रावकः पिपासु स्यात्।।

अर्थात् वही गृहस्थ प्रशंसनीय है जो धर्मपरायण, गुरुपरायण, दान और पूजन करते हुए मूल गुणों और उत्तरगुणों का पालन करता है।

आचार्य अमितगति ने गृहस्थों के लिए छः आवश्यक कार्य गिनाए हैं–

सामाजिय स्तर, प्राज्ञैर्वन्दना सम्प्रतिक्रमा।

प्रत्याख्यानं तनूत्सर्ग षोढावश्यकक्षरितम्।।[3]

अर्थात् सामाजिक, स्तवन, वन्दना, प्रतिक्रमण, कार्योत्सर्ग और प्रत्याख्यान ये छः आवश्यक प्रतिदिन करणीयकर्म हैं।

आचार्य कुंदकुदस्वामी ने बल देकर कहा है–

"दानं पूजा मुक्खं सावय धम्मं ण सावया तेण विणा।"[4]

पद्मनन्दि पंचविंशतिका में आचार्य कहते हैं–

"देवपूजा गुरुपास्ति स्वाध्याय संयम स्तपः।

दानं चेति गृहस्थानां षट्कर्माणि दिनेदिने।।[5]

आचार्य ने इसी क्रम में कहा है–

गृहस्थस्येज्या वार्ता दन्ति स्वाध्यायं संयमः

तप इत्यभि षट्कर्माणि भवन्ति।।[6]

कषाय पाहुड़ नामक ग्रन्थ में आचार्य प्रवर कहते हैं–

दानं पूजा सीलभुववांसो चेदि चहुविहे सावय धम्मे।।[7]

अर्थात् गृहस्थ के दान पूजा शील और उपवास आवश्यक रूप से प्रतिदिन करणीय कर्म हैं। इन्हीं आचार्य कुंदकुंद ने और विस्तार देकर गृहस्थ की कुल तिरेपन क्रियाओं का उल्लेख किया है–

गुणवय तव सम पडिमादाणं जल गालण अणत्थमिमं।

दंसणणाण चरित्रं किरिया तेवण्णं सावया भणिया।।[8]

अर्थात् तीन गुण व्रत, पाँच अणुव्रत, चार शिक्षाव्रत, बारह तप, ग्यारह प्रतिमाओं का पालन, चार प्रकार का दान, जलगावन, रात्रिभोजननिषेध, रत्नत्रयधारण आदि प्रत्येक गृहस्थ का कर्त्तव्य है।

आचार्य वसुनंदिर ने अन्य कर्त्तव्यों पर भी जोर दिया है–

विणओ विज्जा च्चिं काम किलेसोय पुज्जणविहाणं।

सत्तीए णह जोग्गं कायव्वं देस विरएहि।।[9]

अर्थात् यथायोग्य विनय, सेवा सत्कार, काम क्लेश, और पूजन विधान गृहस्थ का कर्त्तव्य है।

पञ्चाध्यायीकार ने कहा है–

जिन चैत्यगृहादीनां निर्माणे सावधानतया।

यथा संपद्विधेयास्तु दूष्या नावद्यलेशतः।।

अथ तीर्यादियात्रासु विदध्यात्सोद्यतं मनः।

श्रावकः सहत्रापि संयमं न विराधयेत्।।[10]

पुरुषार्थसिद्धुपाय में आचार्य ने कहा है–

आत्म प्रभावनीमा रत्नत्रय तेजसा सततमेव।

दान तपो जिनपूजा विद्यातिशयेश्च धर्मः।।[11]

आचार्य सोमदेव सूरि ने भी इस सम्बन्ध में यह कहा है–

देवपूजा गुरुपास्ति स्वाध्याय संयमस्तपः।

दानं चेति गृहस्थानां षट्कर्माणि दिनेदिने।।[12]

प्रश्नोत्तर श्रावकाचार में आचार्य का मत है–

अमल सुख समुद्रं दान पूजादियुक्तं।

भज विगत विकारयुक्तं त्वं च सागरधर्मम्।।[13]

आचार्य उमास्वामी ने गृहस्थ ऋषियों के सम्बन्ध में अपना मन्तव्य इस प्रकार दिया है–

देव पूजादि षट्कर्म निरतः कुलसत्तम।

अघ षट्कर्म निर्मुक्तः श्रावकः परमोभवेत्।।[14]

आचार्य ने सारांशरूप से यह कह दिया है–

बहुना जल्पिते नात्रं किं प्रयोजनमुच्यते।

श्रावकाणामुभौ मार्गो दान पूजा प्रवर्तयो।।[15]

अंततः, मेरा अभिमत है कि श्रावक/गृहस्थ को प्रतिदिन अपने अपने आराध्य का पूजन, अभिषेक, स्वाध्याय, दान, तप, संयम आदि क्रियाओं में लीन रहकर अपनी सांसारिक जीवनयात्रा सम्पन्न करना चाहिए।

संदर्भ :

1. महर्षि वेदव्यासः श्रीमद्भगवद्गीता–
2. पण्डित आशाधर सूरि– सागर धर्मामृतम् – अध्याय 1/15
3. आचार्य अमितगत– अमितगति श्रावकाचार
4. आचार्य कुंदकुंद– रयणसार– 11
5. आचार्य पद्मनंदि– पद्मनंदि पंचविंशतिका– 6/8

6. आचार्य– चारित्रसार– 43 / 1
7. आचार्य कुंदकुंद– कषाय पाहुड़– 82 / 100 / 2
8. आचार्य कुंदकुद– रयणसार– 153
9. आचार्य वसुनन्दि– वसुनंदि श्रावकाचार– 319
10. आचार्य– पञ्चाध्यायी उत्तरार्द्ध– 736 / 38
11. आचार्य– पुरुषार्थ सिद्धि उपाय– 30
12. आचार्य सोमदेव सूरि– यशस्तिलक चम्पू– 879
13. आचार्य– प्रश्नोत्तर श्रावकाचार– 50
14. आचार्य उमास्वामी– श्रावकाचार– 94
15. आचार्य– व्रतोद्योतन श्रावकाचार– 84

ISSN : 2319-7137, Volume: 15/Issue: 01, January-June : 2022

नेहरू ग्राम भारती मानित व. व. जमुनीपुर कोटवा प्रयागराज

प्रेमचंद के उपन्यासों में सामाजिक चेतना

रीता पाल
शोध छात्रा
एस.आर.एफ. हिन्दी

तीसरे दशक के भारतीय उपन्यासकारों का प्रमुख उद्देश्य था सामाजिक परिवर्तन। गाँधीवाद से लेकर समाजवाद तक सर्जनात्मक लेखकों ने भाँति-भाँति के सुधार और क्रान्ति का प्रतिपादन कया। जहाँ तक हिन्दी और उर्दू का सम्बन्ध है, इन लेखकों में सर्वा धक महत्वपूर्ण थे प्रेमचंद, जिन्होंने अपनी कहानियों और उपन्यासों में भारतीय कसान के करूण जीवन के यथार्थ को मर्मभेदी रूप में प्रस्तुत कया है।

प्रेमचंद का लालन-पालन निर्धनता और अन्याय के वरूध्द संघर्ष की कठोर पाठशाला में हुआ था। अपने 13 उपन्यासों और 300 कहानियों की सामग्री उन्होंने अपने जीवन के निजी अनुभवों और अपने निकट परिवेश के सूक्ष्म निरीक्षण से समेटी थी। उन्होंने टालस्टाय और गाल्सवर्दी एवं सादी तथा मोपासा की कृतियों का हिन्दी में अनुवाद भी कया था। उन्होंने ड कन्स की रचनाएँ पढ़ी थी और वे गोर्की के प्रशंसक थे। वस्तुतः वे स्वयं हिन्दी साहित्य के गोर्की कहलाये। उर्दू में लखना शुरू करके वे बाद में हिन्दी के क्षेत्र में आ गये थे। उनका उपन्यास 'गोदान' आधुनिक साहित्य के अमर ग्रन्थों में गना जाता है।

प्रेमचंद का जन्म बनारस से लगभग चार मील दूर लमही नामक गाँव में 31 जुलाई, 1880 को हुआ। उनका कुल फटेहाल कायस्थो का कुल था, जिनके पास करीब छः बीघे जमीन थी और जिनका परिवार बड़ा था। प्रेमचंद के पतामह मुंशी गुरूसहाय लाल पटवारी थे। उनके पता मुंशी अजायबलाल डाकमुंशी थे और उनका वेतन लगभग पच्चीस रूपये मा सक था। उनकी माँ आनन्दीदेवी सुन्दर, सुशील तथा सुघड़ महिला थी और हमें 'बड़े घर की बेटी' का स्मरण दिलाती है।

प्रेमचंद के युग का वस्तार सन 1880 से 1936 तक है। यह काल-खण्ड भारत के इतिहास में बहुत महत्व का है। इस युग में भारत का स्वतंत्रता संग्राम नयी मंजिलो से गुजरा। यह संघर्ष अ धक सशक्त और गहरा हुआ। भारत में दानव-डगों से बढ़ती औद्यो गकता से प्रेमचंद चन्तित थे। उनका वचार था क भारत में फैक्ट्रियों के बढ़ते जाल का फल यह होगा क कसान अपनी भू म खो बैठेगा, सामान्य श्रमजीवी का क्रूर शोषण होगा, जीवन और संस्कृति वकृतियों के शकार होगे और असमाजिक तत्वों को बल मलेगा। प्रेमचंद की इन आशंकाओं को उनके वराट उपन्यास 'रंगभू म' में सशक्त स्वर मलता है। "प्रेमचंद इस तथ्य को ग्रहण करने में असमर्थ थे क यन्त्र का वकास मनुष्य को श्रम से मुक्ति दे सकता है। पूँजीवादी आ र्थक सम्बन्ध औद्यो गकता के फल को वषाक्त बनाते है। तीसरे दशक के भारतीय उपन्यासकारों का प्रमुख उद्देश्य था सामाजिक परिवर्तन। गाँधीवाद से लेकर समाजवाद तक सर्जनात्मक लेखकों ने भाँति-भाँति के सुधार और क्रान्ति का प्रतिपादन कया। जहाँ तक हिन्दी और उर्दू का सम्बन्ध है इन लेखकों में सर्वा धक महत्वपूर्ण थे

प्रेमचंद, जिन्होंने अपनी कहानियों और उपन्यासों में भारतीय कसान के करूण जीवन के यथार्थ को मर्मभेदी रूप में प्रस्तुत कया है।"

1 अक्टूबर 1993 को प्रेमचंद ने अपना बृहद उपन्यास 'रंगभू म' लखना प्रारम्भ कया। 1 अप्रैल 1934 को उन्होंने इस उपन्यास का उर्दू संस्करण लखना समाप्त कया। सेवासदन और प्रेमाश्रम की भाँति ही 'रंगभू म' का हिन्दी संस्करण पहले निकला। ' रंगभू म' का पहला प्रकाशन गंगा पुस्तकमाला, लखनऊ ने कया। उन्हें प्रकाशकों से एक हजार आठ सौ रूपये मले। उनके प्रेस का गहरा आ र्थक संकट इस धन की सहायता से टल गया।

रंगभू म का नायक सूरदास भारतीय उपन्यास के इतिहास में एक अद्भुत पात्र है। वह एक अन्धा भखारी है जो गा ड़यों के पीछे पैसा माँगता हुआ भागता है। भखारी के पेशे के साथ-साथ उसमें असाधारण आत्म-सम्मान है, उदार हृदय है और जनहित के लए संघर्ष करने की उसमें अद्भुत क्षमता है।

परम्परागत भारतीय भखारी के साथ वह महात्मा गाँधी के गुणों को सम्मि लत करता है। प्रेमचंद ने एक भखारी को लमही में देखा था। वह भी पैसे-धेले के लए आने-जाने वाली गा ड़यों के पीछे दौड़ा करता था। उन्हें गोरखपुर में भी एक अन्धा गवैया लड़का मला था। सरकारी नौकरी से त्याग-पत्र देने के बाद प्रेमचंद शाम को उसके गाने सुना करते थे।

'रंगभू म' के कथानक में अनेक रंग-बिरंगे धागे लपटे हुए है।"[2] केन्द्रीय सूत्र है, अपने संपूर्ण दैन्य और दारिद्र्य में ग्राम-समाज का जीवन। फर म. जान सेवक का ईसाई परिवार है, जो गाँव के चारागाह की भू म पर सगरेट बनाने का कारखाना लगाने के लए अधीर है। अनेक धनी व्यक्ति है, जिसके बीच अग णत अन्त र्वरोध है- लोभ, ख्याति की लालसा, अनेक महत्वकांक्षाएँ। महाराजा और उनका उत्पीड़न लए रजवाड़े है। उपन्यास में घटना-चक्र प्रबल वेग से घूमता है। कथा की गति में वेग है और अतिशय नाटकीयता है। कथा मानों एक तूफानी नदी है जो भारी पर्वत-कन्दराओं के बीच से निकलती है, समतल भू म में बहती और उसे उपजाऊ बनाती हुई मन्द गति गामी नहीं।

उपन्यास अपने गठन में काफी ढीला-ढाला है। इसके कथानक पर उन घटना प्रधान कस्से-कहानियों का काफी प्रभाव है, जो प्रेमचंद ने पहले पढ़े थे। म. जान सेवक कुछ ही रूपयों में सूरदास की जमीन खरीद लेता है और पांडेपुर में सगरेट की फैक्ट्री स्था पत करता है। फैक्ट्री की स्थापना के साथ गाँव में अनेक कुकर्म भी प्रवेश करते है। शराब, जुआ, गुंडा गरी, अश्लीलता। पहली बार बाहर के लोग गाँव की स्त्रियों के साथ छेड़छाड़ करते थे। गाँव के लोग घर से निकाले जाते हैं क्यों क इस जगह फैक्ट्री के मजदूरों के लए रहने के लए क्वार्टर बनेंगे। सूरदास शहर जाता है और अपने ग्रामवा सयों के प्रति हुए अन्याय के वरोध में समाज की न्याय-बुध्दि को जागृत करता है। जनता की क्रोधाग्नि दुराचारियों के वरूध्द भड़कती है। अन्त में सूरदास उसी भाग में, जो उसकी झोपड़ी को जला रही है, कूदकर मर जाता है।

वनय के प्रति सोफी के प्रेम की कथा भूगर्भी धारा के समान प्रवाहित हुई है। अन्याय और अत्याचार के वरूध्द संघर्ष में जुटे वे दूर प्रदेशों तक जाते है। उनके प्रेम के मार्ग में अनेक बाधायें आती है, कन्तु वे उन सब पर वजयी होते हैं।

प्रेमचंद पूर्वकालीन आदिम समाज को अपनी कल्पना का आदर्श मानकर चलते है। वे जमींदार और उद्योगपति दोनों के ही शोषण और उत्पीड़न का वरोध करते है। वे यह नहीं सोचते क सामाजिक सम्पत्ति पर जनता का अ धकार यानी समाजवाद

औद्योगीकरण की वषमताओं का समाधान प्रस्तुत करता है। यंत्र पर मनुष्य का शासन मानव के दुरूह कार्य-भार को हल्का करेगा।

इस उपन्यास की शक्ति सामाजिक अन्याय के वरूध्द जनता से अपील करने में है। सूरदास अधर्म के वरूध्द जन-जन की चेतना को जगाता है और जनता के रोष के सामने बड़े-बड़े तानाशाह काँपते है। इस प्रकार वनय और सोफी राजस्थान की शो षत जनता में जागृति फैलाते है। देश का यह भूभाग अभी तक आन्दोलनों से अछूता बचा था।

प्रेमचंद इस उपन्यास में भारत का बड़ा सजीव और सशक्त अंकन प्रस्तुत करते है। इस वशाल पठ पर समाज के सभी वर्ग सजीव हो उठे है। दर्जनों स्मरणीय पात्रों की सृष्टि कथाकार ने की है। यह उपन्यास लखकर प्रेमचंद ने राष्ट्रव्यापी ख्याति पायी है और उनके पाठकों ने अनायास ही उन्हें उपन्यास सम्राट की गैर सरकारी उपा ध से वभू षत कया।

प्रेमचंद ने इस उपन्यास में वर्तमान समाज के सब स्तरों को उधेड़कर सामने रख दिया है। क्लार्क साम्राज्य का प्रतीक है। ऐसे लोगों के होते अदालतें ढोंग है, कानून और वकील ढोंग है। इस पध्दति के रहते जनता को न्याय नहीं मल सकता। पूँजीवाद और कारखानेदारी का बढ़ना इस युग का एक सत्य बनता जा रहा है। पूँजीवाद के अतिरिक्त और कोई भी सत्य इसके सामने टिक नहीं सकता। यद्य प प्रेमचंद सहित सभी जनसेवक सगरेट के कारखाना लगाने के पक्ष में नही है, फर बी कारखाना लगाता है और पांडेपुर उजड़ जाता है। यदि इसके मुकाबले में प्रेमचंद सूरदास के आशीर्वाद की जीत दिखाते तो शायद वह ठीक नहीं होता।

हिन्दी और उर्दू दोनों में ही शायद 'सेवासदन' पहला महान सामाजिक उपन्यास था। 'सेवासदन' का लेखक जीवन भी कठोर वास्त वकताओं का साहसपूर्वक सामना करता है। वह कुछ भी नकारता नही है, न छिपाता है। साथ ही वह अपना यह वश्वास भी व्यक्त करता है क मनुष्य फर- फर अपने टूटे जीवन के पुनर्निर्माण की क्षमता रखता है और मनुष्य का पतन होने पर गरे रहना ही उसके लए एकमात्र वकल्प नही है। इस उपन्यास के पात्र प्रौढ़ और स्वाभा वक है।

उपन्यास की नायिका सुमन का ववाह एक गरीब व्यक्ति से हुआ, जो अच्छे वस्त्र और सु वधा-सम्पन्न जीवन की उसकी स्वाभा वक इच्छा को पूरी नही कर पाता। उनका पता ईमानदार पु लस अफसर था। उसके सहयोगी और मातहत कर्मचारी उससे रूष्ट थे, क्यों क घूसखोरी आदि कुप्रथाओं का वह वरोध करता था और इस प्रकार उसके पथ का कंटक था। उसे अपनी पुत्री का ववाह करना है, इस लए वह पथभ्रष्ट होता है। उसकी गरफ्तारी होती है और उसे कारावास दंड मलता है।

रात को एक सखी के घर से लौटने में सुमन को देर हो जाती है। उसके असंतोष और खीज से त्रस्त उसका पति रात को उसे घर से बाहर निकाल देता है। अपनी सखी के घर शरण पाने की प्रयत्न करती है, कन्तु असफल रहती है। अन्त में उसके पड़ोस में रहने वाली एक वेश्या उसे शरण देती है। इस प्रकार सुमन साध्वी नारी के पद से गरती है। अपने जीवन को फर से लीक पर लाने के प्रयास में पुराण-पन्थियों के वरोध का उसे सामना करना पड़ता है, जो उसे वेश्या के पैरो में अपना माथा नवाते है। कन्तु अधर्म के पथ से उभरने का प्रयत्न करती

हुई स्त्री को घृणा से देखते है, उसे अपने दुःखो से मुक्ति एक काल्पनिक आदर्श समाज में मलता है। भारतीय संस्कृति में मनुष्य निर्मल जीवन बिता सकता है।

'सेवासदन' समाप्त करने के कुछ महीने बाद ही प्रेमचंद ने 'गोशाए आ फयत' लखना शुरू कर दिया। यह हिन्दी में उनके दूसरे बड़े उपन्यास 'प्रेमाश्रय' का मूल उर्दू रूप था। उन्होंने अपना नया उपन्यास 2 मई 1917 को लखना शुरू कया और 25 फरवरी 1930 को इसे समाप्त कया। भारत के तेज तेज और गहरे होते हुए राष्ट्रीय संघर्षों की पृष्ठभू म में यह उपन्यास लखा गया था और गाँधी जी के सत्याग्रह आंदोलन की इस कथा पर प्रबल छाप है। यह रौलेक्ट एक्ट पंजाब में सैनिक कानून और ज लयावाला बाग के दिन थे।

इस उपन्यास के नायक प्रेमशंकर नये मनुष्य का जो आदर्श प्रेमचंद की कल्पना में था, उसे मूर्त करते है। वह धैर्यवान और सहनशील है, कन्तु अन्याय के सम्मुख तिल भर झुकने में असमर्थ है। उनका जन्म एक जमीदार कुल में हुआ था, कन्तु कसान से उन्हें गहरी सहानुभूति है। इस उपन्यास में प्रेमचंद एक वराट पैमाने पर कसान के उत्पीड़न का चत्र अंकन करते है। अग णत शोषक और आततायी कसान को चूसकर सूखा देने के लए जुट गए है। ज्ञानशंकर मानो अन्याय का मूर्तिमान रूप है, कन्तु प्रेमशंकर अपनी गहरी मानवीयता और सद्गुणों के कारण संपूर्ण असत्य और अधर्म पर वजयी होते है। उनकी अपनी पीड़ा शत्रुओं को मत्र बनाती है। वह प्रेमाश्रय की नींव डालते है, जहाँ मनुष्य भू म की सेवा करके समु चत फल पा सकते है।

'कायाकल्प' उपन्यास में कुछ चन्तनीय पारलौ कक तत्व उभरे है। अंग्रेजी उपन्यासकार, राइडर हैगर्ड की 'शी' के समान राजकुमार और रानी देव प्रया का कायाकल्प हुआ है। सामाजिक और मानवीय तत्वों के गम्भीर अध्येता के लए इस उपन्यास में प्रचुर सामग्री है। आगरा में साम्प्रदायिक दंगे शुरू होते है। गाँधीवादी तकनीक का उपयोग है। जनता इसके वरोध में उठ खड़ी होती है। इन्ही सूत्रों के साथ मुंशी वज्रधर और उनके परिवार की रोचक मानवीय कथा भी लपटी हुई है। मुंशी वज्रधर पुराने दरबारी है। उनकी जीवन-बेल खुशामद और दासता के आधार पर लहलहाती है। उनका चक्रधर जन-नेता बन जाता है, फर न जाने क्यों जीवन से वैराग्य ले लेता है। वह एक यतीम कन्या से ववाह करता है जो वास्तव में ताल्लुकेदार की लड़की है। चक्रधर का पुत्र शंखधर भी अपने पता के साँचे में ढँला है।

इस उपन्यास की केन्द्रीय समस्या इस पृथ्वी पर न्याय की खोज है। उपन्यास में निरन्तर इस प्रकार के वचार बिखरे हुए है- "ईश्वर ने ऐसी सृष्टि की रचना ही क्यों की जहाँ इतना स्वार्थ, द्वेष और अन्याय है ? क्या ऐसी पृथ्वी न बन सकती थी जहाँ सभी मनुष्य, सभी जातियाँ प्रेम और आनन्द के साथ संसार में रहती ? यह कौन सा इंसाफ है क कोई तो दुनिया के मजे उड़ाये, कोई धक्के खाये, एक जाति दूसरी का रक्त चूसे और मूँछों पर ताव दे, दूसरी कुचली जाये और दाने-दाने को तरसे। ऐसा अन्यायमय संसार ईश्वर की सृष्टि नही हो सकती।"

प्रेमचंद के अन्य उपन्यासों की तुलना में निर्मला काफी छोटा है। इसका वषय दहेज की प्रथा है, जिसने भारतीय नारी का जीवन वषमय बना रखा है। निर्मला के पता की मृत्यु हो गयी, इस लए उसका ववाह अधेड़ अवस्था के एक वधुर के साथ होता है। उसके पहले इच्छित पति का ववाह कहीं और हो जाता है क्यों क उसे बड़े दहेज की

अपेक्षा है। यह कथा हिन्दू समाज में प्रच लत कुप्रथाओं पर बहुत तीखा कुठारघात है।

प्रेमचंद का और एक उपन्यास 'गबन' की नायिका जालपा एक चन्द्रहार पाने के लए लालायित है। उसका पति कम वेतन पाने वाला क्लर्क है, यद्य प वह अपनी पत्नी के सामने बहुत अमीर होने का अ भनय करता है। अपनी पत्नी को सन्तुष्ट करने के लए उसे अपने दफ्तर से रूपया गबन करना पड़ता है। वह भागकर कलकत्ता चला जाता है। यहाँ एक कुजड़ा और उसकी पत्नी उसे शरण देते है। डकैती के एक जाली मामले में पु लस उसे फँसाकर मुखबिर की भू मका में उसे प्रस्तुत करती है। उसकी पत्नी परिताप से भरी कलकत्ता आती है और उस जाल से उसे निकालने में सहायक होती है जिसमें उसने अपने को बुरी तरह फँसा लया था। इस बीच पु लस की तानाशाही के वरूध्द एक बड़ी जन जागृति शुरू होती है। इस उपन्यास में वराट जन आन्दोलनों के स्पर्श का अनुभव पाठक को होता है। लघु घटनाओं से आरम्भ होकर राष्ट्रीय जीवन में बड़े-बड़े तूफान उठ खड़े होते है। एक क्षुद्र वृत्ति की लोभी स्त्री से राष्ट्र-नायिका की है सयत में जालपा की परिणति प्रेमचंद की कला की प्रतिनि ध स्थिति है। प्रेमचंद के लेखन में हम निरन्तर मानव चरित्र के उच्चतर रूप का परिचय पाते है।

'कर्मभू म' अशान्त काल की प्रतिध्वनियों से भरा हुआ अपनी क्रान्तिकारी चेतना के कारण वशेष महत्वपूर्ण उपन्यास है। गोर्की के उपन्यास 'माँ' के समान ही यह उपन्यास भी क्रान्ति की कला पर लगभग एक प्रबन्ध-ग्रन्थ है। अनेक प्रकार से 'कर्मभू म' प्रेमचंद की सबसे अ धक प्रौढ़ और क्रांतिकारी रचना है। यह उपन्यास सामाजिक अन्याय के वरूध्द संपूर्ण रूप से वद्रोह की भावना को स्वर देता है। 'गोदान' का कसान नायक होरी, वशेष रूप से उस उपन्यास के अद् वतीय साहित्यिक महत्व का रहस्य है। क्रान्तिकारी भावना और उद्रेक की दृष्टि से वह 'कर्मभू म' से आगे नहीं बढ़ सका है। होरी की समानता केवल सूरदास कर सकता है। ले कन 'कर्मभू म' में हमें क्रान्तिकारी पात्रों की एक पूरी चत्रशाला मलती है।

'गोदान' प्रेमचंद लेखक के साहित्यिक जीवन का उत्तुंग हिम- शखर है। इसी शखर की ओर उनकी संपूर्ण साहित्य यात्रा उन्हे लए जा रही थी। इस उपन्यास में वे जमींदारी और औद्यगीकरण दोनों की दुर्व्यवस्था पर आघात करते है। चाहे खेत हो, चाहे फैक्ट्री, मेहनतकश का दोनों ही जगह कठोर उत्पीड़न होता है। 'गोदान' में होरी के चरित्र में प्रेमचंद भारत की संपूर्ण पीड़ा और अन्तर्वयवस्था को साकार करते है। होरी ही भारत है, जिसका शताब्दियों पर्यन्त शोषण और उत्पीड़न हुआ है, कन्तु फर भी जिसने अपने अस्तित्व को सुर क्षत रखा है और अपने हृदय और दृष्टि की वशालता में कोई अन्तर नही आने दिया। उपन्यास में और भी अनेक महत्वपूर्ण पात्र है- गोबर, धनिया, झुनिया, मेहता, मालती आदि। इनका आधार ग्राम-जीवन है और नगर जीवन भी, यहाँ भी, शोषण वामन-डगों से बढ़ रहा है। यह पात्र छल और अन्याय का वरोध करते है और इस जीवन और संसार को बदलने के लए संघर्ष करते है। इस प्र क्रया में वे स्वयं भी बदलते है और अ धक उन्नत, अ धक स क्रय और क्रान्तिकारी बनते है।

प्रेमचंद की प्रय कुछ समस्याओं की सू च जिसका वर्णन बार-बार उनकी रचनाओं में पाते है-

1. वस्त्राभूषण का आकर्षण और तज्जनित पीड़ा, समस्याएँ और दुःख
2. कसान के शोषण और उत्पीड़न की कथा।
3. साम्प्रदायिक तनाव, अन्ध वश्वास, पूर्वाग्रह, दुराग्रह और पुराण-पन्थिता।
4. ववाह-व्यवस्था और दहेज-प्रथा।
5. हिन्दू वधवा की दुर्दशा।
6. सौतेली माँ।
7. सामाजिक हलचलें और राष्ट्रीय जागरण

8. इतिहास के प्रति लगाव, मध्यकालीन इतिहास और समकालीन भारतीय इतिहास।
9. पारलौ कक तत्व और भटकाव।
10. राष्ट्रीय भावनाओं से सम्बन्धित वषय।
11. कबड्डी और गुल्ली-डण्डा से सम्बन्धित खेल।
12. दिखावे और बनावटी पर कटाक्ष और व्यंग्य।
13. सामाजिक न्याय से सम्बन्धित वषय।
14. सामाजिक यथार्थ के स्पर्श से चरित्र का उन्नयन।
15. चरित्र प्रधान कथाएँ।

इस प्रकार 'कलम के सपाही' प्रेमचंद ने भारतीय समाज के अल क्षत एवं तिरस्कृत अंग शो षतों तथा नारी का सर्वांगीण चत्रण अपने साहित्य में समग्रता से कया है। उनका रचना का समय स्वातन्त्रय पूर्व था, ले कन आज उत्तर आधुनिकता के इस युग में समकालीन सामाजिक परिस्थितियाँ एवं गति व धयाँ भारतीय समाज की सोच एवं वचारधारा को परिवर्तित नही कर पायी है। जो प्रश्न और सवाल, समस्याएँ स्वातन्त्र्य पूर्व थे वे आज भी काफी हद तक उपस्थित है। साथ ही कुछ नयी समस्याएँ भी जुड़ गयी है। अतः इन तथ्यों का पुनर्मूल्यांकन प्रेमचंद के उपन्यासों के माध्यम से करने का प्रयत्न कया गया है।

ISSN : 2319-7137, Volume: 15/Issue: 01, January-June : 2022

वृद्धावस्था विमर्श के अग्रदूत : भिखारी ठाकुर

डॉ. संतोष कुमार
नई दिल्ली
9868152874

आजु भारतीय भाषा- साहित्य में दलित विमर्श, आदिवासी विमर्श, स्त्री विमर्श, किन्नर विमर्श (ट्रांस जेंडर डिस्कोर्स) आ वृद्धावस्था विमर्श के प्रचलन बा ओकरा पर साहित्यकार भा शोधकर्ता सभे लगातार आपन कलम चला रहल बा। सुप्रसिद्ध लेखिका रेखा सेठी के एगो पुस्तक बा, ' स्त्री विमर्श: पहचान व द्वंद' (राजकमल,नई दिल्ली) ओकर भूमिका में लेखिका स्वीकार करत बाड़ी कि 'साहित्य की दुनिया में नब्बे के बाद से अस्मितावादी साहित्य का नया उभार नई दिशाओं की ओर संकेत करता है। स्त्री, दलित, अल्पसंख्यक, आदिवासी- सभी वर्गों ने अपनी अभिव्यक्ति को हाशिये से केन्द्र में लाने के लिए सशक्त रचनाएँ प्रस्तुत की।' अइसे त बहुत विर्मशकार सभे साहित्य में वृद्ध विमर्श के चर्चा कर रहल बानी। हमनी के भोजपुरी साहित्य में एह विमर्श पर बात करे के बा।

कहे के ना होई कि भोजपुरी साहित्य में दलित विमर्श मराठी भा हिंदी साहित्य से पहिले आइल जेकर ताजा उदाहरण बा हीरा डोम के लिखल भोजपुरी कविता ' अछूत के शिकायत' आ विक्रमा प्रसाद के उपन्यास ' भोर मुस्काइल'। सभे के मालूम बा कि ई कविता सरस्वती के सितंबर, 1914 अंक में छपल रहे जेकर यशस्वी सम्पादक आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी जी रहनी। विक्रमा प्रसाद के उपन्यास साल 1978 में प्रकाशित भइल।

एकरा से साबित हो रहल बा कि भारत के प्रत्येक भाषा में जे तरह दलित विमर्श और दलित चेतना के (Dalit discourse and Dalit consciousness) के चर्चा हो रहल बा ओकर शुरुआती चलन भोजपुरी साहित्य में देखे के मिलत बा। हिंदी भाषा में 1980-90 के बाद से दलित चेतना के साहित्य खुल के समाने आवे लागल ओकरा पहिले भोजपुरी साहित्य में दलित चेतना क साहित्य आईल शुरू हो गइल रहे चाहे ऊ पद्य साहित्य होके भा गद्य साहित्य।

एही लेखा, भोजपुरी साहित्य में वृद्ध विमर्श में बहुत पहिले काम भइल। भोजपुरी साहित्य के समर्थ लोककलाकार, लोकप्रिय रंगकर्मी, नवजागरण के संदेशवाहक, नारी विमर्श, दलित विमर्श के प्रमुख उद्घोषक आ लोकसंगीत साधक भिखारी ठाकुर भोजपुरी साहित्य में वृद्ध विमर्श के प्रथम विमर्शकर्ता बानी। आपन 12 गो लोकनाटकन में अनेकानेक सामाजिक बुराईयन के हमनी के सोझा ले के अइनी। बाकिर ऊंहा के लिखल पद्यात्मक आलेख 'बुढ़शाला के बेयान' ईहा करल प्रासंगिक होई जवन वृद्ध विमर्श के बात कर रहल बा।

आजु के उत्तरआधुनिक समय में लोगन की नजर हाशिया के समुदाय पर पड़ल बा। स्त्री, दलित, आदिवासी, अल्पसंख्यक के संगे अब वृद्ध पर भी ध्यान केंद्रित कईल जा रहल बा। जेकरा चलते वृद्धावस्था विमर्श उभर के हमनी का सोझा आ रहल बा। बाकिर सिमोन द बुआ (9 जनवरी, 1908-14 अप्रैल, 1986) 1950 से वृद्धावस्था पर चिंतन-मनन करल शुरू क देले रहली।1970 में प्रकाशित उनकी शोधपूर्ण कृति 'ला विएलेस्से' (फ्रेंच) एकर प्रमाण बा। 'ला विएलेस्से' क अंग्रेजी अनुवाद 'ओल्ड एज' (पैट्रिक ओ ब्रेन) 1977 में प्रकाशित भइल।

एह कृति के चर्चा आपन संपादकीय में ऋषभदेव शर्मा करत बानी कि "यह कृति वस्तुतः सिमोन की भविष्योन्मुखी विश्वदृष्टि का प्रमाण है और वृद्धावस्था विमर्श की गीता है।"[1]

अब सवाल बा कि भिखारी ठाकुर (1887 -1971) बिहार के सुदूर प्रांत में भोजपुरी भाषी क्षेत्र में वृद्ध लोगन खातिर बूढ़साला बनावे के संकल्पना आपन रचना के माध्यम से देत रही। सभ केहू जानत बा कि भिखारी ठाकुर के लेखन के समय सीमा 1919 से 1965 (भिखारी रचनावली के संपादकीय पृष्ठ 6) रहे। बाकिर समय सीमा में केतना समानता बा कि फ्रेंच में सिमोन द बुआ ओह समय 'ला विएलेस्से' लिखत रही आ ओहि समय अवधि में भोजपुरी में भिखारी ठाकुर 'बूढ़साला के बेयान' लिखत रहीं। हमनी ईयाद करे के चाहीं कि भिखारी ठाकुर के एगो नाटक बा ' गबरघिंचोर'। एह नाटक को देखला पढ़ला के बाद समीक्षक लोग ओकर तुलना जर्मनी के मशहूर नाटककार, रंगकर्मी आ कवि बर्तोल्त ब्रेख्त के सामने खड़ा कर देलन।

'बर्तोल्त ब्रेख्त के 'कॉकेशियन चॉक सर्किल'(खड़िया का घेरा) और गबरघिचोर के विषय के ट्रीटमेंट में विस्मयकारी समानता दिखती है पर कथ्य जुदा है।' जईसन कि भिखारी ठाकुर पर शोध करे वाला डॉ मुन्ना पांडे मानत बानी।

प्रो हरि नारायण ठाकुर जी के कहनाम बा कि "....शुरू में भिखारी ठाकुर को अपनी नाच मंडली के कारण कड़े सामाजिक प्रतिरोधों का सामना करना पड़ा क्योंकि उनके नाटक और स्वांग में सामाजिक कुरीतियों और बुराईयों पर आधारित हैं। बाल विवाह, विधवा विवाह, गरीबी के कारण बेटी बेचवा, छुआछूत, बेरोजगारी आदि स्त्री और दलित पिछड़ों के जीवन की अनेक सामाजिक समस्याएं थीं जिन पर भिखारी ठाकुर गीत और नाटक लिखते आए प्रदर्शित करते थे।" [2]

उहें भजन- कीर्त्तन- गीत -कविता में संकलित

'बुढ़शाला के बेयान' के माध्यम से बुढ़ के तकलीफ़, बाल बचवन द्वारा बुजुर्ग लोगन के नजरअंदाज आ दुर्व्यवहार के मार्मिक वर्णन कइल गइल बा सङ्गे सङ्गे भिखारी ठाकुर जी बुजुर्ग लोगन के दुःख देख के बुढ़शाला (Old Age Home) बनावे के सुझाव देत बानी। एगो महान साहित्यकार के इहे गुण ह जे सामाजिक समस्या के सबके सोझा उठावेला आ ओकर निदान के सुझावो देला जवना के उदाहरण बा लोक रंगकर्मी भिखारी ठाकुर के ' बुढ़शाला के बेयान'।

हमनी ई मालूम बा की कवनो रचना भा रचनाकार प्रासंगिक तबे ले बा जब ले ओकर रचनन में उठावल समस्यन के निवारण नईखे हो जात। भिखारी ठाकुर आजो ओतने प्रासंगिक एही खातिर बाड़े ऊ अब ले हल नईखे भइल। विदित होखे कि भिखारी ठाकुर आपन नाटक के माध्यम से जवन सामाजिक चेतना के संचार करे के कोशिश कईलन ओकर संचार के जरुरत आजो ओतने बा ताकि ऊ चेतना से समस्या के निवारण हो सके।

भिखारी के लागल की हमनी आपन नाटक कला से माध्यम से समाज में सुधार के काम कर सकिले जइसे बंगाल में राजा राम मोहन राय, इश्वर चंद विद्यासागर, स्वामी विवेक नन्द जइसन समाज- सुधारक लोग नव जागरण काल में कईल।"[3]

समाज के हरेक सजग आ समझदार इंसान उहाँ के विचार से असहमत ना हो सकेला। भिखारी ठाकुर के नाच के सामाजिक रेसीपोकल का रहे है एक संदर्भ में व्यास मिश्र जी के विचार समीचीन बा। एक जगह उन्हां के लिखत बानी कि "भिखारी ठाकुर का नाच शहराती लोगों को भले ही नहीं सुहाए, उसमें समूचा 'फोक' समूचा

ग्रामीण परिवेश जीवंत हो उठता था। भिखारी ठाकुर ने नाच पार्टियों द्वारा प्रदर्शित परंपरागत लटको झटको को नई दिशा दी। सामाजिक कुरूतियों से उपजे गहरे विषाद को नौटंकी शैली में जब वे मंच पर पेश करते, तो कई कई आंखों से गंगा जमुना बहने लगती।"[4]

एगो कवि हमेसा युगद्रष्टा होखेला । भिखारी ठाकुर के दूर दृष्टिता के ई परिचायक बा कि उहाँ के आपन समय में हो रहल सामाजिक मूल्यन के क्षरण आ परिवार के टूट रहल मयार्दा के भाप लेले रहनी तबे वृद्ध लोगन के हालात के देखत उहाँ के वृद्धाश्रम के व्यवस्था खातिर जन सहयोग के बात कइनी।

भिखारी रचनावली के अनुसार - " वर्तमान काल में परिवार बूढ़े माता-पिता या अन्य बूढ़ों को नाना प्रकार के कष्टों का सामना करना पड़ता है इसलिए लोककवि का दूर दृष्टि परक निवेदन है-

बुढ़शाला के रचना करीं। मइया के दुःख जल्दी हरीं।
ना त टूटी माता के आस। कहियो एक दिन होई तलास।
तबहीं खूब समुझब$ तोता। रोअब$ परदा भीतर अलोता।
कहत 'भिखारी' दोउ कर जोर। समुझ परी तब टपकी लोर।'[5]

'बुढ़शाला के बेयान' में भिखारी ठाकुर कहत बानी कि 'अब देखल जाय कि गाय वास्ते गौशाला खुल गइल, गरीब वास्ते धर्मशाला, गंवार वास्ते पाठशाला बड़ नीक काम भइल। उहाँ के माँग बा कि बूढ़ खातिर बूढ़साला (Old Age Home) खुले के चाहीं। '[6]

समाज में छीजत मूल्यन के भिखारी ठाकुर बड़ा बारीकी से मूल्यांकन करत रहीं। बड़हन साहित्यकार उहे होखेला जे अपना आसपास के होखत छोट से छोट घटनाक्रम, बदलत सामाजिक व्यवस्था, परिवार के टूटन के आपन पारखी नज़र से देखेला। परिवार में बूढ़ माई-बाप के प्रति जवान बेटा पतोह के नजरिया बदलत जा रहल बा जेकरा भिखारी ठाकुर महसूस कइनी कि कइसे परिवार में बुजुर्ग महतारी बाप के उपेक्षा कइल जा रहल बा। ना उनका लोग के समय से खाना मिलत बा, ना समय से दवाई ना उहाँ लोग के स्वास्थ्य के धेयान। उल्टे बेटा पतोह बूढ़ माई बाप के कुत्ता बिलाई कहत बा लो। उहे बुजुर्ग के, जे आपन बेटा के खुशी ला महाजन से करजा काढ़ के परवरिश कइलस। आजु उहे बेटा उनका के एतना दुःख देता कि बाप धोती में मुँह लुका के दुआरी पर खटिया पर पड़ल रोअत बाड़न। कहल बा कि बाप के पीठ धूप में आ माई के पेट चूल्हा के अगाड़ी जरेला त बचवा रोटी पावेला बाकिर बचवा बुढापा के जब सहारा ना बनेला त सोच सकल जाला कि ओह बुजुर्ग लोगन के जिनगी के का हाल होई? वृद्ध लो आपन अनुभव से कहेला कि जब बचवन के समझ आई तब उहो तड़प जाई लो तब केहू लोर पोछे वाला भी ना मिली-

"समुझ परी कहिया, लोर टपकी तहिया।
लोर टपकी कहिया, बुढापा आई तहिया।"[7]

(पृष्ठ 268, भिखारी ठाकुर रचनावली, बुढ़शाला के बेयान।)

गाँव में जवान बेटा आपन शेखी बघारे में, देखावा करे में, आपन मज़ा उड़ावे में, आपन सुख सुविधा जुटावे में हज़ारों लाखों खरच देत बा बाकिर आपन माई बाप के सेवा में दुबरा जात बा। तबे भिखारी ठाकुर कहत बानी कि-

' उपरे से चिकन बा, चमवा के छाजा
तीन दिन का सेखी में, उड़ावत बानी मजा

बूढ़ा-बूढ़ी के दुःख भइल बा, लागत नइखे लाजा।
बाबू- भइया एकमत होखे सब मिलि के समाजा
एह अरजी पर मरजी करीं ,मानवां के ताज़ा
महाबीर के नाम सुमिर लीं, जेह में बाजी बाजा
बुढ़शाला बनवाई ना त होत बा अकाजा
बाबू सब केहू के परत बानी पाँव, ह भिखारी ठाकुर नाँव।[8]

शहरी परिवेश में सीनियर सिटीजन हाऊस, ओल्ड ऐज होम आदि के प्रचलन जवन आजु बा ओकरा में कुछ में पारिवारिक मजबूरी बा, त कुछ में बुजुर्ग स्वेच्छा से रहत बाड़न। आज डे (day) परम्परा वाला नगर-महानगर बुजुर्ग लोगन ला अंतरराष्ट्रीय बुजुर्ग दिवस भा इंटरनेशनल डे फ़ॉर ओल्ड पर्सन्स 1 अक्टूबर के तय कर देले बा के एही दिन तारीख के बुजुर्ग लोग के चिंता कइल जाई। बाकिर गाँव में अवमूल्यन के भिखारी ठाकुर जेतना संजीदगी से उठवले बानी ओकर मुख्य कारण युवा पीढ़ी आपन बुजुर्गन खातिर ओतना संवेदनाशील नइखे जेतना के जरूरत बा। बाकिर इहों साँच बा कि एकगो माई बाप पांच गो संतान के पाल पोस लेला बाकिर पांच गो संतान एगो माई बाप के बुढापा में सेवा ना कर सकेला जबकि ई सबसे बड़का सच बा कि सभे के बुढ़ होखे के बा।

'बुढ़शाला के बेयान' में भिखारी ठाकुर बड़ी मार्मिक ढंग से ओह बूढ़ महतारी के बात लिखत बानी जे कलपत कहत बाड़ी-

'बुढ़शाला के कहीं कहानी, तेही के जानी करन समदानी।
सरवन करीं यह अमृत बाता, तेकरे लागी राम से नाता।
पाव भर में कइलस बाईं, नव मास तहां रखली माई।
करनी के फल कहिया मिली, मइया भइली कुत्ता तर के बिल्ली।
मइया के दुख भइल अपार, कहला से ना पाइब पार।
बुढ़शाला के रचना करीं। मइया के दुःख जल्दी हरीं।'[9]

साँचों, भिखारी ठाकुर जी से बुढ़ माई के उपेक्षा नइखे देखल जात। उहाँ के आपन काव्यात्मक अभिव्यक्ति से समष्टि के दुःख व्यक्त कर रहल बानी आ एकर उपाय के रूप में बुढ़शाला (ओल्ड ऐज होम) के बनाये के जरूरत पर बल दे रहल बानी। एगो महतारी के एकरा से जादे बड़ पीड़ा का हो सकत बा जे आपन औलाद के नौ महीना अपना पेट में राखि के, हर दुःख दर्द सह के, पालपोस के बड़ा कर देली आउर जब उ औलाद उनकर सहारा बनित त आजु उ उनका के एतना तकलीफ देत बा कि शब्द में कहल ना जा सकेला। ई रहे भिखारी ठाकुर के लेखनी आ चिंतनधारा जे समस्या के उठावत रहीं आ सङ्गे सङ्गे ओकर निदान देत रहीं।

भिखारी ठाकुर कहत बानी कि युवावस्था में केहू के ई आभास ना होखेला कि उहो बुढ़ होखीं आ जवन परिस्थिति में सामना आजु बुढ़ लोग करत बा उहे स्थिति ओकरो सामने आई। लोककवि कहत बानी कि हर गाँव में एगो बूढ़शाला खुले के चाहीं जवन गाँव के लोगन के चंदा से बने आ नदी के किनारे बने। एह बुढ़ शाला के संचालन के भार गाँव के लोगन के सामूहिक रूप से होखे।

" अइसन भइल ना होखत बेया। देस-बिदेसे।कवनो जगहा।
हम नया कइलीं प्रचार , आस पुराईं बाबू- भइया।
मदद लेके थोरा-थोर, बने बुढ़शाला गाँव गाँव में।

माँगत बानी अतने भीख, हई 'भिखारी' बच्चेपन से।'[10]

भिखारी ठाकुर के विचार के हिंदी आलोचक भगवान सिंह द्वारा ' साहित्य में वृद्ध विमर्श'पर जनसत्ता के 9 सितंबर, 2018 के आलेख जोड़ल जरूरी बा। उ आलेख के कुछ पंक्ति उधृत कइल इहाँ वाजिब बुझाता-

'वृद्धावस्था की बात करने पर अक्सर प्रसिद्ध फ्रांसीसी लेखक अनातोले फ्रांस का यह कथन याद आता है- 'काश! बुढ़ापे के बाद जवानी आती!' अनातोले का यह कथन बड़ा ही सांकेतिक है। जवानी वह शारीरिक अवस्था है, जो जोश, ऊर्जा, शौर्य से ओत-प्रोत होती है, जिसका उपयोग करते हुए हर व्यक्ति अपने-अपने ढंग से जीवन-यात्रा तय करता है और इस क्रम में वह बुढ़ापा तक पहुंचता है। बुढ़ापे में जवानी वाली ऊर्जा शक्ति तो नहीं रह जाती, रह जाता है विविध अनुभवों का भंडार। इन अनुभवों के आलोक में व्यक्ति को जवानी के अनुभव रहित जोश में किए गए अपने कई गलत निर्णयों और कार्यों का अहसास होता है, तो वह अनुताप की आंच में तपते हुए यह सोचता है कि अगर उसे बुढ़ापे में जवानी जैसी ताकत, स्फूर्ति मिल जाए तो वह पहले से बेहतर, श्रेयस्कर कार्य कर सकता है- यही आशय है अनातेले फ्रांस के इस कथन का।'

'बुढ़शाला के बेयान' में भिखारी ठाकुर के कहनाम बा कि उहो बुढ़ जेकरा पर उनकर बेटा जुलूम करत बाड़न उहे एक बेर जवान होखे देखल चाहत बाड़न कि उनकर संतान उनका सङ्गे इहे बेवहार करत बा त इनकर का प्रतिकिया होई।

एक लोक रंगकर्मी के चिंतन दृष्टि के लोहा माने के चाहीं कि समान बात दुनिया के दोसर कोना में एगो फ्रांसीसी विद्ववानों कह रहल बा। सबसे बड़का बात बा कि भिखारी ठाकुर जी वृद्ध केहू धर्म के होखे सबके दुःख के समान रूप से दर्शा रहल बानी मसलन निम्नलिखित पंक्ति के देखल जरूरी बा -

हिंदू - मुसलमान, हमरा कहला पर दीं कान।
नाहीं त होत बा बूढ़ के अपमान।
होत बाटे बूढ़ के अपमान हमरे भाई
बच्चापन से जेकरा के तूं कहत अइल माई
तेकरा खातिर अब काहे तूं हो गइल कसाई
****
कहे ' भिखारी ' अबहीं तूं बुढ़शाला द बनवाई
ना त होत बाटे बुढ़ के अपमान।। [11]

एह मार्मिक निवेदन के मार्फत लोककर्मी भिखारी ठाकुर ओह बुजुर्ग के बाल बचवन से निहोरा करत बानी कि जदी बुजुर्ग के अपमान नइखे करे के त कम से कम एगो बुढ़शाला बना द लो।

'बुढ़शाला के बेयान' के लिटरेरी एरेना में मूल्यांकन नइखे भइल अब उ समय आ गइल बा जब साहित्य में ओल्ड ऐज पीपल्स पर डिस्कोर्स शुरू हो गइल बा त वृहद स्तर पर एह रचना के ऊपर काम में गुंजाइश देखाई दे रहल बा।

संदर्भ ग्रंथ :

1. ऋषभदेव शर्मा, नहि नहि रक्षति डुकृञ करणे (संपादकीय), वृद्धावस्था विमर्श, चंद्रमौलेश्वर प्रसाद, पृ. 9 संपादक : ऋषभदेव शर्मा,प्रकाशक : परिलेख प्रकाशन, नजीबाबाद,संस्करण : 2016

2. पृष्ठ 191, साहित्य और कला माध्यमों के द्वारा दलित पिछड़ों का जागरण, भारत में पिछड़ा वर्ग आंदोलन और परिवर्तन का नया समाजशास्त्र, प्रो हरि नारायण ठाकुर, कल्पज पुबलिकेशंस, दिल्ली, 2009
3. महात्मा गाँधी अंतरराष्ट्रिय हिंदी विश्वविद्यालय के शोधर्थी मन्नू राय के आलेख " भिखारी के सामाजिक चेतना" भोजपुरी जिनिगी पृ 6 अंक अक्तूबर 2009-मार्च 2010
4. कारवां और डफली और मुनादी, पृष्ठ 71, गहरे पानी पैठ, व्यास मिश्र, राजकमल प्रा लि नई दिल्ली, 2004
5. पृष्ठ - 268,बुढ़शाला के बेयान,भिखारी ठाकुर रचनावली, बिहार राष्ट्रभाषा परिषद, पटना, 2005
6. उहे।
7. पृष्ठ 268, उहे।
8. पृष्ठ 270, उहे।
9. पृष्ठ संख्या- 268, उहे।
10. पृष्ठ 270 उहे।
11. पृष्ठ 270 उहे।

ISSN : 2319-7137, Volume: 15/Issue: 01, January-June : 2022

दलित महिला संघर्ष और शिक्षा का आइना

डॉ. मंजु रानी

तदर्थ असिस्टेंट प्रोफेसर (दिल्ली विश्वविद्यालय)

हिन्दी विभाग, किरोड़ीमल कॉलेज

दलित साहित्य में महिला आन्दोलन
देखो, कर रहा आज भी जन–जन।
किया नहीं किसी ने भी अभिनन्दन
महिला कर रही आज भी व्रफन्दन।।

दलित स्त्री का विरासत से ही हमारे दलित साहित्य में पूरा अधिकार रहा है। प्राचीन काल से लेकर आज तक हर वह स्त्री प्रताड़ित की जाने वाली दलित स्त्री है जो पल–पल अपने उन सात फेरों को सात जन्म वेफ नाम पर अपना सर्वस्व हंसते हुए न्यौछावर कर देती है।

दलित साहित्य में महिला आन्दोलन का युग लगातार दयनीय रहा है। स्त्री की दुर्दशा का वर्णन प्रेमचन्द से लेकर आज के युग में जीती–जागती कुसुम मेघवाल, भंवरी देवी आज भी अपने घर में ही अपने ही परिवार से लोगों के खिलाफ खड़ी है। दलित ही दलित का दुश्मन बना हुआ है। यहाँ तक कि दलित के परिवार में दलित स्त्री भी भुक्तभोगी में सर्वप्रथम रही है। दलित महिला आन्दोलन की शुरूआत समाज, वर्ग, देश में शुरू होने से पहले वह अपने परिवार से ही शुरू करती है।

एक छोटा–सा उदाहरण देकर साफ करना चाहती हूँ कि जब भी बलात्कार होता है वह सिर्फ एक लड़की, स्त्री, महिला का ही होता है। क्या कभी किसी पुरुष की इज्जत पर कोई उंगली उठाता है? सीता, द्रौपदी, मीरा आदि को हम देखते हुए आ रहे हैं कि सीता ने ही अग्नि परीक्षा क्यों दी? क्या यह अग्नि परीक्षा राम नहीं दे सकते थे, नहीं! क्या द्रौपदी वेफ बदले अर्जुन को भरी सभा में नंगा नहीं किया जा सकता है, नहीं! और मीरा ने ही जहर का प्याला क्यों नहीं पिया? क्यों हमारे पुरुष प्रधान समाज में केवल महिला ही प्रताड़ित की जाने के लिए ठेका लिए हुए आती है। ये उद्धरण तो सिर्फ उच्च वर्ग की स्त्रियों के विषय में बताये जा रहे हैं।

सीता, द्रौपदी और मीरा
तीनों ही स्त्राी अधीरा।
सुखों से ये सब फकीरा
दुःखों ने इनको है घेरा।
कब तक मुंह पर हाथ लगाये
सहती रहेगी यह पीरा।

प्राचीन काल से ही जब उच्च वर्ग की स्त्रियों को पैरों की ठोकर पर रखा जा रहा है तो आज के हालात जो हैं, जैसे हैं, सोचने पर मजबूर कर रहे हैं। दलित महिला का बलात्कार, वस्त्रहीन कर चुड़ैल बताना, बाल कटा देना और न जाने क्या–क्या घटनायें होती है जो हमें सोचने पर मजबूर कर देती हैं कि क्यों घर में हमेशा माँ अपनी बेटी को ही यह कहकर कॉलेज जाने के लिए विदा करती है

कि बेटा, कॉलेज पहुँच जाने पर फोन करना और रात होने से पहले घर आ जाना, किसी से लिफ्ट न लेना, अकेले न आना, सहेलियों के साथ ही ऑटो में बैठकर आना इत्यादि ऐसी न जाने कितनी ही बातें हैं जो हमेशा एक महिला, महिला के लिए ही बोलती है, क्योंकि वह जानती है यदि बेटा घर में लेट आये तो शायद वो अनहोनी बातें दिमाग में नहीं आयेंगी परन्तु बेटी के शाम होते ही माँ अपनी बेटी को कॉल करने लगती है।

कहने का तात्पर्य यह है दलित साहित्य में महिला आन्दोलन आज ज्यों का त्यों बना हुआ है। महिला चाहे दलित हो या न हो उसका शोषण पल–पल हो रहा है। इसी बात से अंदाजा लगाया जा सकता है कि जब इन उच्चवर्गीय सम्पन्न महिलाओं के साथ शोषण, अत्याचार, अनाचार, दुराचार, बलात्कार हो रहे हैं तो दलित महिला का स्थान तो बिल्कुल निम्न स्तर पर है। महिला आन्दोलन तो लगातार चला आ रहा है परन्तु उसमें भी दलित महिला का शोषण अत्यध्कि मात्रा में हो रहा है।

बाबा साहेब अम्बेडकर ने संविधन में महिलाओं को ध्यान में रखकर उनके हितों की रक्षा के लिए कानून बनाये परन्तु आज तक उन नियमों, कानूनों की जानकारी एक गाँव की दलित महिलाओं से वंचित रहा है।

नाम अनेक जात है एक
पल–पल घुटती रहे है देख।
अंधेरे की काल कोठरी में
नहीं कोई उजाले की रेख।
पैरों के तलवे वेफ नीचे
इनकी जिन्दगी बन गई ढेर।

दलित समाज जहाँ एक ओर अपने अन्दर एक मध्यवर्ग के उदय से जुड़ी समस्याओं से जूझ रहा है वही दलित–आन्दोलन के भीतर एक और आन्दोलन की आहटें भी सुननी पड़ रही हैं, यह है दलित महिलाओं का आन्दोलन जो समग्र महिला समुदाय के मुक्ति आन्दोलन का हिस्सा होने के साथ–साथ दलित समाज में पितृसत्ता का प्रश्न उठाता है दलित महिलाओं की त्रासदी यह है कि उन्हें एक गाल पर ब्राह्मणवाद का तो दूसरे गाल पर पितृसत्ता का थप्पड़ खाना पड़ता है।

दलित समाज के उत्थान के लिए बाबा साहेब अम्बेडकर ने अनेक कार्य किए चाहे वो स्त्री वर्ग हो या पुरुष वर्ग। बाबा साहेब के अनुसार, ''मैं किसी समाज की प्रगति का अनुमान इस बात से लगता है कि उस समाज में महिलाओं की कितनी प्रगति हुई है उनके विचार में किसी समाज में उन्नत होने का मापदण्ड उस समाज के पुरुष न होकर स्त्रियाँ हुआ करती हैं।''

बाबा साहेब के द्वारा यह निश्चय किया गया कि इस देश में महिलाओं की प्रगति के लिए विशेष ध्यान देना होगा, वे स्वयं जिस समाज में थे उसमें तो महिलाओं का स्थान दलितों में दलित के रूप में था। सामाजिक मान्यताओं का बंधन और पुरुष समाज की अधिकार प्राप्त प्रवृत्ति सभी कुछ तो भारतीय समाज में नारी को सहना पड़ता था। उसका समूचा व्यक्तित्व कर्तव्यों वेफ बोझ से दबा था। अधिकार उसके हिस्से में नहीं थे जिनसे वह अपना विकास कर सके।

बाबा साहेब का जिस समय समाज में आगमन हुआ उस समय महिलाओं के लिए सोचने एवं कुछ करने की प्रवृत्ति का विकास हो रहा था। अनेक स्थानों पर उनके लिए स्कूल आदि आरम्भ किये थे। आन्दोलन से भी महिलाओं को जोड़ने के प्रयास जारी थे। घर–परिवार के बाहर उनकी हिस्सेदारी बढ़ी भी थी। बाबा साहेब से पूर्व पुणे में महात्मा ज्योतिबा फुले ने लड़कियों को शिक्षा के लिए पाठशालायें खोली थी स्वयं उनकी पत्नी सावित्री फुले ने इस कार्य में महत्वपूर्ण योगदान दिया था।

बाबा साहेब की मान्यता थी, कि सामाजिक क्रान्ति में नारी को भी पुरुष वर्ग की सहयोगी बनना चाहिए। 20 जुलाई 1920 को मुम्बई में अछूतोद्धार आन्दोलन की शुरूआत 'बहिष्कृत हितकारिणी सभा'

की स्थापना से की गई। इस सभा का उद्देश्य अस्पृश्यता निवारण आन्दोलन को आगे बढ़ाते हुए दलितों की बस्तियों में स्कूल तथा छात्रालयों की स्थापना करना था इसका कार्यक्रम अनेक स्थानों पर होते थे जिनमें महिलाओं की भी हिस्सेदारी होती थी इस समय तक स्वयं दलित महिलायें साहस बटोरकर मंच पर आकर अपनी पीड़ा को सार्वजनिक रूप से बतलाने भी लगी थी। इनमें वेणुबाई भटकर और रंगुबाई शुभरकर आदि के नाम विशेष रूप से लिये जाते हैं।

अमरावती में 12 नवम्बर, 1927 को मंदिर प्रवेश के लिए सम्मेलन हुआ इसमें भी काफी महिलाओं ने हिस्सेदारी निभायी थी। चावरदार, तालाब से पानी लेने के लिए किए गए 'महाढ़ सत्यागह' में महिलायें भी शामिल हुई थी। दलितों द्वारा समाज परिवर्तन के लिए तथा अछूतों के जीवन में यह एक महत्वपूर्ण घटना थी। सन् 1930 में महात्मा गांधी का 'दाण्डी मार्च' का जो राजनीतिक दृष्टि से महत्व था, वही सामाजिक दृष्टि से डॉ. अम्बेडकर के 'तालाब मार्च' का था।

बाबा साहेब का सामाजिक संघर्ष जैसे–जैसे आगे बढ़ रहा था, वैसे ही महिलाओं की हिस्सेदारी भी बढ़ रही थी। बाबा साहेब चाहते थे कि महिलायें स्वयं अपने पैरों पर खड़ी हों, वो किसी पर आश्रित न हों, जिसके लिए उन्होंने कई प्रयास भी किये। सन् 1928 में मुम्बई में डॉ. अम्बेडकर की पत्नी रमाबाई की अध्यक्षता में एक महिला मण्डल की स्थापना की गयी थी तथा 1930 में नागपुर में 'डिप्रेस्ड क्लासेज सम्मेलन' के कार्यक्रम में भी बहुत–सी महिलायें आयी थीं उनमें से कुछ महिलायें ऐसी भी थी जिनको विशेषकर डॉ. अम्बेडकर ने वेश्यावृत्ति छुड़वाकर नेक जीवन जीने के लिए प्रेरित किया था। उस समय उनके बीच वेश्यावृत्ति उन्मूलन नाम से एक संगठन की स्थापना भी की गई थी।

महिला का शोषण

हो रहा है पल–पल।

भीगीं पलकें ये गाती हैं

पृथ्वी को नम कर जाती हैं।

जुलाई, 1942 में नागपुर में 'आल इंडिया शेड्यूल्ड कास्ट्स फेडरेशन' की स्थापना की गयी। उसी समय 'अखिल भारतीय दलित महिला सम्मेलन' भी आयोजित किया गया जिसमें लगभग दस हजार महिलाओं की भागीदारी थी। यह परिषद् बहुत सफल रही थी। 6 जनवरी, 1945 को बम्बई में तीसरा भारतीय अस्पृश्य महिला सम्मेलन हुआ जिसमें बड़ी संख्या में दलित और पिछड़ी जाति की महिलायें आयी।

1924 में जाईबाई चौधरी ने नागपुर में 'चोखा मेला कन्या पाठशाला' आरम्भ किया था शुरू में इसमें केवल चार लड़कियाँ ही पढ़ती थी बाद में वहीं स्कूल 'जाईबाई चौधरी ज्ञानपीठ' में रूपांतरित हुआ। इसी प्रकार एक अन्य दलित महिला तलसा बाई बनसोडे ने पति के साथ 'चोखा मेला' नामक पत्र के प्रकाशन तथा प्रचार–प्रसार में महत्वपूर्ण भूमिका निभायी। महिलाओं के बीच शिक्षा के प्रसार के लिए अनेक स्थानों हॉस्ट आदि चलाये गये, जिनमें 'डिप्रेस्ड क्लासेज गर्ल्स हॉस्टल' आदर्श हॉस्टल, रमा बाई अम्बेडकर बोर्डिंग स्कूल आदि विशेष हैं।

डॉ. अम्बेडकर की मृत्यु के पश्चात् दलित समाज की महिलाओं में आन्दोलन प्रति निराशा भाव नहीं आया, बल्कि उनके बीच जागरूक तेवर उभरे विशेषतः जिन दलित परिवारों ने बौद्ध धर्म स्वीकार कर लिया था, उन परिवार रह रही महिलाओं ने तो सम्पूर्ण अम्बेडकर दर्शन को ही आत्मसात् कर लिया था।

संसद में बाबा साहेब के द्वारा हिन्दू कोड बिल प्रस्तुत किया गया। इसको प्रस्तुत करने से पहले हिन्दू कोड में स्त्रियों को सम्पत्ति, परिवार से अलग रहने का अधिकार, तलाक आदि का अधिकार नहीं था इन सभी असमानताओं को दूर करने और हिन्दू नारी को उसकी अस्मिता वापस दिलाने के लिए बाबा साहेब के प्रयास से हिन्दू कोड बिल स्वीकृत किया था। इससे भी महिला जगत में हमेशा के लिए

याद रखते हुए महिलाओं के लिए अलग–अलग मोर्चे में बाँधना होगा तभी अभी भी घुटन भरे परिवेश में तड़प रही दलित महिलाओं को जीवन दान मिलेगा और उनसे जुड़े महिला संगठनों को बल भी।

अन्ततः उपर्युक्त सभी बातों से यह भी साफ स्पष्ट होता है कि महिला चाहे दलित हो या न हो, उसका अपने हितों को लेकर आज भी संघर्ष रूपी आन्दोलन जस का तस बना हुआ है। मैं भी एक महिला हूँ और आज भी निरन्तर जॉब, स्टडी से इतर पग–पग पर लगातार संघर्ष कर रही हूँ। आशा करती हूँ कि शायद कभी इसको विराम मिले।

संदर्भ ग्रन्थ

1. दलित पत्रकारिताः सामाजिक व राजनीतिक चिन्तन, मोहनदास नैमिषराय, श्री नटराज प्रकाशन, दिल्ली।
2. आधुनिकता के आइने में दलित, अभय कुमार दुबे, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली।
3. बाबा साहेब अम्बेडकर, आनन्द साहित्य सदन, अलीगढ़, पाँचवां संस्करण, 2001.
4. स्मारिका।
5. दलित महिलाओं का उत्थान : एक विश्लेषण दलित साहित्य, 2008, नई दिल्ली।

ISSN : 2319-7137, Volume: 15/Issue: 01, January-June : 2022

मानव के आर्थिक क्रियाकलाप : कृषि और पर्यावरण के संबंध में

डॉ. सीमा शुक्ला
E-mail:- seemashukla.wrt@gmail.com

मनुष्य स्वभावतः उद्यमशील प्राणी है अपने आर्थिक संसाधनों को बढ़ाने के लिए वह प्रत्येक युग में नए-नए अविष्कार करता आ रहा है। इस प्रक्रिया में वर्तमान समय में चलाए जा रहे आर्थिक उद्योगों का दुष्प्रभाव भी देखने को मिल रहा है इससे पर्यावरण प्रदूषण निरंतर बढ़ते जाने का खतरा उत्तपन्न हो चुका है। यद्यपि इस औद्योगिकरण में वह सृजित होने वाले दुष्प्रभावों के लिए निरंतर कोई न कोई तकनीक भी विकसित करता आ रहा है जिससे पर्यावरण प्रदूषण का खतरा कमतर होता जा रहा है परंतु यह तकनीक उत्पादित दुष्प्रभावों की तुलना में कम है जिसे और बढ़ाने की आवश्यकता है ताकि हम इस खतरे से जनजीवन को उबार सकें। इन्हीं पक्षों पर यथास्थिति विचार करना प्रस्तुत शोध आलेख का मुख्य प्रतिपाद्य है।

मानव ने अपने विभिन्न क्रियाकलापों के माध्यम से पर्यावरण में परिवर्तन लाया है। ये परिवर्तन कभी तो बहुत लाभकारी एवं आवश्यक होते हैं और कभी-कभी लंबे अन्तराल में हानिकारक और विनाशी होते हैं। वर्तमान वैज्ञानिक युग में नई-नई तकनीकों के माध्यम से कृषि क्षेत्र में तेजी से परिवर्तन आ रहा है और यह परिवर्तन लाभकारी भी है और अलाभकारी भी। आज औद्योगिकीकरण से भौतिक सुख-सुविधाओं में तो वृद्धि हुई है पर पर्यावरण ह्रास की शर्तों पर। पर्यावरण अवनयन में शामिल होने वाले कारक हैं ग्रीन हाउस प्रभाव, अम्ल वर्षा, ओजोन परत क्षरण, मरुस्थलीकरण, पर्यावरणीय प्रदूषण आदि। औद्योगिक क्रांति के बाद मानव ने प्राकृतिक संसाधनों का लोलुपतापूर्ण व अंधाधुंध विदोहन किया है और इसी का परिणाम है पर्यावरण अवनयन जिसे हम कुछ उदाहरणों से समझ सकते हैं जैसे जल प्रदूषण की समस्या को ही ले लिया जाए। यह समस्या कारखानों से निकले अपशिष्ट पदार्थों, खेतों में प्रयोग होने वाले रासायनिक खादों और नगरों के जल-मल के अनुचित प्रबंधन के कारण इतना विकराल रूप ले चुकी है परंतु हम यहां इसके कारणों पर नहीं अपितु प्रभावों की चर्चा करेंगे। मानव ने अपनी अनुचित आर्थिक गतिविधियों से प्राकृतिक जलाशयों जैसे नदियों, झीलों आदि को अत्यधिक प्रदूषित कर दिया है। वैज्ञानिक अध्ययन से प्राप्त आंकड़ों के अनुसार नदियों के 75 प्रतिशत प्रदूषण का कारण नगरों का गंदा पानी है तथा शेष 25 प्रतिशत औद्योगिक अपशिष्टों और अनिश्चित प्रदूषण स्त्रोतों के कारण है। कृषि कार्यों में प्रयोग किए जाने वाले कीटनाशकों के हानिकारक प्रभाव से जलीय खाद्य-श्रृंखला भी अछूती नहीं है और कई बार खाद्य श्रृंखला में हानिकारक पदार्थों का जैविक संचयन (bioaccumulation) और जैविक आवर्धन (biomagnification) हो जाता है। इसी प्रकार मानव ने अपने आर्थिक क्रियाकलापों से समुद्री पारिस्थितिकी तंत्र को भी अत्यधिक क्षति पहुँचाई है समुद्रों में बहुत अधिक बढ़ चुके परिवहन संचार में कभी-कभी परिवहन टंकियों से तेल के बिखराव की दुर्घटना देखने को मिलती है जिससे होने वाले जलीय प्रदूषण की भरपाई कई वर्षों तक नहीं हो पाती। अतः आवश्यकता है जल संरक्षण, संचयन और प्रवंधन की। वर्षाजल संचय (rainwater harvesting), जलविभाजक प्रबंधन (watershed management) इसका उत्तम उदाहरण है। भारत सरकार द्वारा 1974 में जल (प्रदूषण निरोध एवं नियंत्रण) अधिनियम (The water (Prevention and control and pollution) Act) पारित किया गया था जिसमें जल प्रदूषण की निगरानी के लिए केन्द्रीय व राज्य प्रदूषण नियंत्रण बोर्ड बनाए गए हैं जो इस दिशा में कार्य कर रहे हैं।

आज हमारी दैनिक दिनचर्या का इतना यंत्रीकरण हो गया है कि उसकी पूर्ति के लिए हमने लाखों टन हानिकारक गैसें पर्यावरण में पहुँचाई है जिनमें कार्बनडाई ऑक्साइड (Co2), कार्बन मोनोडाइऑक्साइट (Co), मिथेन (CH4), सल्फर डाई ऑक्साइड (So2), नाइट्रोजन ऑक्साइड तथा क्लोरो-फ्लोरो (CFCs) आदि प्रमुख गैसे हैं, जो लगातार पर्यावरण की हालत बिगाड़ रही हैं परिणामस्वरूप अम्ल वर्षा के रूप में हमें एक और पर्यावरणीय समस्या का सामना करना पड़ रहा है। शहरों में टाउनशिप की अवधारणा ने कंक्रीट की ऊंची-ऊंची इमारतें खड़ी करके शहरों में छोटे-छोटे उष्मा द्वीपों का निर्माण कर दिया है परिणामस्वरूप शहरी खासकर राजधानी नगरों की जलवायु इतनी प्रदूषित हो चुकी है कि सांस लेने के लिए स्वच्छ वायु मिलना मुश्किल हो चुका है। आखिरकार वनस्पति क्षेत्रों को उजाड़ कर ही इन टाउनशिपों का निर्माण किया जा रहा है। भौतिकवाद की ओर रुझान ने पर्यावरणीय प्रदूषणको इतना अधिक बढ़ा दिया है कि यह एक गंभीर समस्या बन गया है और इस प्रदूषित पर्यावरण से मनुष्य के स्वास्थ्य को सबसे बड़ा खतरा है। जैसे प्रदूषित जल के कारण केई प्रकार की बिमारियां फैलती हैं जैसे— टाइफाइड, अतिसार, हैजा, पीलियां आदि। मानव के आर्थिक क्रियाकलापों के दुष्प्रभाव जिन्होंने पर्यावरण एवं मानव स्वास्थ्य दोनों को अत्यधिक क्षति पहुँचाई है के उदाहरण के रूप में हम भोपाल में घटित मिथाइल आइसोसाइनेट गैस काण्ड और रूस की रेडियो समस्थानिक दुर्घटना को देख सकते हैं। ये ऐसी हैं जिन्हें भुलाया नहीं जा सकता।

सारांशतः देखा जाए तो मानव के आर्थिक क्रियाकलापों से पर्यावरण को अपूरणीय क्षति पहुँची है परन्तु यह किसी पक्ष को देखने का केवल एकपक्षीय पहलू है कारण कि ऐसा नहीं है कि मानव के आर्थिक क्रियाकलापों से पर्यावरण को केवल नुकसान ही हुआ है अपितु इसके कई सकारात्मक पक्ष भी हैं जिस पर हम आगे चर्चा करेंगे। जैसा कि हम सभी जानते हैं कि मानव एक खोजी प्राणी है और उसकी इसी अन्वेषक प्रवृत्ति का ही एक छोटा सा उदाहरण है लिक्विड पैट्रोलियम गैस (LPG) जिसके कारण हम जो लकड़ियों का दोहन घरेलू ईंधन के रूप में कर रहे थे वह कम हुआ है और इससे पर्यावरण और मानव स्वास्थ्य दोनों को लाभ हुआ है। साथ ही मानव के आर्थिक क्रियाकलापों के कारण जो स्थायित्व आया है उसके कारण स्थानान्तरण कृषि का प्रचलन भी कम हुआ है जिसमें हजारों पेड़ों को नष्ट कर भूमि को अनुपजाउ बना कर छोड़ दिया जाता था। इसी प्रकार नव्यकरणीय ऊर्जा संसाधनों की प्राप्ति ने अनव्यकरणीय ऊर्जा संसाधनों पर दबाव को कम किया है जिससे प्रकृति की समृद्धि होती है। मानव के आर्थिक क्रियाकलापों के कारण ही कार्य विविधिकरण और विशेषीकरण को बढ़ावा मिला है जिससे पर्यावरण और प्रकृति के समुचित दोहन का रास्ता बना है एवं धारणीय विकास जैसी अवधारणा का जन्म हुआ है। हम भविष्य में बढ़ती जनसंख्या के कारण प्राकृतिक संसाधनों पर पड़ने वाले दबाव को तो कम नहीं कर सकते पर नए संसाधनों एवं तकनीक की खोज से उन दबावों को कम किया जा सकता है। अतः मनुष्य के आर्थिक क्रियाकलापों से प्राकृतिक पर्यावरण केवल समाप्त नहीं हो रहा है अपितु समृद्ध भी हो रहा है। विकास या विनाश हमें किसे चुनना है ये हमें ही तय करना होगा। मानव के आर्थिक क्रियाकलापों से भारतीय कृषि भी अछूती नहीं है। इस पर भी कई सकारात्मक और नकारात्मक प्रभाव पड़े हैं। आज मशीनीकरण के युग में अत्यधिक नाइट्रोजन उर्वरक का इस्तेमाल कृषि में किया जाने लगा है परिणामस्वरूप मिट्टी में नाइट्रेड का स्तर बढ़ जाता है जो भूमिगत जल को दूषित कर कई गंभीर बिमारियों को जन्म देता है जिसमें ब्लू बेबी सिंड्रोम भी एक है जो शिशुओं के स्वास्थ्य पर गहरा प्रभाव डालता है। इसी प्रकार पश्चिम बंगाल में प्रदूषित भूमिगत जल से आर्सेनिक विष के प्रभाव को देखा जा सकता है। आधुनिक एग्रोनोमी में तकनीकीकरण या यंत्रीकरण पर जो दिया जा रहा है जिसमें कीटनाशकों का इस्तेमाल कर अधिक उपज को बढ़ावा दिया जाता है जिसका प्रतिकूल प्रभाव मृदा स्वास्थ्य पर पड़ता है। किसान अधिक उत्पादकता करने के चक्कर में अधिक जल प्रयोग करने लगता है जिससे जल जमाव की समस्या उत्पन्न होती है परिणामतः मिट्टी में लवणता बढ़ती है और उत्पादकता बढ़ने के बजाए कम हो जाती है। मनुष्य के जीवित रहने के आवश्यक कारक वायु, जल और भोजन ये तीनों ही अत्यधिक प्रदूषित हो चुके हैं। आज मनुष्य ने आर्थिक गतिविधियों का इतना अधिक व्यवसायीकरण कर दिया है कि जन्तु वर्ग का भी अपने आर्थिक हित के लिए अनुचित दोहन शुरु कर दिया है। आज दुधारू पशुओं

का दुग्ध का उत्पादन बढ़ाने के लिए तथा मुर्गे-मुर्गियों के आकार बढ़ाने के लिए हार्मोनल इंजेक्शन का प्रयोग होने लगा है। जिससे प्रत्यक्ष-अप्रत्यक्ष रूप से स्वयं मनुष्य का स्वास्थ ही प्रभावित हो रहा है। आज के दौर में मानव का आर्थिक विकास प्राकृतिक क्षरण का पर्याय बनता जा रहा है। तकनीकी विकास ने भूमि के अत्यधिक दोहन पर बल दिया है जिससे मृदा में लवणता, अम्लीयता और खनिज असंतुलन जैसी समस्याओं ने जन्म लिया है। बढ़ती जनसंख्या ने खाद्यान संकट और खाद्य सुरक्षा जैसी अवधारणाओं को जन्म दिया। बढ़ती जनसंख्या की खाद्यान्न आपूर्ति ने बड़े पैमाने पर वनों की कटाई को बढ़ावा दिया और अनेक प्राकृतिक आपदाओं को जन्म दिया। अत्यधिक औद्योगिकीकरण ने कई कृषिगत समस्याओं को जन्म दिया है जैसे यूट्रोफीकेशन (Eutrophication), जैव-जमाव (Bio-accumulation), भूमिगत जल स्तर प्रदूषण आदि। राष्ट्रपिता महात्मा गांधी का एक प्रसिद्ध कथन है कि **"धरती इतना देती है कि हर व्यक्ति की जरूरत पूरी हो सके, लेकिन वह एक भी व्यक्ति के लालच को भी पूरा नहीं कर सकती।"**हमारी वैदिक संस्कृति का भी यही मूल है कि पेड़ों को काटिए उखाडिए मत क्योंकि वो प्राणियों, पक्षियों व अन्य जीवों को संरक्षण देता है।

अतः स्पष्ट है कि संसाधन प्रबंधन और धारणीय विकास ही हमें स्वस्थ और उज्जवल भविष्य प्रदान कर सकता है। उदाहरण के तौर पर हमें उन तकनीकी को अपनाना चाहिए जो पर्यावरण हितैषी हैं, जैसे रासायनों के बजाए कार्बनिक पदार्थों का प्रयोग कर मृदा की उर्वरता को लंबे समय तक बनाए रखा जा सकता है। इसी प्रकार मृदा की क्षारीयता कम करने के लिए जिप्सम का प्रयोग उपयोगी होता है। वर्तमान में लगातार बढ़ रही ऊर्जा आपूर्ति हेतु और परंपरागत स्त्रोत (जैसे सौर ऊर्जा, पन ऊर्जा, पवन ऊर्जा, भूतापीय ऊर्जा, जीव संहित ऊर्जा, फ्युमल सेल ऊर्जा आदि) लगातार बढ़ रही जनसंख्या के साथ-साथ अपशिष्टों की संख्या का बढ़ना भी स्वभाविक है। अतः आवश्यक है कि अपशिष्टों के प्रबंधन पर भी जोर दिया जाना चाहिए हम अपशिष्टों को पुनः चक्रित करके इससे मूल्यवान पदार्थों की प्राप्ति हो सकती है साथ ही यह ऊर्जा के स्त्रोत के रूप में भी प्रयोग किया जा सकता है। अतः मानवजनित अपशिष्टों के उचित प्रबंधन पर और अधिक अनुसंधान और विकास की आवश्यकता है जैसे कि घरेलू उद्योगों से निकले अपशिष्टों का उपयोग भवन निर्माण के कंक्रीट के रूप में तथा काष्ट के अपशिष्टों का उपयोग ईंधन के रूप में किया जाता है इसी प्रकार औद्योगिक अपशिष्टों से निकले फ्लाईएश का उपयोग निर्माण सामग्री में किया जा सकता है जैसे कंक्रीट, ईंट और छत की चादरों के रूप में स्पष्टतः इन अपशिष्टों का इस प्रकार निदान करके पर्यावरणीय क्षति को थोड़ा कम किया जा सकता है। साथ ही कृषि अवशिष्टों पर ध्यान दिए जाने की आवश्यकता है जैसे हाल ही के वर्षों में पराली की समस्या उभर कर सामने आई है जोकि नकारात्मक मशीनीकरण का ही परिणाम है। किसान इन्हें खेतों में जला देते हैं जिससे इनसे उठने वाले धुँओं से दिल्ली व एन.सी.आर. में बहुत अधिक पर्यावरणीय प्रदूषण हो जाता है। अतः आवश्यकता है कि इन परालियों का प्रयोग बिजली बनाने में, चारे के रूप में, बर्तन बनाने में, खाद के रूप में किया जाना चाहिए। तकनीकी का इस तरह का पर्यावरण अनुकूलीय प्रयोग पर्यावरण और कृषि क्षेत्र को समृद्ध करता है साथ ही आर्थिक मजबूती भी प्रदान करता है।

निर्माण और ध्वंस साथ-साथ चलते हैं। निर्माण के गर्भ में ध्वंस का बीज उस अनुपात में प्रभावी नहीं होता है जिस अनुपात में निर्माण अथवा उत्पादन प्रभावी होता है परंतु ध्वंस का बीज उत्पादन रूपी भवन को भले न ध्वस्त कर सके किंतु उसके ध्वस्त होने का खतरा तो उत्पन्न कर ही सकता है। ऐसी ही स्थिति आज की आर्थिक गतिविधियों द्वारा पर्यावरण के खतरे के संबंध में देखी जा सकती है। यह एक चुनौती भी है और प्रकृति के साथ सह-संबंध बनाए रखने का साधन भी है। अतः इसके उचित अनुपात को बनाए रखना आवश्यक है। हमें यह सतत् सावधानी रखनी होगी कि अनुपात अथवा संतुलन बिगड़ने न पाए क्योंकि अक्सर त्वरित लाभ दीर्घकालिक चुनौतियों को जन्म देता है क्योंकि जब-जब मनुष्य ने इस तथ्य की अनदेखी की है तब-तब उसे कई प्रलयकारी घटनाओं का सामना करना पड़ा है केदारनाथ आपदा भी उन्हीं में से एक है।

संदर्भ –सूची -

1. डॉ0 राधेश्याम मौर्य- पर्यावरण और जैव संरक्षण

2. Dorothy F.Boorse and Richard T. Wright- Environmental Science:Toward a sustainable Future.

3. VaishaliAnand—Environment and Ecology

4. डॉ0 विजय कुमार तिवारी-पर्यावरण विज्ञान

5. Majid Husain—Environment and Ecology

6. Alon Jacobs—Environmental Science

ISSN : 2319-7137, Volume: 15/Issue: 01, January-June : 2022

कवि संतोष पटेल के काव्य में अंबेडकरवाद

डॉ0 ममता
नई दिल्ली

कवि, आलोचक , गीतकार और अनुवादक के रूप में साहित्यिक जगत में अपनी लगातार उपस्थिति दर्ज करते हिंदी और भोजपुरी भाषा के कवि डॉ संतोष पटेल के कई कविता संग्रह हमारे सामने प्रस्तुत हैं।

अपने काव्य संग्रह **'जारी है लड़ाई', 'कारक के चिह्न' और 'नो क्लीन चिट'** जैसे काव्य संग्रह में कवि, आलोचक व सामाजिक कार्यकर्त्ता के रूप में विख्यात संतोष पटेल ने समाज में व्याप्त सभी समकालीन मुद्दों को केन्द्र में रखा है। इन संग्रहों का स्वर क्रांति व विशेषकर मुक्ति का गान के अंतर्गत समाहित है। आज के समय को मुख्य आधार बनाकर कवि ने कविताओं की रचना की है तथा वर्तमान में घटित घटनाएँ व उनसे उत्पन्न चेतना का भाव संतोष पटेल की कविताओं में साफ दिखता है। कवि ने हाशिए के समाज को अपनी कविता संग्रह की सहायता से मुख्यधारा में लाने का सार्थक प्रयास किया है।

कवि संतोष पटेल ने अपने काव्य में अंबेडकरवाद को प्रमुखता से जगह दी है वह जहां विरोध के स्वर में परिलक्षित होती है वहीं दमित, शोषित जनता को चेतनशील बनाने के लिए चिंतित भी दिखती है। आम्बेडकरवाद डॉ भीमराव आम्बेडकर के जीवन दर्शन , उनके विचारों तथा सिद्धांतों का समावेश है। क्रिस्तोफ़ जाफ़्रलो द्वारा लिखी किताब 'भीमराव आम्बेडकर' ने भी आम्बेडकर को भारत का पहला दलित नेता स्वीकार करते हुए अपनी किताब की प्रस्तावना लिखी है। आम्बेडकर ने अपने जीवन में जिस प्रकार दलितों के इतिहास की पड़ताल करते हैं, कानून के जरिये उन्हें अधिकार दिलाने के लिए संघर्ष करते हैं तथा राजनीतिक संस्थाओं से जुड़कर शोषितों के लिए सशक्त मार्ग प्रशस्त करने की सोच रखते हैं यह सभी कार्य कवि संतोष पटेल के काव्य की मूल संवेदना में दिखता है। आलोचक धर्मेन्द्र सुशांत 'जारी है लड़ाई ' काव्य संग्रह के विषय में हिंदुस्तान में लिखते हैं - **"सामाजिक अन्याय और विषमता के विरूद्ध रचनात्मक हस्तक्षेप है। यही कारण है कि इस संग्रह की अधिकतर कविताओं में हर प्रकार के भेदभाव के खिलाफ स्पष्ट प्रतिकार नज़र आता है। जबकि समाज के अलक्षित, वंचित, उत्पीड़त तबकों के प्रति पक्षधरता दिखती है। "**[1] कवि की वैचारिकी फुले , अंबेडकर द्वारा संचरित होती है जो उन्हें हाशिये के समाज के लोगों के प्रति संवेदनशील बनाती है। कवि संतोष पटेल ने स्त्रियों के सवालों को भी अपनी रचना में प्रमुखता से स्थान दिया है। स्त्री मुक्ति का स्वर कई कविताओं में स्पष्ट ढंग से मुखरित हुआ है। 'जारी है लड़ाई' काव्य संग्रह की लगभग एक दर्जन कविताएं स्त्रियों पर केन्द्रित हैं जिनमें एक चिड़िया, पहली शिक्षिका, प्रेम, ऑनर किलिंग, घुटन, संवेदना बेचना और जाति कविताएं प्रमुखता से शामिल हैं।

'जारी है लड़ाई' काव्य संग्रह का प्रकाशन 2019 में हुआ। नवजागरण प्रकाशन ने इसे प्रकाशित किया है। विश्व पुस्तक मेला 2019 में दलित साहित्यकार अनीता भारती ने इस काव्य संग्रह का काव्य पाठ किया। डॉ धर्मवीर का जातिप्रथा पर यह कथन महत्त्वपूर्ण है- **"भारत में वह कौन-सी बुराई है , जो दास प्रथा से भी अधिक खतरनाक और घिनौनी है ? एक शब्द में बताया जाये कि यह अस्पृश्यता है। "**[2] दलितों में दलित होने की हीन भावना को कम करने के लिए आम्बेडकर कहा करते थे कि अगर जाति को खत्म नहीं किया जा सकता तो उसपर अभिमान करना सीख जाओ। यह अभिमान आपको उस हीन भावना से मुक्त कर देगा जो दलितों

की तरक्की में बाधक सिद्ध होता था। दलित कविता में चेतना का अहम योगदान रहा है तथा दलित चेतना को फैलाने में सामाजिक सुधारकों के साथ-साथ, चेतनशील साहित्यकारों की भी महत्त्वपूर्ण भूमिका रही है।

इसी संग्रह की कुछ कविताएं जिनमें दलित ', 'जाति' और 'एक शब्द', नामक प्रमुख हैं जो 'दलित' शब्द को परिभाषित करती हैं और वर्तमान समय में किस प्रकार आर्थिक रूप में पिछड़े वर्ग को कानून पारित करके वर्तमान सरकारों ने एक नए 'नव दलित' वर्ग का गठन हुआ है, इसकी पोल भी यह कविताएं खोलती हैं। धार्मिक व पौराणिक कथाओं में 'दलित' की उत्पत्ति, धर्मशास्त्रों द्वारा बनाए गए नियमों द्वारा बताया गया वहीं आज इसे आर्थिक आधार पर नव निर्मित करने की मंशा लिए राजनीतिक सत्ता अपना हित साध रहीं हैं जिससे बहुजन समाज के अधिकार छीनकर एक ऐसे वर्ग को दे दिया गया , जिसमें जातीय अह्म है जो ब्राह्मणवादी मानसिकता के साथ पोषित हुआ है। डॉ अम्बेडकर के अनुसार- **"जब-जब मेरे निजी हितों और कुल मिलाकर सारे देश के हितों के बीच टकराव हुआ है मैंने निजी हितों के बजाय देश के हितों को ही ध्यान में रखा है।** "[3] कवि संतोष पटेल की रचनाएं भी शोषित समाज के हित को ध्यान रखते हुए दिखती है।

'एक शब्द' कविता में कवि दलित की सामाजिक स्थिति को ऐतिहासिक परिपेक्ष्य में देखते हुए शब्द निर्माण की उस धारा को बतातें हैं जहाँ से चलकर आज वंचित समाज को सार्थक शब्द 'दलित' मिला। 'दलित' शब्द न केवल उत्पीड़ित समाज का प्रतीक है बल्कि यह बहुजनों के संघर्ष व विद्रोह को भी सही ढंग से प्रस्तुत करता है। बाबा साहेब आंबेडकर ने हजारों दलित जातियों को एकजुट कर संविधान में SC, ST, OBC के रूप में प्रस्तुत किया । वही आंबेडकर के इस मिशन को एक कदम और आगे पहुँचाने का काम माननीय कांशीराम ने 'बहुजन' शब्द के साथ SC, ST, OBC वर्ग को एक जुट किया। दलित समाज को राजनीतिक पहचान देने का काम माननीय कांशीराम करते हैं विभिन्न सामाजिक आंदोलनों के साथ शुरू हुआ उनका सफर 'बामसेफ' की 1973 में स्थापना के साथ अपने चरम पर पहुँचा। इसके पीछे का उद्देश्य दलित समाज के भीतर ही हजारों जातियों में बँटे समाज को एकरूपता देकर 'जाति के विनाश' की तरफ अपना हाथ बढ़ाना था। जब तक भारतीय समाज में जाति का अंत नहीं होगा तब तक पूर्ण सामाजिक , राजनीतिक और आर्थिक चेतना का कोई अर्थ नहीं निकलता। 'शूद्र', अछूत, अंत्यज, हरिजन जैसे कई नामों में केवल शोषण का स्वर परिभाषित होता है परन्तु दलित एक संगठित समाज का नाम है।

'एक शब्द' कविता में लेखक लिखते हैं-

तभी तो तुम डर गए

और लगा दी रोक

इसी शब्द पर

जो शब्द है दलित'[4]

जैसा कि मैंने कहा कि कवि संतोष पटेल की कविताएं वर्तमान दौर को आधार बनाकर लिखी गई हैं। पिछले कुछ वर्षों से कई राज्य सरकारों ने 'दलित' शब्द को स्वीकारने से मना कर दिया तथा कई विश्वविद्यालयों में भी दलित शब्द को हटाने की मांग की गई। आखिर क्यों हमारी सरकारें 'दलित' शब्द से इतना भयभीत हैं। 'दलित' शब्द आज साहित्य, राजनीतिक के साथ-साथ सामाजिक आंदोलनों का सूचक बन गया है। हीन से गौरव के भाव में आए इस सामाजिक परिवर्तन को एक ही शब्द सार्थक ढंग से प्रदर्शित करता है वह है 'दलित' डॉ तेज सिहं द्वारा लिखा गया लेख- 'दलितों की एकता बनाम पिछड़ा वर्ग ' में वे लिखते हैं- **"कांशीराम को 'बहुजन**

समाज' की अवधारणा से उन वर्गों में नयी जन-चेतना के साथ नयी राजनीतिक चेतना का भी जन्म हुआ जिसकी वजह से दलित पिछड़ा अति पिछड़ा और अल्पसंख्यक वर्ग के साथ गठजोड़ की राजनीति ने जन्म लिया।"[5] दलित साहित्य राजनीति के साथ सामाजिक बदलावों की तरफ भी कांशीराम ने गाँव-गाँव जाकर , दलितों में जनचेतना लाने का काम किया।

कवि संतोष पटेल की दलित समाज केन्द्रित कविताओं में दलित होने का कारण प्रमुखता से मनुस्मृति , धर्मग्रंथों व जन्म आधारित जाति प्रथा को माना गया है। बार-बार कवि यह जोर देकर कहता है कि दलित समाज के साथ शोषण धर्मशास्त्रों को मानने की वजह से हुए हैं। कविता **'क्या यह अपराध नहीं है '**और 'जन्मों की व्याख्या' में हिंदू धर्म ग्रंथों में बताई गई बातों को सही मानकर दलित समाज के साथ अमानवीय व्यवहार किया जाता है जो आज भी देखने को मिलता है। सवर्णों के साथ खाट पर बैठने की मनाही , कुएं से पानी लेने की मनाही, घोड़ी चढ़ना दलितों के लिए अपराध बना दिया गया तथा इन सब कार्यों को सही ठहराने के लिए **'पूर्वजन्म का हिसाब'**कहकर इस परंपरा को बनाये रखा गया। अखबारों में आए दिन आने वाली खबरें दलित शोषण से भरी हैं परन्तु यह इस ओर भी इशारा कर रहीं हैं कि अब दलित समाज अपनी शर्तों पर जीवन जीना चाहता है इसलिए परंपरा से चली आ रही रीति-रिवाजों को तोड़ कर वह अपने अधिकारों की बात कर रहा है। दलितों द्वारा अपने हक की मांग करने पर वर्चस्वशाली वर्ग इसे अपनी हार मानकर बोखला गया है तभी वह दलितों के प्रति अपनी हीन मानसिकता को ऐसी हिसंक घटनाओं से शांत करना चाहता है।

'नो क्लीन चिट ' कविता संग्रह में जातीय घृणा , सामाजिक द्वेष, से लेकर सत्ताधारी वर्ग की चालाकियाँ को पोल खोल और आर्थिक शोषण की मार झेलता आम व्यक्ति के दर्द को बयाँ करती कविताएं शामिल हैं। यह कविता संग्रह कमलकार पब्लिशर्स प्रा.लि.नई दिल्ली से प्रकाशित हुआ है। कवि संतोष पटेल ने समसामयिक घटनाओं को अपनी इस कविता में शामिल किया है जो 21वीं सदी में भी जातिवाद की पुष्टि करती हुई दिखती है। संग्रह की कविताओं में प्रमुखता से जातीय घृणा के बिंदुओं को शामिल किया गया है। केरल , उड़ीसा, उत्तरप्रदेश, उत्तराखंड जैसे राज्यों के उदाहरण यह स्पष्ट करते हैं कि अस्पृश्यता आज भी भारतीय समाज को कलंकित कर रही है और इंसानियता को लगातार शर्मसार। कवि ने देव भूमि उत्तराखंड को भी आड़े हाथों लिया है जो अपनी धार्मिक पहचान के कारण पवित्र और पूजनीय मानी जाती है परन्तु कवि ने उस पर्दे के पीछे छाँकने का भी प्रयास किया है, जो मैला है। कवि ने उत्तराखंड के महिमा मंडित रूप पर हस्तक्षेप करने का जो साहस दिखाया है वह वाकई बिल्ली की आँख में उंगली करने जैसा है। इस संग्रह में शामिल **'नहीं है देवभूमि '**कविता में कवि कहना चाहते हैं कि देवभूमि को देवों की भूमि की उपमा मिली है परन्तु देवतुल्य काम यहाँ नहीं हो रहें यहाँ भी देश के अन्य क्षेत्रों की तरह ही जाति आधारित शोषण की घटनाएं लगातार घटित हो रही हैं। कवि धर्मशास्त्रों और देवी-देवताओं को उल्लाहना देते हुए कविता में लिखते हैं - **"जब नृशंस हत्या जितेन्द्रदास की / पीट रहे थे उसे सारे निर्ममतापूर्वक/ तब सारे शक्तिशाली देवी-देवताएं थे कहाँ ?"**[6] कवि यह प्रश्न उठते हैं कि जिसे देवीभूमि में भी किसी निर्दोष की निर्मम हत्या कर दी जाती है तो वह कैसी देवभूमि। जातिवाद पर कटाक्ष करती कई रचनाएं प्रमुखता से इस संग्रह में शामिल है जिनमें **'शूल', और 'मरोड़ पर मरोड़ '**आदि शामिल है। -हिमादास के संघर्ष को भी समाज के तथा कथित उच्च वर्ण ने जातिवादी नजरिये से देखा। कविता 'मरोड़ पर मरोड़ ' में कवि लिखते हैं-

"एक तो स्त्री ऊपर से दास/

यानि उनके लिए एक तो करैला ऊपर से नीम चढ़ा/

कैसे उतरेगी उनरे बवर रे नीते

उलझे हैं वे इस बात पर

कैसे वो कर सकती है यह कारनामा

इसलिए बधाई देने से पहले

आश्वस्त हो जाना चाहते हैं वे लोग

हिमादास की जाति क्या है"[7]

कवि संतोष पटेल के अन्य कविता संग्रहों में भी उन्होंने कई बहुजन नायकों पर आधारित लगातार कविताएं लिखी हैं परन्तु इस संग्रह में बिरसा मुड़ा को केन्द्र में रखकर लिखी गई रचना अपने आप में विशेष **है। 'बिरसा ने अब भी थाम रखी है मशाल '**कविता में कवि आदिवासी समाज तथा शोषित समाज को अपने अधिकारों की मशाल जलाए रखने की सीख देता है। कवि यहाँ अंबेडकर को शामिल कर संपूर्ण बहुजन परंपरा के उद्देश्य को पुनर्जीवित भी करते हैं। कवि ने शोषक वर्ग की उस मानसिकता को उद्घाटन किया है जो हाशिये के समाज के उत्थान की वकालत करते हैं जाति विनाश की बात करने वाले आम्बेडकर की वैचारिकी का लगातार अनुपालन कवि संतोष पटेल देश के युवाओं को चेताकर अपना कवि कर्म निभा रहे हैं।

कवि का अंधविश्वास के प्रति विरोध , कवि की प्रतिबद्धता दिखाता है। कवि लगातार धार्मिक अंधविश्वास के नाम पर महिलाओं को डायन कहकर उसकी हत्या करने की घटनाओं की निंदा करते है **'अंधकार युग'**इसी तरह की एक कविता है जो निराश करती है। **'मिड डे मील'**कविता सरकारों की अर्थनीति पर हमला करती है। देश का एक तबका अमीर से अमीर तो दूसरा गरीब और गरीब होता जा रहा है। अम्बेडकर के अनुसार **- "जो लोग इतिहास को भूल जाते हैं, वे इतिहास का निर्माण नहीं कर सकते।"**[8] लेखक के निरंतर आ रहे कविता संग्रहों को पढ़ने पर अवश्य यह लगता है कि वह किसी दायरे में बंधकर नहीं लिख रहें , यह बात उनकी रचनाएं बता रहीं है। कविता में लय और रस देखने वाले पाठकों को निराशा हो सकती है क्योंकि कवि की तमाम रचनाएं विचार और विवेक के ताल-मेल में अपना पक्ष रखती हैं। राजनीति और प्रशासकीय नीति के खिलाफ इस दौर में सवाल उठाना जरूरी है ताकि लोकतांत्रिक मूल्यों को बचाया जा सके। 'झूठा दिलासा ' कविता गरीबी का मज़ाक उड़ाते राजनेताओं के चुनावी जुमलों की याद दिलाता है जिसे कवि गरीबी खत्म करने के तमाम वादों के नाम पर केवल झूठा दिलासा कहकर संबोधित करता है।

कविता के रूप में **'कारक के चिह्न '**हाशिये के समाज का इतिहास , वर्तमान और भविष्य बताती हुई रचना है, जो कम शब्दों में एक लंबी विकास यात्रा के साथ दलित साहित्य की वैचारिकी को भी परिभाषित करती है। दलित साहित्य 70 के दशक में महाराष्ट्र में लिखा जाने लगा परन्तु इसके बीज सैकड़ो वर्षों पूर्व से समाज में बोये गए कबीर, अछूतानंद, संत रविदास, तथा आधुनिक युग में फुले, पेरियार, अम्बेडकर और कांशीराम द्वारा पढ़े और जाने जा रहें हैं। इन महापुरुषों ने समाज में मानवतावादी वैचारिकी को पोषित करने का काम किया जिसमें सबसे पहले अपने अस्तित्व को जानना और अन्याय की इस परंपरा को तोड़ना शामिल रहा।

कवि संतोष पटेल का सग्रह **'कारक के चिह्न '**उनकी महत्त्वपूर्ण कविताओं का संग्रह है जिसमें उनकी लेखनी अधिक मारक और धारदार हुई है। कवि नयी उचाईयों को लगातार छू रहें हैं चाहे व भाषा का विस्तार हो या विषयों की विविधता। कवि के कविता संग्रह की यह खूबी रहती है कि इसमें विषय की समानता और

एकरूपता नहीं रहती। उनकी रचनाओं में कहीं समाज के उन असम्मानित और अनजाने समाज सुधारकों का जिक्र है तो कहीं अपने अधिकारों की मांग के साथ-साथ जनतंत्र के नाम पर होने वाले पाखंड पर कटाक्ष , तो कहीं प्रेम का उदात्त, कविता के प्रमुख विषय हैं।

चेतनशील कविताओं की फेहरिस्त में **'लिखो साथियों'(पृ.सं 31), 'जा रे खुदगर्ज'(पृ.सं 34)**'ताकि अपनी बात **ऊपर रहे'(पृ.सं 36),** 'क्रोधित हुए थे वे' प्रमुख रूप से शामिल हैं जिनमें दलित चेतना का स्वर साफ दिखता है। कविता की शैली व्यंग्यात्मक है। कवि ने अपने इस कविता संग्रह में दलित की परिधि से निकल कर बहुजन को व्यापक ढंग से स्वीकारता दी है जब वे कहते हैं कि- जिसकी अपनी भाषा , अपने नृत्य, अपना गान और अपनी बहुजन पहचान है। हालांकि साहित्य में जो दलित है वही राजनीति में बहुजन इसलिए यहाँ कवि दलितों की राजनीतिक हिस्सेदारी की मांग भी करते हुए देखे जा सकते हैं। माननीय कांशीराम ने बहुजनों को राजनीतिक चेतना दी जिसके कारण सत्ता द्वारा समाज में बदलाव लाने पर भी जोर दिया गया।

'क्रोधित हुए थे वे 'कविता समाज के आधुनिक और प्रगतिशील होने के ढोंग का पर्दाफाश करती है तथा व्यंग्यतात्मक शैली में बहुत कुछ कह जाती है जो परिवर्तन की बात करने वालों को आईना दिखाती है।

क्रोधित हुए थे वे

"देखो भाई

मैं नारी का बहुत सम्मान करता हूँ

लेकिन पता नहीं

जैसे कहीं सुनता हूँ मायावती का नाम,

पता नहीं मुझे बहुत गुस्सा आता है।"[9]

भारतीय समाज की बहुत बड़ी असफलता है या लोगों कि महामूर्खता कि जो हमें विद्यालय , कॉलेज , हॉस्पिटल, और रोजगार देता है हम उस पार्टी को वोट नहीं देते बल्कि जो धर्म की राजनीति कर वर्षों से जनता को गरीबी की उसी गर्त में रखना चाहते हैं बार-बार उन्हें ही वोट देकर चुनते हैं।

कवि संतोष पटेल की कुछ अन्य कविताएं दलित के कलेवर को लिए हुए है। डॉ धर्मवीर मुख्य धारा के साहित्य को **हिंदू साहित्य** कहकर संबोधित करते थे। कवि संतोष पटेल ने दलित साहित्य को इसी स्वानुभूति और सहानुभूति के भेद से परिभाषित करने का जिक्र जगह-जगह किया है। दलित समाज के इसी दर्द को बयाँ करती कविता **'झल्लाहट'(पृ.सं 45**) है। कविता दलित साहित्य की उस विकास यात्रा को दिखाती है जब तथाकथित मुख्यधारा का साहित्य , दलित साहित्य को साहित्य मानने को भी तैयार नहीं था। यह कविता उन छद्म साहित्यकारों पर कटाक्ष करती है जो दलित साहित्यिक आंदोलन को एक दिशा और दशा देने में निर्णायक रही है जिस कारण से दलित साहित्य आज अपनी अलग पहचान बना चुका है।

यह कविता दलित साहित्य की चर्चित कहानी घुसपैठिए और सुरंग कहानी की यादे ताजा करती हैं। जब तथाकथित सवर्ण समाज दलितों को मेडिकल कॉलेजों में पढ़ने-लिखने लायक नहीं समझते तथा उनका शोषण करते हैं। हाल के वर्षों में रोहित वेमुल्ला तथा पायल तलवड़े जैसे छात्रों को इसी जातिवादी मानसिकता का शिकार होना पड़ा। लेखक सवर्ण वर्ग की इसी झल्लाहट और बैचेनी को कविता में जगह देते हैं जो समाज और साहित्य दोनो जगह बखूबी देखी जा रही है।

कवि की वैचारिकी फुले , अंबेडकर द्वारा संचरित होती है जो उन्हें हाशिये के समाज के लोगों के प्रति संवेदनशील बनाती है। यह वैचारिकी समकालीन घटनाओं को देखकर उन्हें अपनी कविताओं में दर्ज कर इतिहास बनने पर मजबूर कर रही है। संतोष पटेल की वैचारिकी बिल्कुल स्पष्ट है जो **'मैं अंबेडकर हूँ '**कविता के जरिये संविधान और लोकतांत्रिक मूल्यों पर विश्वास को टूटने नहीं देता परन्तु तानाशाह होते तंत्र को चेताने का काम भी लगातार करता है।

मैं अंबेडकर हूँ

जीवंत हूँ संविधान में

जो बांध कर रखता है

हम सभी को एक सूत्र में।"[10]

कविता का यह अंतिम पद कवि के संविधान के प्रति विश्वास को दिखाता है।

दलित वैचारिकी को लेकर कवि की एक महत्त्वपूर्ण रचना की है **'दुष्कर्म' (पृ.सं 98**) जिसमें कवि दलितों, को भी पुनर्मूल्यांकन करने की बात पर जोर देते हैं जिसमें अन्याय के खिलाफ लड़ने और शोषितों को न्याय दिलाने का उद्देश्य सर्वोपरि हो , इस बात को रखते हैं। साथ ही स्त्री शोषण के विरुद्ध खड़े होने की गुहार भी लगाते हैं जो बिना जाति और धर्म देखे होनी चाहिए। कवि स्त्रियों के सवालों को भी अपनी रचना में प्रमुखता से स्थान देते हैं इसके पहले के काव्य संग्रहों में इसकी साफ झलक देखने को मिलती हैं परन्तु 'कारक के चिह्न ' में लगभग न के बराबर स्त्री केन्द्रित कविताएं हैं जो इस संग्रह की विविधता में कमी दिखाती है।

सामाजिक मुद्दों में प्रमुखता से लेखक ने हाशिये के समाज को कविता संग्रह में जगह दी है जिनमें किसान , मजदूर, और दलित शामिल हैं। दलित साहित्य की वैचारिकी को भी कवि ने कई कविताओं में उठाया है जिनमें सहानुभूति और स्वानुभूति का प्रश्न हो या गैर दलित साहित्यकारों द्वारा दलित साहित्य और दलित साहित्यकारों की उपेक्षा जैसे मुद्दें। जातिवाद न केवल गाँव देहातों में ही दिखता है बल्कि यह तो पढ़े-लिखे , संस्थागत तथा महत्त्वपूर्ण पदों पर आसीन लोगों की मानसिक गुलामी के रूप में दिखाई देता है। **'जाति का विनाश '**नामक पुस्तक के माध्यम से डॉ अंबेडकर भारतीय समाज में वर्ण व्यवस्था को समझाते हुए लिखते हैं कि - **"जाति की समस्या सैद्धांतिक और व्यवहारिक रूप से एक विकराल समस्या है। "**[11] इसी वर्ण व्यवस्था पर आधारित जातिप्रथा के नाश की बात डॉ अंबेडकर जीवन भर करते रहे। कवि संतोष पटेल की रचना 'कारण एक है जातिवाद' दिखाती है कि किस प्रकार से समाज और राजनीति में दलितों की अवहेलना होती आ रही है। **'हिकारत'**और **'टेमी प्रथा'**कविताएं भी दलितों की सामाजिक उपेक्षा को दिखाती हैं। 'तरस' कविता जातिवाद के कारण , प्रेम संबंधों के न पनप पाने के लिए जिम्मेदार वर्ण और व्यक्ति विशेष पर उसकी अविकसित और अपरिपक्व मानसिकता पर तरस खाती है जो एक असफल प्रेमी के प्रेम और उसकी आह को व्यक्त करती कविता भी है साथ ही वह समाज के जातिवादियों के प्रेम को ना जान पाने पर तरस खाते व्यक्ति की कविता के रूप में अपनी अभिव्यक्त की गई है।

कवि संतोष पटेल की रचनाएं सामाजिक मुद्दों से जुड़ी है। जैसा कि हम जानते हैं कि समाज में राजनीति अपनी निर्णायक भूमिका अदा करती है। एक विकसित और सभ्य समाज के लिए उसकी राजनीतिक पकड़ मजबूत होने के साथ-साथ मानवतावादी और समाजकल्याणकारी होना भी जरूरी है। कवि ने राजनीति और समाज को एक दूसरे का पर्याय बना दिया है तमाम रचनाएं समाज के मुद्दों को राजनीति से जुड़ते हुए तथा उनके राजनीतिक

हस्तक्षेप को दिखाती हैं। दलित आलोचक डॉ तुलसीराम मानते हैं कि- **"न सिर्फ भारत बल्कि पूरे विश्व में साहित्य पर नज़र डाली जाय तो पता चलेगा कि जहाँ जैसी राजनीतिक परिस्थितियाँ होती हैं , वहाँ वैसा ही साहित्य लेखन होता है। "**[12] इसी कड़ी में कवि संतोष पटेल सत्ताधारी वर्ग की राजनीति समझ को उजागर करते हैं। जिसमें तमाम राजनीति से लबालब कविताएं है जिनमें 'खेला होबे ', 'संस्कृति रक्षक ', 'कीलें', 'हड़पनीति', 'कोविड का टीका और कथावाचक', 'यह बच्चा कौन है?', 'देशद्रोही', 'पिरान्हा', 'बड़े हिसाब से आते हैं बड़े वाले', 'मोबाइल धरवा'। मोबाइल धरवा कविता नेताओं की स्वार्थी प्रवृति को दिखाती है जो केवल चुनावों में ही जनता के हितैषी बनने का दावा करते हैं और तमाम प्रलोभन देने के बाद नेता की कुर्सी पर बैठ कर जनता को भूल जाते हैं। 'खेला होबे' कविता प्रमुख रूप से बंगाल चुनावों की यादे ताजा करता है जो साम , दाम, दंड , भेद से भरी राजनीति के रूप को दिखाकर राजनीति के गिरते स्तर और इसकी विश्वसनीयता पर संदेह प्रकट करने पर मजबूर भी करती है तथा जनता को सजग होकर अपने राजनीति अधिकारों का इस्तेमाल अपने विवेक से करने के लिए जाग्रत करती है।

भाषा-कवि की भाषा पर बात की जाये तो यह निरंतर विकसित हो रही है उनके काव्य संग्रह लगातार नए विषयों के साथ-साथ कविता की लय और रिदम को बनाए हुए हैं जो आलोचक , दलित साहित्यकारों की भाषा को दोयमदर्जे की कहा करते थे उन्हें भी यह महसूस होगा कि दलित समाज की दूसरी पीढ़ी अब भाषागत मापदंडों पर किसी से कम नहीं है , कवि संतोष पटेल ने कई अन्य भाषाओं की कविताओं का अनुवाद भी किया है जो उनकी काबिलियत को दिखाता है। लेखिका और दलित आलोचक रजत रानी मीनू कहती हैं कि- **"हमें उसी लेखन को प्राथमिकता देनी होगी जो दलितों में व्यापक रूप से चेतना उत्पन्न करे ,जागृति लाए और आधुनिकता बोध की तर्कशीलता उत्पन्न करे। "**[13] इस लिए आलोचकों को दलित साहित्यकारों की उनकी वैचारिकी तथा वैश्विकी स्वीकारियता जो मानवतावादी हो उस आधार पर आंकना चाहिए। 'कारक के चिह्न ' कविता संग्रह की कविताएं कलापक्ष के साथ अर्थ की दृष्टि को भी पाठक के सामने लाते हैं।

आलोचक शंभुनाथ अपनी किताब में आम्बेडकर के भाषणों का उद्धृत करते हैं जिसमें आम्बेडकर एक आदर्श समाज की परिकल्पना करते हुए कहते हैं- **"एक ऐसा समाज, जिसमें न्याय, बंधुता, समता और स्वतंत्रता हो। मैं समझता हूँ, किसी भी विचारवान को इससे इनकार न होना चाहिए। बंधुता का अर्थ यह है कि देश में उत्पन्न सभी व्यक्ति परस्पर भाई-भाई हैं और सभी का पिता की संपत्ति की भाँति देश की संपत्ति पर समान अधिकार है। जीवन के लिए आवश्यक भोजन , वसन, औषधि और शिक्षा के लिए सभी बराबर के हकदार हैं। इसी का नाम बंधुता या भाईचारा है। इसका दूसरा नाम है जनतंत्र या लोकतंत्र।"**[14]

दलित कविताओं के केन्द्र में अंबेडकर का दर्शन , मुक्ति और स्वतंत्रता के सवाल , बुद्ध का अनीश्वरवाद, वैज्ञानिक दृष्टिबोध , धार्मिक पाखंड का विरोध , जातिभेद-वर्ण व्यवस्था का विरोध , सामाजिक न्याय और सामाजिक बदलावों की पक्षधरता के साथ-साथ पूंजीवाद , ब्राह्मणवाद, अभिनायवाद, लिंगभेद, भाषावाद का पुरजोर विरोध शामिल है। जो लेखक के समकालीन समाज में प्रासंगिकता को दिखाता है। कवि संतोष पटेल धूमिल की परंपरा के दिखते हैं जो सत्ताधारी वर्ग की नीतियों की आलोचना करते हैं तो वहीं 'सुनो ब्राह्मण' कविता लिखने वाले दलित कवि स्वर्गीय मलखान सिंह की तरह दलितों को शोषणकारी तंत्र से दो-दो हाथ करते हुए भी दिखते हैं। इसलिए संतोष पटेल को एक रूप और एक आकार में बांध कर रख नहीं सकते उनकी कविताओं की विविधता उन्हें कवियों की मिली जुली परंपरा से जोड़ती है परन्तु वैचारिक स्पष्टता उन्हें अम्बेडकरवादी बनाती है जिसमें सभी वर्गो के प्रति समता, स्वतंत्रता और बंधुता की तलाश प्रमुखता से परिलक्षित होती है।

संदर्भ-

1. पत्र-हिंदुस्तान, 26 जुलाई 2020, पृ.सं 11)
2. लेख- जयप्रकाश कर्दम की कहानियों में सामाजिक यथार्थ , लेखक- एल. अनिल, इक्कीसवीं सदी के हिंदी साहित्य में दलित विमर्श , संपादक- डॉ.रमेश कुमार , श्री नटराज प्रकाशन दिल्ली , प्र.संस्करण2018, पृ.सं 398)
3. जारी है लड़ाई, संतोष पटेल, नवजागरण प्रकाशन, संस्करण 2020, पृ.सं 36
4. गांधी जी और डॉ अम्बेडकर: एख तुलनात्मक अध्ययन , मूल लेखक-डी.सी.अहीर , अनुवाद-देवेन्द्रचंद्र, ब्लूमून बुक्स, संस्करण 1999, पृ.सं 65)
5. लेख-दलितों की एकता बनाम पिछड़ा वर्ग, दलित साहित्य 2001, संपादक- जयप्रकाश कर्दम, पृ.सं 301
6. नो क्लीन चिट, संतोष पटेल, कलमकार पब्लिशर्स प्रा.लि, पृष्ठ.सं 16)
7. (नो क्लीन चिट, संतोष पटेल, कलमकार पब्लिशर्स प्रा. लि, प्र.संस्करण 2021, पृ.सं 52
8. गांधी जी और डॉ अम्बेडकर: एख तुलनात्मक अध्ययन , मूल लेखक-डी.सी.अहीर , अनुवाद-देवेन्द्रचंद्र, ब्लूमून बुक्स, संस्करण 1999, पृ.सं 74
9. नो क्लीन चिट, संतोष पटेल, कलमकार पब्लिशर्स प्रा. लि, प्र.संस्करण 2021, पृ.सं 67
10. कारक के चिह्न, संतोष पटेल, नवजागरण प्रकाशन, प्रथम संस्करण 2022, पृ.सं 42
11. कारक के चिह्न, संतोष पटेल, नवजागरण प्रकाशन 2021, पृ.सं 9
12. डॉ बाबा साहब अम्बेडकर: संपूर्ण वाङ्मय खंड 1, डॉ अम्बेडकर प्रतिष्ठान, संस्करण 2019, पृ.सं 04
13. (बाबा साहेब डॉ (हिंदी दलित साहित्य:रचना और विचार , संपादक-डॉ पुरुषोतम सत्यप्रेमी, अतिश प्रकाशन दिल्ली, प्र. सं 1997, पृ. सं- 9 (संपादकीय से
14. (हिंदी दलित कथा-साहित्य अवधारणाएं और विधाएं, रजत रानी मीनू,अनामिका पब्लिशर्स एंड डिस्ट्रीब्यूटर्स प्रा. लिमिटेड, प्र.संस्मरण- 2014, पृ.सं 18)
15. सामाजिक क्रांति के दस्तावेज, संपादक- शंभुनाथ, वाणी प्रकाशन, प्र.सं 2004, पृ.सं 910

Comparative study of the intellectual level of high school students

Dr. Rajani Rani Varshney
Assistant Professor,
Department of Psychology
Shri Varshney College, Aligarh

Abstract

In the present research work, the intellectual level of high school students has been studied. For the research work, 60 boys and 60 girls studying in high school were selected as a sample. Whose age is between 14 to 17 years. In the results of

the present research, a significant difference has been found between the mean values of these two groups for intelligence quotient (IQ) in terms of the intellectual level of high school students at 0.05 level.

Keywords - intelligence quotient, students.

In ancient India, educating a person meant building up his character. That knowledge was considered to be of the highest order. Which should provide the ability to deal with the problems of the common people, which teaches to live in harmony with the public interest or the common interest. Today's man is relentlessly wandering away from reality in the periphery of materiality. Unaware of the center of the circle of his life, country, entangled in interests, aspirations and experiences, is unable to give the right direction to his thinking. He seems to be unable to position his consciousness in the present environment. Because his unconscious motivations are forcing him to think and act. which is beyond his nature. As many thinkers and ideologists have said that at the time of birth the child's brain is like a clean slate. Anything can be marked on it. Just as various types of objects, toys and utensils etc. can be made on raw clay. In the same way, anything in childhood can be imprinted on the delicate brain of a child. Because it is a soft plant of nature. It is the fact that in the world, man is the best among all beings due to education, reasoning, thinking and intelligence developed in him. Due to these abilities, man is able to maintain adjustment with his environment.

In the present time, man has earned immense wealth due to scientific and technical achievements in the field of materiality, but his spiritual side has remained confined in this pastime of development. Because it is the law of nature that when one of the two sides develops more, the other side remains dwarf in its shadow. In such a situation, it will not be an exaggeration to say that a person is dwarfed in his ideals and values. Modern doctors also believe that when Kapha, Pitta and Vata do not achieve harmony in the body. Then many psycho-physical diseases take birth in the person. In the same way, in the psychological context, the organizational nature of the individual depends on the harmony of the Id ego and the super ego. In such a situation, a person not only overcomes the existing barriers or obstacles about his goal, but he also establishes a suitable balance in terms of time, place and person.

Intelligence has an important contribution in the revolutionary success of the scientific and technological era. Because of intelligence, man is the best creature in the world. As it has been said that the tendencies of food, fear, copulation and sleep are found in all living beings. But because of intelligence, a person is considered superior to others. It is through the intellect that a person develops conscience and thinking. It is through intelligence that he sets his goals according to his ability and also achieves success. Often in society, people expressing their views towards each other say that that person is influential and that person is of slow intelligence. There is a difference in the mental ability of everyone from small children to older persons. Students in a class get different marks after studying from the same teacher. The main reason for this is that the intellectual level of all the students is different. That is, the achievement of intellect is of utmost importance among the living beings.

It is only through this man gets inspiration to do new things. It is through his intellectual capacity that he establishes a suitable harmony with his surroundings. He performs his tasks on the basis of pre-determined programs i.e. his work is fulfilled with purpose. Along with this, he is also able to give an effective and capable dimension to his thinking. Modern psychologists include both innate and acquired characteristics in it.

Some important studies done regarding intellectual level are as follows-

William E. Tummer et al. (2012) on 122 subjects aged 7 years. Tried to see the effect of their intellectual level on the structural activities of the study. As a result of his study, he found that high intellectual level has special importance in the understanding of the language related to the study and appropriate vocabulary. It was also observed in this study that high intellectual level plays an important role in other intellectual activities.

Michael J. Kiefer et al. (2012) on 150 subjects who were class 3 students. Study their study difficulties. In this regard, especially the aspects related to English subject were specially included in the study. The study found that subjects with an appropriate intellectual level of comprehension were more successful in overcoming English language difficulties than students with low comprehension.

Rathi, N.K. (2010) on handball players whose number was 120 and 60 were female and 60 were male. Presented his study on them. The results of the study indicate that the intellectual level of international handball players is significantly higher. Relatively to those players who are of provincial or inter-provincial level. Female players were found to have higher cognitive abilities than male players. In terms of emotional maturity among international players, a significant difference was observed in other players, in terms of gender, there was also a significant difference in emotional maturity.

Adequate similarity was seen among the provincial level players in terms of intellectual ability. This study also found that players with high intellectual ability and high emotional instability have a higher correlation with active sports activities.

Shobhana Nandwana and Kushag Joshi (2010) selected 60 tribal adolescents from a village in Udaipur. Out of which 30 boys and 30 girls were selected. Whose age was between 16 and 18 years. They studied their emotional intelligence level and found that adolescents who have higher intellectual abilities are able to cope with stressful and stressful situations of this age group with ease. Whereas social, cultural, economic and educational variables have less effect on it.

Bakery, NS and Alaki SM (2012) presented their study on 86 subjects aged 3 to 13 years. These children were divided into 3 groups on the basis of their different daily activities. In

group A, completely independent applications were placed, in group B were completely dependent and in group C, only partially dependent applications were kept. On studying the responses of the subjects of these three groups and their intellectual capacity, it was obtained that the subjects of independent group express special superiority in all their activities as compared to dependent groups and meaningful in their working style and other responses. The difference is also visible.

Null hypothesis - there is no significant difference in the intellectual level of students studying in high school.

Method

Sample - In the present research study, 120 students studying in high school of Aligarh district have been selected. Out of which 60 boys and 60 girls have been selected. Whose age is between 14 to 17 years. The subjects for the study were selected on the basis of stratified randomization sampling method.

Study Material

General Verbal Intelligence Test prepared by Dr. R. P. Singh has been used for the present research work. This test was created in the year 2000. Similar meaning words, converse meaning words, classification number ordering, suitable answer, logical reasoning and similarities, these seven areas have been included in this test. Because both boys and girls accept many types of subjects in student life on the basis of these aspects. The posts related to all the fields have been presented in a mixed form on the basis of their nature and difficulty. In the first phase of test creation, a total of 300 posts related to different fields were placed and they were administered to 1000 students from the age of 14 years to the age of 20 years. Based on the scores of all age groups, a total of 100 posts were finally placed in the presented test. For this, appropriate opinion of psychologists, educationists and other skilled and experienced experts were also taken.

Procedure

This scale has been used on selected subjects and the test paper has been used to get the marks. The data thus collected were tabulated. So that suitable conclusions can be drawn.

Results and Interpretation

The compiled data have been analyzed by tabulating them in the table, the mean, standard deviation (S.D.) and intellectual level of the students studying in high school.

Intellectual Level	Boys in 10^{th} class			Girls in 10^{th} class			SE_D	T-value
	No. of Students	Mean	S.D.	No. of Students	Mean	S.D.		
I.Q.	60	100.28	2.86	60	99.06	2.55	0.47	2.59

Note: Significant difference is at 0.05 level.

Bar diagram showing mean values of intellectual level of high school students

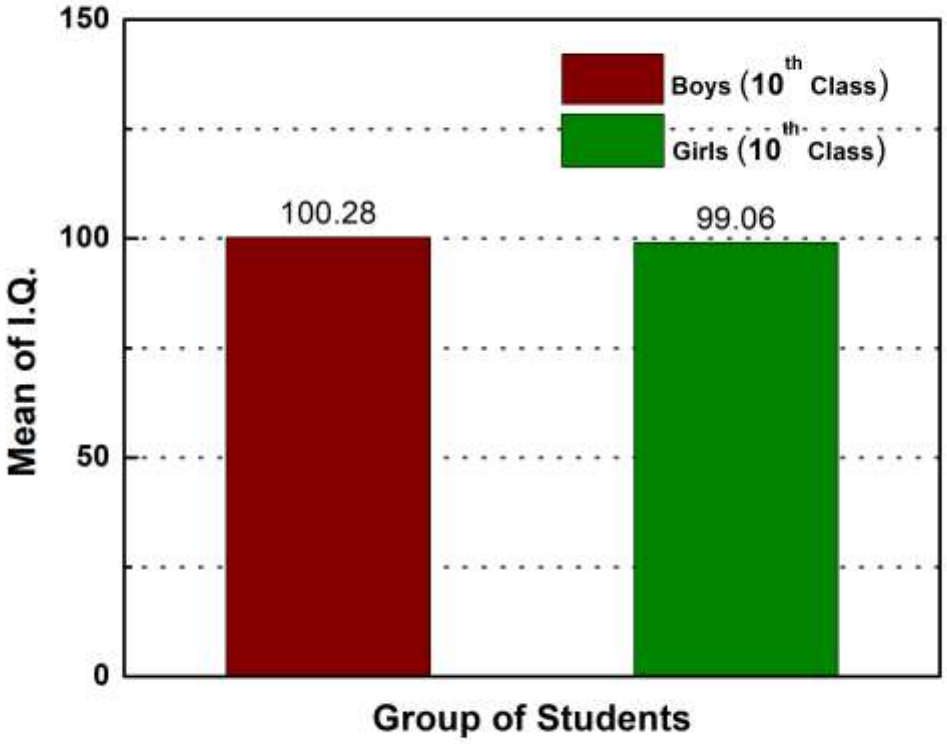

On statistical analysis of the data given in the above table, it is clear that in terms of the intellectual level of high school students, the mean score of IQ of high school boys is 100.28 and the standard deviation is 2.86. The mean value of high school girls in the same region is 99.06 and the standard deviation is 2.55. To find the significance level of the difference of their mean values, the 'T-value' was determined. Its value is 2.59 and it is significant at .05 level.

Conclusion - By observing the above results, it is known that there is a significant difference in the intellectual level of the students studying in high school. Hence our null hypothesis is rejected. The reason may be the suitable facilities that can not be received by the girls or the reason beyond our scope.

Reference list:

1. Michael J. Kiefer et al. (2012): Components and Context Exploring Sources of Reading Difficulties for Language Minority Learners and Native English Speakers in Urban School Journal of Learning Disabilities Vol. 45, No. 5, pages 433–452.
2. Rathi, N.K. (2010) : Exploring Cognitive Style and Emotional Maturity among Indian Handball Players Performing at Bearing Levels Indian Journal of Social Sciences P.E./Vol- 1. Issue - 1.

3. William E. Tummer et al. (2012): A study of the intellectual level of the applicator and the study activities. Journal of Learning Disabilities bo. 45, No. 5, pages 453 - 466.

4. Shobhana Nandwana and Kushagra Joshi (2010): Assessment of Emotional Intelligence of Tribal Adolescents of Udaipur: An Exploratory Study. Kamala- Raj Study Trives Travels 8 (1). Pages 37-40.

5. Pathak, P.D. (1982) : Educational Psychology, Publisher Vinod Pustak Mandir, Agra.

6. Singh, Arun Kumar (2002) Higher General Psychology, Publisher Motilal Banarsi Das, Delhi-7

7. Kapil, HK (1994) Fundamentals of Statistics Publisher Vinod Pustak Mandir, Agra.

8. Sharma RA and Chaturvedi, Shikha (2013): Fundamentals of Educational Psychology Publisher - R. Lal Book Depot, Begum Bridge Road, Meerut.

9. Bakery NS and Alaki SM (2012) Risk Factors Associated with Caries Experiences in Children and Adolescents with Intellectual Disabilities Journal of Clinical Pediatrics Dentistry Box- 36 (3) pp. 319-323.

ISSN : 2319-7137, Volume: 15/Issue: 01, January-June : 2022

विज्ञापन और हिन्दी भाषा

डॉ. ऋतु वार्ष्णेय गुप्ता
असिस्टेंट प्रोफेसर
हिन्दी–विभाग
किरोड़ी मल महाविद्यालय
दिल्ली विश्वविद्यालय

व्यापारिक विकास तथा प्रचार–प्रसार विद्यालय का ऐतिहासिक संबंध रहा है। इसी सहायता उत्पाद का गुणवत्ता का एवं उसकी क्रय क्षमता में वृद्धि के उद्देश्य से ली जाती है। प्रचार एवं जनसंपर्क दोनों में ही इसकी अहम् भूमिका होती है। विज्ञापन सच्चाई में जनमत को पक्ष में करने का सशक्त माध्यम है।

विज्ञापन को यदि हम विभाजित करें तो यह दो words वि और ज्ञापन से मिलकर बनता है। ज्ञापन का तात्पर्य है जानकारी देना और 'वि' का उपसर्ग के रूप में प्रयुक्त होता है।

एडवर्टाइजिंग विज्ञापन के लिए अंग्रेजी में सर्वाधिक उपयुक्त शब्द है। इसकी उत्पत्ति लेटिन शब्द Advertor से मानी जाती है जिसका अर्थ है किसी ओर मुड़ना या परिवर्तन। स्पष्ट शब्दों में कहें तो लोगों को अपनी ओर आकर्षित करना विज्ञापन कहलाता है।

विज्ञापन क्या है इस पर अनेक विद्वानों की पृथक–पृथक राय है। कुछ पाश्चात्य विद्वानों ने विज्ञापन की अनेक परिभाषाएँ दी हैं –

ब्लम – समस्त विज्ञापन का क्षेत्र सुझाव है।

रोजर रीवज के शब्दों में विज्ञापन एक व्यक्ति के मस्तिष्क से दूसरे मस्तिष्क में एक विचार को स्थानान्तरित करने की कला है।

ए. सलडन के अनुसार विज्ञापन वह व्यावसायिक प्रक्रिया है जिससे मुद्रित शब्दों या माध्यमों से विक्रय, लोकप्रियता एवं विश्वसनीयता प्राप्त करने में सहायता मिलती है।

लास्कर का मत है विज्ञापन मुद्रित रूप में एक कला है।

एस. रोलैंड के अनुसार विज्ञापन विक्रय कला की ऐसी प्रणाली है जिसमें वस्तु के लेखन, मुद्रण तथा चित्रण से सूचनाएँ प्रदान की जाती है।

इससे स्पष्ट है कि विज्ञान का कार्य प्रचार द्वारा जनमानस में किसी वस्तु या सेवा को चाहे उसकी गुणवत्ता कुछ भी हो लोकप्रिय बनाता है।

हिटलर और गोएबल्स के बारे में कहा जाता है कि वे झूठ को बार–बार दोहराकर अर्थात् उस धुआँधार विज्ञापन के जरिए सच बनाने में यकीन रखते हैं। हिटलर निरंत प्रचार माध्यमों की सहायता से विज्ञापन करता रहा है कि जर्मन लोग ही विश्व पर राज करने के अधिकारी है। जर्मन नसल के लोग दुनिया के सबसे अधिक बुद्धिमान लोग समझे जाते हैं मगर वे भी हिटलर के जाल में फंसने से नहीं बच सके। विज्ञापन की भूमिका का महत्त्व इसी बात से स्पष्ट है कि विज्ञापन के अभाव में कालजयी चित्रकार अपने जीवनकाल में एक भी कलाकृति बेचने में सफल नहीं हुए जबकि आज उनके चित्र विश्व में सर्वाधिक महंगे चित्र है।

दरअसल बोलचाल की भाषा में विज्ञापन का अर्थ प्रचार से लिया जाता है परंतु यह केवल प्रचार नहीं बल्कि जनसंपर्क हेतु किया गया अनुरोध उक्ति है जो उत्पादित वस्तु के प्रति दिलचस्पी पैदा करता है। हिंदी में विज्ञापन का मूल भाव ज्ञान कराना अथवा सूचना देना होता है।

प्रमुख राष्ट्रीय विज्ञापनदाता एवं प्रकाशक सूचना संघ के अनुसार विज्ञापन उत्पाद या सेवा की सीधी बिक्री से आगे उद्देश्यपूर्ति के लिए किए गए समवेत वैयक्तिक प्रयासों के रूप में आधारित है।

शैलेन्द्र एक विज्ञापन को समाचार पत्र की नींव मानते हैं। क्योंकि विज्ञापन प्रचार तथा वितरण विभाग के कर्मचारी पत्र की वित्तीय स्थिति को मजबूत बनाए रखने के लिए भरपूर श्रम करते हैं तथापि इन सबमें विज्ञापन विभाग का स्थान सर्वोपरि है इसलिए की वितरण की अपेक्षा विज्ञापनों से आय अर्जित करने की प्रतिस्पर्धा बहुत है।

उपयुक्त परिभाषाओं में यह ज्ञात होता है कि विज्ञापन वह सूचना और समवाय है जो उत्पादन की उत्कृष्टता की विश्वसनीयता की जानकारी के साथ–साथ अपने उपभोक्ताओं की उससे मिलने वाली सेवाओं की जानकारी देता है। इस प्रकार हम कह सकते हैं कि विज्ञापन के द्वारा हम परिचय प्राप्त करते हैं। विक्रय वृद्धि की ओर आकृष्ट होते हैं विश्वसनीयता की ओर जाग्रत होते हैं और साथ ही साथ वस्तु विशेष की ओर ध्यान आकर्षक सेना स्वाभाविक प्रक्रिया है।

विज्ञापन का आधुनिक युग में महत्त्वपूर्ण योगदान है जो संचार को गतिशील बनाते हैं। वस्तुतः विज्ञापन से तात्पर्य है जो ज्ञापित हो। विज्ञापन संचार का वह विशिष्ट अंग है जो समाज की दिशा और दशा को तय करने लगा है। विज्ञापन के अंतर्गत किसी वस्तु का विभिन्न क्षेत्रों में प्रचार किया जाता है। विज्ञापन के द्वारा उत्पादक वस्तु की खरीद के लिए लोगों को आकर्षित किया जाता है।

विज्ञापन वह माध्यम है जिसके द्वारा समाज के लोगों की गतिविधियों एवं रुचियों को निर्धारित एवं किसी वस्तु के विक्रय हेतु प्रेरित किया जाता है। विज्ञापन का अधिकांशतः प्रयोग आधुनिक रूप में उत्पादन वस्तु को श्रेष्ठ साबित करना होता है। विज्ञापन में किसी वस्तु के गुणों एवं उसके लाभ को नहीं बताया जाता अपितु दूसरों की अपेक्षा श्रेष्ठ साबित करने की होड़ रहती है।

विज्ञापन का समाज पर प्रत्यक्ष एवं अप्रत्यक्ष दोनों तौर पर प्रभाव पड़ता है। विज्ञापन समाज को वर्तमान में अत्यधिक प्रभावित कर रहा है।

विज्ञापन कई प्रकार के होते हैं। वह किसी वस्तु के विक्रय हेतु प्रेरित करता है जिसमें वस्तु की आवश्यकता को बतलाकर लोगों की जीवन गतिविधियों को निर्धारित एवं नियंत्रित करने लगा है। इसका प्रभाव समाज पर इतने गहरे रूप में पड़ा है कि कई लोग विज्ञापन द्वारा प्रदर्शित वस्तुओं को ही अपने व्यवहारिक जीवन में उपयोग करने लगे हैं। चाहे वह किसी कोटि का हो। संचार के द्वारा प्रदर्शित विज्ञापनों का अनुमानतः समाज पर 40% प्रभाव पड़ता है। मनुष्य विज्ञापनों में दिखलाई वस्तु को ही खरीदते हैं।

सार्वजनिक छवि या सजकता के लिए भी विज्ञापनों का प्रयोग किया जाता है जो समाज को मानसिक रूप से प्रभावित करते हैं। किसी संस्था की छवि को विज्ञापनों के द्वारा समाज में दर्शाया जाता है। विज्ञापन का समाज पर प्रभाव में सबसे प्रखर लोगों को सचेत करने से है। विज्ञापनों द्वारा लोगों को जागरुक किया जाता है। स्वास्थ्य संबंधी, रोग संबंधी, स्वाइन फ्लू, डेंगू आदि की जानकारियाँ देना एवं उनकी रोकथाम में विज्ञापन की भूमिका अधिक महत्त्वपूर्ण होती है। विज्ञापन के द्वारा सकारात्मक संदेश दिया जाता है जो काफी हद तक लोगों की मनःस्थिति को प्रभावित करता है। विज्ञापन के इस दौर में मनुष्य उच्चता और गुणता को भूलता जा रहा है। वह विज्ञापित वस्तु को अधिक पसंद करता है चाहे वह कैसी भी हो। विज्ञापन कंपनियाँ भी समाज के लोगों मनःस्थिति का अंकन करने में सफल हो जाती है। वह विज्ञापन का चमत्कारपूर्ण प्रदर्शन करती है।

वर्तमान में समाज को प्रभावित करने में स्त्री का योगदान प्रमुख रहा है। विज्ञापनों में स्त्री छवि का उपयोग अत्यधिक मात्रा में किया जा रहा है। नारी का सुंदर एवं आकर्षक रूप लोगों पर अधिक प्रभाव डाल रहा है जिसके माध्यम से लोग उसी ब्रांड की वस्तु को अधिक खरीदते हैं।

विज्ञापन में सकारात्मक प्रभाव को प्रदर्शित किया जाता है। विज्ञापन में उत्पादक वस्तु को श्रेष्ठ तो दिखलाया जाता है अपितु गुणों का भी प्रदर्शन किया जाता है। विज्ञापन में बड़े लोगों पर तो प्रभाव

पड़ता ही है साथ ही साथ बाल मन पर इसका प्रभाव अधिक प्रिय लगेगी इसके लिए विज्ञापन कर्ता कोशिश करता है कि बालक अधिक आकर्षित हो।

विज्ञापन वर्ग के हिसाब से भी प्रदर्शित किए जाते हैं जिनका समाज के भिन्न–भिन्न तबके पर भिन्न–भिन्न प्रभाव पड़ता है। बुजुर्गों के लिए विज्ञापन में किसी आदर्श व्यक्ति, युवाओं एवं बच्चों के लिए सितारा छवि का सहारा लिया जाता है।

श्रेणी के दृष्टि से भी विज्ञापन समाज पर प्रभाव डालते हैं। निम्न श्रेणी के विज्ञापन रेडियो पर उच्च के लिए अधिकांशतः टीवी पर दिखलाए जाते हैं। विज्ञापन में साक्षर के लिए अधिकांशतः टेलीविजन, रेडियो पर तो होते ही हैं किंतु पत्र–पत्रिकाओं में इसका स्पष्ट रूप देखने को मिलता है। विज्ञापन का वर्तमान में समाज पर इतना गहरा प्रभाव है कि नेट, मोबाइल पर भी विज्ञापन प्रदर्शित किए जाने लगे हैं।

विज्ञापन का सकारात्मक प्रभाव के साथ–साथ नकारात्मक प्रभाव भी पड़ता है जिसका प्रमुख रूप बच्चों की मनःस्थितियों में हो रहा परिवर्तन है। विज्ञापन में अश्लीलता का बढ़ता प्रयोग इसके विकृत रूप को उजागर करता है जिसका प्रभाव समाज के विभिन्न वर्गों पर अलग–अलग रूपों में पड़ता है। विज्ञापन अप्रत्यक्ष तौर पर गलत संदेश भी प्रेषित कर रहा है।

निष्कर्षतः विज्ञापन समाज पर अत्यधिक गहरा प्रभाव डाल रहा है। वह लोगों की मनः स्थितियों को प्रभावित तो करता ही है अपितु उत्पादक वस्तु के क्रम हेतु प्रेरित भी करता है। सामाजिक कल्याण वर्तमान रूप में विज्ञापनों में झलकता है लेकिन वह गौण है। विज्ञापन के समाज पर प्रभाव को वर्तमान में इस तरह से आंका जा सकता है कि व्यक्ति उस वस्तु की वरीयता देखता है जो विज्ञापित है। अतः सकारात्मक के साथ–साथ विज्ञापन समाज पर नकारात्मकता को भी प्रेरित कर रहा है जो व्यवसायिकता के कारण है।

संदर्भ

1. कविता क्या है? – आचार्य शुक्ल
2. हिंदी साहित्य संवेदना का विकास – डॉ. रामस्वरूप चतुर्वेदी
3. काव्य में प्रकृति दृश्य
4. चिन्तामणि, भाग–1, आचार्य शुक्ल
5. हिन्दी साहित्य का संक्षिप्त इतिहास – आचार्य शुक्ल

ISSN : 2319-7137, Volume: 15/Issue: 01, January-June : 2022

दिव्यांग एवं सामान्य बालकों के समायोजन स्तर का तुलनात्मक अध्ययन

शोध निर्देशिका
डॉ0 सुनीता गुप्ता
विभागाध्यक्ष (शिक्षा–संकाय)
राजा श्रीकृष्ण दत्त पी0जी0 कालेज,
जौनपुर (उ0प्र0)

शोधकर्त्ता
संजीव कुमार त्रिपाठी
एम0ए0, एम0एड्0, नेट
(शिक्षाशास्त्र)

सारांश

प्रस्तुत अध्ययन **दिव्यांग एवं सामान्य बालकों के समायोजन स्तर का तुलनात्मक अध्ययन** करना है। उद्देश्य के रूप में सामान्य बालक–बालिकाओं के समायोजन स्तर का तुलनात्मक अध्ययन करना है। सर्वेक्षण अध्ययन विधि के प्रकारों के अन्तर्गत विद्यालय सर्वेक्षण शोध विधि का प्रयोग किया गया है। इस शोध में जनसंख्या के रूप में उ0प्र0 के जौनपुर जनपद के अन्तर्गत माध्यमिक विद्यालयों में सामान्य एवं दिव्यांग विद्यालयों में अध्ययनरत् विद्यार्थियों को जनसंख्या माना गया है। प्रस्तुत अध्ययन हेतु प्रतिदर्श का चयन उपर्युक्त जनसंख्या को आधार मानकर किया गया है। अध्ययन की सुविधा हेतु उ0प्र0 के जौनपुर जनपद में स्थित माध्यमिक विद्यालयों के सामान्य एवं दिव्यांग विद्यालयों का चयन किया गया है उक्त विद्यालय के 50 विद्यार्थी जिसमें 25 सामान्य एवं 25 दिव्यांग बालक–बालिकाओं का चयन यादृच्दिक विधि के माध्यम से किया जायेगा। प्रस्तुत अध्ययन में सामान्य एवं दिव्यांग विद्यार्थियों के समायोजन को मापने के लिए स्वनिर्मित प्रश्नावली का उपकरण किया गया है। जिसके अन्तर्गत 25 कथन रखा गया है। इस प्रश्नावली में विद्यालय एवं उनके शिक्षा तथा शिक्षक, अभिभावक तथा गृह आदि से सम्बन्धित कथनों को हाँ या नहीं में दिया गया है। अध्ययन में सांख्यिकी विश्लेषण हेतु प्रतिशत सांख्यिकी विधि का प्रयोग किया गया है। निष्कर्ष रूप में पाया गया कि सामान्य विद्यार्थियों की अपेक्षा दिव्यांग विद्यार्थियों में समायोजन स्तर निम्न पाया गया।

मुख्य शब्द– दिव्यांग, सामान्य बालक, समायोजन, तुलना

प्रस्तावना–

प्रत्येक बालक किसी न किसी सामाजिक वातावरण में रहता है। उसी वातावरण से उसकी आवश्यकताओं की पूर्ति होती है। बालक की इच्छाओं और आवश्यकताओं की पूर्ति में बाँधायें आती है। तो बाधाओं के कारण उनमें तनाव उत्पन्न होता है जिससे वह दुःखी तथा निराश हो जाता है। कुछ लोगों के साथ कुछ परिस्थितियों में बालक को प्रसन्नता तथा सन्तुष्टि का अनुभव होता है। ऐसी स्थिति में उनका समायोजन अच्छा होता है परन्तु जिन लोगों के साथ या जिन परिस्थितियों में बालक को असन्तोष और अप्रसन्नता मिलती है। ऐसी स्थिति में उनका समायोजन अच्छा नही होता है। सामान्य बच्चों का समायोजन अच्छा तब होता है जब उनकी इच्छाओं के अनुरूप उनकी आवश्यकताओं की पूर्ति हो जाय और जब उनकी आकांक्षाओं और आवश्यकताओं की पूर्ति नहीं हो पाती तो वे कुसमायोजन के शिकार हो जाते है।

दिव्यांग बालकों को समाज, परिवार और विद्यालय से प्रेम और सहयोग मिलता है तो वे समायोजित होते है और जब उन्हें घर, समाज तथा विद्यालय से तिरस्कार अवहेलना तथा असहयोग मिलता है तो वे असमायोजित होते है।

सामान्य बालकों की इच्छाओं, आकांक्षाओं और आवश्यकताओं को पूरा करके उन्हें समायोजित बनाया जा सकता है तथा दिव्यांग बच्चों को घर एवं समाज तथा विद्यालय में प्रेम, स्नेह, सहयोग प्रदान करके उनका मनोबल बढ़ाकर मानसिक समायोजन स्तर को काफी हद तक सुधारा जा सकता है।

बालक जन्म से अपनी बुनियादी आवश्यकताओं की संतुष्टि के लिए पूर्णरूपेण दूसरों पर निर्भर रहता है लेकिन धीरे–धीरे वह उम्र के साथ–साथ अपनी आवश्यकताओं को नियंत्रित करना सीख लेता है। जब कोई संघर्ष की स्थिति व्यक्तित्व आवश्यकताओं तथा वाह्य माँगों द्वारा उत्पन्न होती है तो व्यक्ति के समक्ष तीन विकल्प होते है।

वर्ष 2011 की जनगणना के अनुसार भारत की जनसंख्या 1 अरब 21 करोड़ हो गयी है। जिसमें 3.12 करोड़ दिव्यांग है। शिक्षा के सार्वभौमिकता के लक्ष्य को पाने के लिए दिव्यांग व्यक्तियों की शिक्षा का प्रावधान किया गया। इसमें कोई शक नही कि दिव्यांग होने को हम अभिशाप मानते है। ऐसे बालक जिनमें शरीर रचना और विकास की दृष्टि से ऐसी न्यूनतम, कमियाँ या दोष पाये जाते है। जिनके कारण उन्हें अपने काम–काज में सामाजिक एवं संवेगात्मक समायोजन में तथा अपनी शिक्षा–दीक्षा और विकास कार्यों में परेशानी उठानी पड़ती है। इनके लिए विशेष प्रयत्न करने पड़ते है। उन्हें हम दिव्यांग बालक कहते है।

आज देश में करीब 25 लाख अन्धे, लगड़े, लूले, बहरे, गूँगे तथा अविकसित मस्तिष्क वाले बालक है। अपने दिव्यांग अंगों के कारण इनका जीवन एक अभिशाप बन गया है। ये न सुखी जीवन ही व्यतीत कर पाते है और न अपने व्यक्तित्व को सन्तुलित ही कर पाते है। उनके व्यक्तिगत जीवन में सरसता सौन्दर्य तथा सन्तुलन लाने के लिए उनको मानवीय सुख की अनुभूति करने योग्य बनाने के लिए यह आवश्यक है कि इनकी यथा सम्भव शैक्षिक एवं व्यावसायिक सहायता की जाये। दिव्यांगों की उचित शिक्षा व्यवस्था करने के लिए यह व्यक्तिगत दृष्टिकोण है।

राष्ट्रीय शिक्षा नीति 1986 में दिव्यांग शिक्षा के निम्न उद्देश्य दिये गये हैं–

1. शारीरिक एवं मानसिक रूप से दिव्यांग बालकों का अन्य स्वस्थ बालकों के साथ समान सहभागित्व के आधार पर समन्वय करना।
2. उन्हें सामान्य विकास के लिये तैयार करना।
3. जीवन का साहस और विश्वास के साथ सामना करने की योग्यता उत्पन्न करना।

किशोरों में व्यक्तित्व व समायोजन सम्बंधी समस्याओं व आवश्यकताओं को भी शिक्षाविद स्वीकार करते है। इस अवस्था में एक प्रौढ़ व्यक्ति के समान प्रतिष्ठा प्राप्त करना किशोर की विशेषता है व इस समय किशोरों में सवेंगात्मक अस्थिरता व रुचि सम्बंधी परिवर्तनों के फलस्वरूप समायोजन सम्बंधी समस्याऐं अधिक मात्रा में विद्यमान रहती हैं जहाँ समायोजन से तात्पर्य है।

भारत विविधताओं का देश है। सामाजिक, शारीरिक, आर्थिक, सांस्कृतिक, धाार्मिक, राजनैतिक, भाषायी, वैचारिक, खानपान, और वेश भूषा संबंधी विभिन्नताएं हमारे देश में विद्यमान है। इनके शक्तिपूर्ण सह अस्तित्व के लिए सामाजिक सद्भाव तथा नागरिक सहिष्णुता की भावना आवश्यकता है। जो सामाजिक अध्ययन के बेहतर शिक्षा द्वारा विकसित किया जा सकता है।

भारतीय प्रजातंत्र की कुछ अपनी समस्यायें भी है जिनको समझना तथा उनका समाधान करना नितांत आवश्यक है। वर्तमान में भारत सांप्रदायिक जातीय झगड़े, अलगाववाद, आतंकवाद जैसी समस्याओं से जूझ रहा है। जिनके मूल नागरिक सहिष्णुता, नागरिक भाव का अभाव है और वर्तमान परिप्रेक्ष्य में विद्यार्थियो में एक सच्चे नागरिक का भाव जिनमें देश के प्रति प्रेम और समाज के प्रति सद्भाव व सहिष्णुता का भाव हो, का विकास नही हो पा रहा है। जबकि देश के प्रगति के लिए यह अपरिहार्य है। सामाजिक अध्ययन के बेहतर शिक्षण द्वारा विद्यार्थियों में ये भाव उत्पन्न एवं विकसित किये जा सकते है।

विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी की नित्य नये अविष्कारों ने आज मानव समाज में महान परिवर्तन ला दिये हैं। इन परिवर्तनो के फलस्वरूप उसके स्वरूप, आकार आदि में परिवर्तन आ गया है, साथ ही मानवीय सम्बन्धों में जटिलता आ गयी है।

वर्तमान विश्व अन्तर्राष्ट्रीय प्रतियोगिता एवं प्रतिद्वन्द्विता की ओर आ रहा है। इस परिप्रेक्ष्य में सामाजिक अध्ययन के बेहतर शिक्षण की आवश्यकता है। ताकि अन्तर्राष्ट्रीय सद्भाव और विश्व शान्ति की स्थापना हो सके, साथ ही मानवीय संबंधो को सुधारा जा सकें और विश्व मैत्री की भावनाओं का विकास हो सके।

प्रायः देखा जा रहा है कि दिव्यांग बच्चों का व्यवहार समाज में प्रचलित मूल्यों के अनुकूल नहीं है जिसके कारण अध्यापक माता–पिता एवं समाज के अन्य व्यक्ति दिव्यांग बच्चों के व्यवहार से सतुष्ट नहीं है यह समस्या समस्त समाज में विष के समान व्याप्त है। जिसका निवारण भिन्न –भिन्न व्याक्तियों ने करने की चेष्टा की है। तथा सरकार ने भी विभिन्न शैक्षिक कार्यक्रम चलाये जिसमें कि इनकी समस्याओं को सुलझाया जा सके परन्तु फिर भी समस्यायें निरन्तर बढ़तीं जा रही हैं वैज्ञानिक उपलब्धियों के कारण समाज का ढांचा बदल रहा है। और जीवन की गति अपेक्षाकृत अधिक तीव्र हो गयी है। संयुक्त परिवारों का टूटना तथा छोटे परिवारों में दोनों सदस्य माता–पिता के व्यवसाय में कार्यरत रहतें। इस कारण उनकें पास इतना समय नहीं कि वह अपनें बच्चों की देखभाल करें और उनका मार्ग निर्देशन करें।

वर्तमान समय में बढ़ती जनसंख्या के कारण विद्यालयों के निजीकरण एवं सरकारी विद्यालयों में बढ़ती भीड़ के कारण विद्यार्थियों पर ध्यान न दिया जाना एवं विद्यार्थियों के अनुकूल विद्यालयी वातावरण का न होना भी विद्यार्थियों के समायोजन में बाधा उत्पन्न होता है। वर्तमान समय में हर व्यक्ति अपने बच्चों को अच्छी से अच्छी शिक्षा देना चाहता है जिससे वह अच्छे से अच्छा विद्यालयों का चुनाव कर बच्चों को पढ़ने के लिए भेजता है लेकिन वह यह भूल जाता है कि क्या उस विद्यालय में बच्चों के अनुकूल वातावरण है कि नहीं। जबकि वहीं कुछ विद्यार्थी भी अपने आपको विद्यालय में समायोजन करने में असुविधा महसूस करते है जिनके कारण उनकी समायोजन में बाधा उत्पन्न होती है।

इस जटिल वातावरण में वह अपने विचारों, कार्यो सुझावों की अभिव्यक्ति ढंग से नही कर पाता जिसके कारण सामान्य एवं दिव्यांग विद्यार्थियों के समायोजन की समस्या उत्पन्न होती है।

समस्या कथन–

दिव्यांग एवं सामान्य बालकों के समायोजन स्तर का तुलनात्मक अध्ययन।

अध्ययन का उद्देश्य–

प्रस्तुत अध्ययन में निम्नलिखित उद्देश्यों का अध्ययन किया गया है–

1. सामान्य एवं दिव्यांग बालकों के समायोजन स्तर का तुलनात्मक अध्ययन करना।
2. सामान्य एवं दिव्यांग बालिकाओं के समायोजन स्तर का तुलनात्मक अध्ययन करना।
3. सामान्य बालक–बालिकाओं के समायोजन स्तर का तुलनात्मक अध्ययन करना।

परिकल्पनाएँ–

प्रस्तुत अध्ययन में निम्नलिखित परिकल्पनाओं का परीक्षण किया जायेगा–

1. सामान्य एवं दिव्यांग बालकों के समायोजन स्तर में कोई सार्थक अन्तर नहीं है।
2. सामान्य एवं दिव्यांग बालिकाओं के समायोजन स्तर में कोई सार्थक अन्तर नहीं है।
3. सामान्य बालक–बालिकाओं के समायोजन स्तर में कोई सार्थक अन्तर नहीं है।

शोध विधि–

शोध प्रक्रिया में अनुसंधान विधियाँ अतिमहत्वपूर्ण होती है। शोध सममस्या के निराकरण के लिए अपनाये जाने वाले विभिन्न चरणों का यह विधि वर्णन करती है। किसी भी शोध विधि का निराकरण उसके उद्देश्यों द्वारा होता है। वास्तव में उद्देश्य ही शिक्षा प्रदान करते है इन्हीं उद्देश्य की पूर्ति हेतु प्रस्तुत शोध कार्य में वर्णनात्मक अनुसंधान विधि के अन्तर्गत सर्वेक्षण अध्ययन विधि का चयन किया गया है क्योंकि इसका सम्बन्ध वर्तमान से होता है तथा क्या है? का वर्णन तथा विश्लेषण करता है। सर्वेक्षण अध्ययन विधि के प्रकारों के अन्तर्गत विद्यालय सर्वेक्षण शोध विधि का प्रयोग किया गया है।

जनसंख्या–

इस शोध में जनसंख्या के रूप में उ0प्र0 के जौनपुर जनपद के अन्तर्गत माध्यमिक विद्यालयों में सामान्य एवं दिव्यांग विद्यालयों में अध्ययनरत् विद्यार्थियों को जनसंख्या माना गया है।

न्यादर्श–

प्रस्तुत अध्ययन हेतु प्रतिदर्श का चयन उपर्युक्त जनसंख्या को आधार मानकर किया गया है। अध्ययन की सुविधा हेतु उ0प्र0 के जौनपुर जनपद में स्थित माध्यमिक विद्यालयों के सामान्य एवं दिव्यांग विद्यालयों का चयन किया गया है उक्त विद्यालय के 50 विद्यार्थी जिसमें 25 सामान्य एवं 25 दिव्यांग बालक–बालिकाओं का चयन यादृच्छिक विधि के माध्यम से किया जायेगा।

उपकरण–

प्रस्तुत अध्ययन में सामान्य एवं दिव्यांग विद्यार्थियों के समायोजन को मापने के लिए स्वनिर्मित प्रश्नावली का उपकरण किया गया है। जिसके अन्तर्गत 25 कथन रखा गया है। इस प्रश्नावली में विद्यालय एवं उनके शिक्षा तथा शिक्षक, अभिभावक तथा गृह आदि से सम्बन्धित कथनों को हाँ या नहीं में दिया गया है।

सांख्यिकीय प्रविधि–

सारणियों एवं दण्ड आरेखों के माध्यम से आँकड़ों का विश्लेषण एवं व्याख्या किया गया है तथा परीक्षण से प्राप्त आँकड़ों का विश्लेषण निम्न सूत्र के आधार पर किया गया है–

सूत्र–

$$\text{प्रतिशत} = \frac{\text{कुल प्राप्तांकों की संख्या}}{\text{कुल विद्यार्थी}} \times 100$$

प्रदत्तों का विश्लेषण एवं व्याख्या–

सारणी 1

कुल प्रश्नों का 25 सामान्य विद्यार्थियों का समायोजन पर प्राप्त प्राप्तांक

कथन	हाँ	प्रतिशत	नहीं	प्रतिशत
1. क्या आपके विद्यालय में आधुनिक शिक्षण सहायक सामग्री के माध्यम से शिक्षण कार्य कराया जाता है।	13	52%	12	48%
2. क्या आपको कक्षा–कक्ष में समायोजन करने में कठिनाई उत्पन्न होती है?	5	20%	20	80%
3. क्या आपको कक्षा–कक्ष में गुणवत्तापूर्ण शिक्षा प्रदान की जाती है?	19	76%	6	24%
4. क्या शिक्षक द्वारा शिक्षण कार्य करते समय बीच–बीच में आने वाली कठिन शब्दों, प्रत्ययों का अर्थ समझाने का प्रयास उचित तरीके से किया जाता है?	24	96%	1	4%
5. क्या आपके अभिभावक शिक्षण कार्य में सहयोग प्रदान करते हैं?	24	96%	1	4%
6. क्या शिक्षक द्वारा आपकी समस्या को गम्भीरता पूर्वक सूना जाता है?	25	100%	0	0%

7. क्या आपके विद्यालय में आयोजित शैक्षिक कार्यक्रमों में सभी को समान अवसर मिलता है?	22	88%	3	12%
8. क्या आपकों आपके अध्यापकों द्वारा नैतिक मूल्यों का ज्ञान दिया जाता है?	24	96%	1	4%
9. क्या आपके अध्यापक, अभिभावक द्वारा आपके अच्छे कार्यो के लिए प्रोत्साहित किया जाता है?	23	92%	2	8%
10. क्या आपके प्रधानाचार्य द्वारा शिक्षक, अभिभावक बैठक बुलाई जाती है।	22	88%	3	12%
11. क्या अपके विद्यालय में समान्य ज्ञान प्रतियोगिता का आयोजन कराया जाता है?	19	76%	6	24%
12. क्या आपकी गणित विषय में रूचि है?	25	100%	0	0%
13. क्या आपके विद्यालय में समान्य विद्यार्थियों के साथ दिव्यांग विद्यार्थियों को शिक्षण कार्य में सामिल होने के लिए बाधा मुक्त परिषर व भवन हैं?	17	68%	8	32%
14. क्या आपको कक्षा–कक्ष में सामाजिक भावना का ज्ञान प्रदान किया जाता है?	25	100%	0	0%
15. क्या आपको नवीन तकनिकियों का ज्ञान कराया जाता है?	19	76%	6	24%
16. क्या आपकी कक्षा में दिव्यांग विद्यार्थियों को आगे बैठने का अवसर दिया जाता है?	23	92%	2	8%
17. क्या विद्यालय द्वारा आपके शैक्षिक समस्याओं का निदान किया जाता है?	25	100%	0	0%
18. क्या आपके अध्यापकों द्वारा आपके शिक्षण कार्य का समय–समय पर मूल्यांकन किया जाता है?	24	96%	1	4%
19. क्या आपकों विज्ञान विषयों में रूचि है?	23	92%	2	8%
20. क्या आपकों आपके अध्यापकों द्वारा अभिप्रेरणा प्रदान की जाती है?	24	96%	1	4%
21. क्या आपके विद्यालय का शैक्षिक वातावरण स्वस्थ है?	23	92%	2	8%
22. क्या आपके शिक्षक का व्यवहार आपके प्रति सहानुभूति पूर्ण है?	22	88%	3	12%
23. क्या आपको अपने विषय वस्तु को समझने में कठिनाई होती है?	7	28%	18	72%
24. क्या आपके शिक्षक शिक्षा में आवश्यक प्रगति हेतु समय–समय पर प्रगति रिर्पोट जानने का प्रयास करते रहते हैं?	20	80%	5	20%
25. क्या आपके शिक्षक कक्षा में उपयुक्त शिक्षण विधियों का प्रयोग करते है?	23	92%	2	8%

सारणी 2

कुल प्रश्नों का 25 दिव्यांग विद्यार्थियों का समायोजन पर प्राप्त प्राप्तांक

कथन	हाँ	प्रतिशत	नहीं	प्रतिशत
1. क्या आपके विद्यालय में आधुनिक शिक्षण सहायक सामग्री के माध्यम से शिक्षण कार्य कराया जाता है।	19	76%	6	24%
2. क्या आपको कक्षा–कक्ष में समायोजन करने में कठिनाई उत्पन्न होती है?	10	40%	15	60%
3. क्या आपको कक्षा–कक्ष में गुणवत्तापूर्ण शिक्षा प्रदान की जाती है?	21	84%	4	16%
4. क्या शिक्षक द्वारा शिक्षण कार्य करते समय बीच–बीच में आने वाली कठिन शब्दों, प्रत्ययों का अर्थ समझाने का प्रयास उचित तरीके से किया जाता है?	21	84%	4	16%
5. क्या आपके अभिभावक शिक्षण कार्य में सहयोग प्रदान करते हैं?	21	84%	4	16%
6. क्या शिक्षक द्वारा आपकी समस्या को गम्भीरता पूर्वक सूना जाता है?	21	84%	4	16%
7. क्या आपके विद्यालय में आयोजित शैक्षिक कार्यक्रमों में सभी को समान अवसर मिलता है?	19	76%	6	24%
8. क्या आपकों आपके अध्यापकों द्वारा नैतिक मूल्यों का ज्ञान दिया जाता है?	22	88%	3	12%
9. क्या आपके अध्यापक, अभिभावक द्वारा आपके अच्छे कार्यो के लिए प्रोत्साहित किया जाता है?	18	72%	7	28%
10. क्या आपके प्रधानाचार्य द्वारा शिक्षक, अभिभावक बैठक बुलाई जाती है।	18	72%	7	28%
11. क्या अपके विद्यालय में समान्य ज्ञान प्रतियोगिता का आयोजन कराया जाता है?	22	88%	3	12%
12. क्या आपकी गणित विषय में रूचि है?	19	76%	6	24%
13. क्या आपके विद्यालय में समान्य विद्यार्थियों के साथ दिव्यांग विद्यार्थियों को शिक्षण कार्य में सामिल होने के लिए बाधा मुक्त परिषर व भवन हैं?	16	64%	9	36%
14. क्या आपको कक्षा–कक्ष में सामाजिक भावना का ज्ञान प्रदान किया जाता है?	22	88%	3	12%
15. क्या आपको नवीन तकनिकियों का ज्ञान कराया जाता है?	22	88%	3	12%
16. क्या आपकी कक्षा में दिव्यांग विद्यार्थियों को आगे बैठने का अवसर दिया जाता है?	19	76%	6	24%
17. क्या विद्यालय द्वारा आपके शैक्षिक समस्याओं का निदान किया जाता है?	25	100%	0	0%

18. क्या आपके अध्यापकों द्वारा आपके शिक्षण कार्य का समय–समय पर मूल्यांकन किया जाता है?	22	88%	3	12%
19. क्या आपकों विज्ञान विषयों में रूचि है?	21	84%	4	16%
20. क्या आपकों आपके अध्यापकों द्वारा अभिप्रेरणा प्रदान की जाती है?	20	80%	5	20%
21. क्या आपके विद्यालय का शैक्षिक वातावरण स्वस्थ है?	20	80%	5	20%
22. क्या आपके शिक्षक का व्यवहार आपके प्रति सहानुभूति पूर्ण है?	20	80%	5	20%
23. क्या आपको अपने विषय वस्तु को समझने में कठिनाई होती है?	5	20%	20	80%
24. क्या आपके शिक्षक शिक्षा में आवश्यक प्रगति हेतु समय–समय पर प्रगति रिर्पोट जानने का प्रयास करते रहते हैं?	20	80%	5	20%
25. क्या आपके शिक्षक कक्षा में उपयुक्त शिक्षण विधियों का प्रयोग करते है?	23	92%	2	8%

- 52% सामान्य विद्यार्थी आधुनिक शिक्षण सहायक सामग्री के माध्यम से शिक्षा प्राप्त करते है एवं 48% सामान्य विद्यार्थी इससे वंचित रह जाते है तथा 76% दिव्यांग विद्यार्थी आधुनिक शिक्षण सहायक सामग्री के माध्यम से शिक्षा प्राप्त करते है एवं 24% दिव्यांग विद्यार्थी इससे वंचित रह जाते है। उपरोक्त की तुलना करने से पता चलता है कि सामान्य विद्यार्थियों की तुलना में दिव्यांग विद्यार्थी आधुनिक शिक्षण सामग्री के माध्यम से अधिक शिक्षा प्राप्त करते है।
- 20% सामान्य विद्यार्थियों को कक्षा–कक्ष में समायोजन करने में कठिनाई उत्पन्न होती है एवं 80% सामान्य विद्यार्थियों को कक्षा–कक्ष में समायोजन करने में कठिनाई उत्पन्न नहीं होती है तथा 40% दिव्यांग विद्यार्थियों को कक्षा–कक्ष में समायोजन करने में कठिनाई उत्पन्न होती है एवं 60% दिव्यांग विद्यार्थियों को कक्षा–कक्ष में समायोजन करने में कठिनाई उत्पन्न नहीं होती है। अतः उपरोक्त व्याख्या की तुलना करने से पता चलता है कि दिव्यांग विद्यार्थी की अपेक्षा सामान्य विद्यार्थियों में कक्षा–कक्ष में समायोजन करने में कठिनाई उत्पन्न नहीं होती है।
- 76% सामान्य विद्यार्थियों को कक्षा–कक्ष में गुणवत्तापूर्ण शिक्षा प्रदान की जाती है एवं 24% सामान्य विद्यार्थियों को कक्षा–कक्ष में गुणवत्तापूर्ण शिक्षा प्रदान नही की जाती है तथा 84% दिव्यांग विद्यार्थियों को कक्षा–कक्ष में गुणवत्तापूर्ण शिक्षा प्रदान की जाती है एवं 16% दिव्यांग विद्यार्थी गुणवत्तापूर्ण शिक्षा से वंचित रह जाते है। अतः इससे यह स्पष्ट होता है कि कक्षा–कक्ष में गुणवत्तापूर्ण शिक्षा सामान्य विद्यार्थियों से ज्यादा दिव्यांग छात्र प्राप्त करते है।
- 96% सामान्य एवं दिव्यांग विद्यार्थी मानते है कि कक्षा में शिक्षक द्वारा बीच–बीच में आने वाली कठिन शब्दों, प्रत्ययों का अर्थ समझाते है जबकि 4% सामान्य एवं दिव्यांग विद्यार्थी इससे सहमत नहीं है। अतः इससे यह स्पष्ट होता है कि सामान्य एवं दिव्यांग विद्यार्थी समान रूप से मानते है कि कक्षा में शिक्षक द्वारा बीच–बीच में आने वाली कठिन शब्दों, प्रत्ययों का अर्थ समझाते है।
- 96% सामान्य विद्यार्थियों के अभिभावक उनके शिक्षण कार्य में सहयोग प्रदान करते है जबकि 4% सामान्य विद्यार्थियों के अभिभावक उनके शिक्षण कार्य में रूचि नहीं लेते है तथा 84%

दिव्यांग विद्यार्थियों के अभिभावक उनके शिक्षण कार्य में सहयोग प्रदान करते है जबकि 16% दिव्यांग विद्यार्थियों के अभिभावक उनके शिक्षण कार्य में रूचि नहीं लेते है। अतः इससे यह स्पष्ट होता है कि सामान्य विद्यार्थियों के अभिभावक दिव्यांग विद्यार्थियों की अपेक्षा शिक्षण कार्य में अधिक सहयोग प्रदान करते है।

- 100% सामान्य विद्यार्थियों की समस्याओं को शिक्षक द्वारा सुना जाता है जबकि 84% दिव्यांग विद्यार्थियों की समस्याओं को शिक्षक द्वारा सुना जाता है एवं 16% दिव्यांग विद्यार्थियों की समस्याओं को शिक्षक अनुसूना कर देते है। अतः इससे यह स्पष्ट होता है कि शिक्षक द्वारा दिव्यांग विद्यार्थियों की अपेक्षा सामान्य विद्यार्थियों की समस्याओं को अधिक ध्यान देते है।
- 84% सामान्य विद्यार्थियों को विद्यालय में होने वाले शैक्षिक कार्यक्रमों में अवसर प्रदान किये जाते है जबकि 76% दिव्यांग विद्यार्थियों को ही विद्यालय में होने वाले शैक्षिक कार्यक्रमों में अवसर प्रदान किया जाता है एवं 24% दिव्यांग विद्यार्थियों को अवसर प्रदान नहीं किया जाता है। अतः इससे यह स्पष्ट होता है कि दिव्यांग विद्यार्थियों की अपेक्षा सामान्य बालकों को विद्यालय में होने वाली शैक्षिक कार्यक्रमों में अधिक महत्त्व दिया जाता है।
- 96% सामान्य विद्यार्थियों के अध्यापकों द्वारा नैतिक मूल्यों का ज्ञान दिया जाता है एवं 4% सामान्य विद्यार्थी मानते है कि इनके अध्यापकों द्वारा नैतिक मूल्यों का ज्ञान नहीं दिया जाता है तथा 88% दिव्यांग विद्यार्थी मानते है कि अध्यापकों द्वारा नैतिक मूल्यों का ज्ञान दिया जाता है एवं 12% दिव्यांग विद्यार्थियों में इस तथ्य से असन्तुष्टि है। अतः इससे यह स्पष्ट होता है कि दिव्यांग विद्यार्थियों की अपेक्षा सामान्य विद्यार्थियों में अधिक सहमति पायी गयी कि अध्यापकों द्वारा नैतिक मूल्यों का ज्ञान प्रदान किया जाता है।
- 96% सामान्य विद्यार्थियों को अध्यापकों एवं अभिभावकों द्वारा उनके अच्छे कार्यों के लिए प्रोत्साहित किया जाता है एवं 4% सामान्य विद्यार्थी मानते है कि अध्यापकों एवं अभिभावकों द्वारा उनके अच्छे कार्यों के लिए प्रोत्साहित नहीं किया जाता है जबकि 72% दिव्यांग विद्यार्थियों को अध्यापकों एवं अभिभावकों द्वारा उनके अच्छे कार्यों के लिए प्रोत्साहित किया जाता है एवं 24% दिव्यांग विद्यार्थियों को अध्यापकों एवं अभिभावकों द्वारा उनके अच्छे कार्यों के लिए प्रोत्साहित नहीं किया जाता है। अतः इससे यह स्पष्ट होता है कि दिव्यांग विद्यार्थियों को अध्यापकों एवं अभिभावकों द्वारा सामान्य विद्यार्थियों के दृष्टिकोण से नहीं देखा जाता है।
- 88% सामान्य विद्यार्थी एवं 72% दिव्यांग विद्यार्थी सहमत है कि प्रधानाचार्य द्वारा विद्यालय में शिक्षक–अभिभावक बैठक बुलाई जाती है जबकि 12% सामान्य एवं 24% दिव्यांग विद्यार्थियों में इस कथन के लिए असहमति जतायी है। अतः इससे यह स्पष्ट होता है कि दिव्यांग विद्यार्थियों की अपेक्षा सामान्य विद्यार्थियों पर अधिक ध्यान दिया जाता है।
- 76% सामान्य विद्यार्थी सहमत है कि विद्यालय में सामान्य ज्ञान प्रतियोगिता का आयोजन कराया जाता है जबकि 24% सामान्य विद्यार्थी इस बात से असहमत है तथा 88% दिव्यांग विद्यार्थी मानते है कि विद्यालय में सामान्य ज्ञान प्रतियोगिता का आयोजन कराया जाता है जबकि 12% दिव्यांग विद्यार्थियों में इस कथन के लिए असहमति जतायी है। अतः इससे यह स्पष्ट होता है कि विद्यालय में दिव्यांग विद्यार्थियों की उपलब्धि पर ज्यादा ध्यान दिया जाता है।
- 100% सामान्य विद्यार्थी गणित में रुचि रखते है जबकि 76% दिव्यांग विद्यार्थी ही गणित में रुचि रखते है एवं 24% दिव्यांग विद्यार्थियों में गणित के प्रति रुचि कम है। अतः इससे यह स्पष्ट होता है कि विद्यालय में दिव्यांग विद्यार्थियों की गणित विषय में ज्यादा ध्यान नहीं दिया जाता है।
- 68% सामान्य विद्यार्थी एवं 76% दिव्यांग विद्यार्थी मानते है कि विद्यालय में सामान्य विद्यार्थियों के साथ दिव्यांग विद्यार्थियों को शिक्षण कार्य में शामिल होने के लिए बाधा मुक्त परिसर व भवन

है जबकि 32% सामान्य एवं 24% दिव्यांग विद्यार्थियों में इस कथन से असहमति है। अतः इससे यह स्पष्ट होता है कि विद्यालय में सामान्य एवं दिव्यांग दोनों विद्यार्थियों के लिए कक्षा में उचित सुविधाएँ नहीं है।

- 100% सामान्य विद्यार्थी मानते है कि कक्षा–कक्ष में सामाजिक भावना का ज्ञान प्रदान किया जाता है जबकि 88% दिव्यांग विद्यार्थी मानते है कि कक्षा–कक्ष में सामाजिक भावना का ज्ञान प्रदान किया जाता है एवं 12% दिव्यांग विद्यार्थी मानते है कि कक्षा–कक्ष में सामाजिक भावना का ज्ञान प्रदान नहीं किया जाता है। अतः इससे यह स्पष्ट होता है कि विद्यालय में सामान्य विद्यार्थियों को दिव्यांग विद्यार्थियों के प्रति उचित व्यवहार एवं उनके साथ सामंजस्य पूर्ण रहने सम्बन्धित सामाजिक भावना का ज्ञान प्रदान किया जाता है।
- 76% सामान्य विद्यार्थियों के विद्यालयों में नवीन तकनीकियों का ज्ञान कराया जाता है जबकि 24% सामान्य विद्यार्थियों को इस तकनीकी के बारें में जानकारी नहीं है तथा 88% दिव्यांग विद्यार्थी मानते है कि उनको नये तकनीकियों के बारें में जानकारी दी जाती है एवं 12% दिव्यांग विद्यार्थी मानते है कि उनको नये तकनीकियों के बारें में जानकारी नहीं दी जाती है। अतः इससे यह स्पष्ट होता है कि विद्यालय में दिव्यांग विद्यार्थियों को सामान्य विद्यार्थियों की अपेक्षा तकनीकी ज्ञान अधिक प्रदान की जाती है।
- 92% सामान्य विद्यार्थी मानते है कि उनकी कक्षा में दिव्यांग विद्यार्थियों को आगे बैठने का अवसर दिया जाता है जबकि 76% दिव्यांग विद्यार्थी मानते है कि उनको कक्षा में आगे बैठने का अवसर दिया जाता है एवं 24% दिव्यांग विद्यार्थी मानते है कि उनको कक्षा में आगे बैठने का अवसर नहीं दिया जाता है। अतः इससे यह स्पष्ट होता है कि विद्यालय में दिव्यांग विद्यार्थियों की अपेक्षा सामान्य विद्यार्थियों को ज्यादा महत्त्व दिया जाता है।
- 100% सामान्य विद्यार्थी एवं 100% दिव्यांग विद्यार्थी मानते है कि विद्यालय द्वारा उनकी शैक्षिक समस्याओं का निदान किया जाता है। अतः इससे यह स्पष्ट होता है कि विद्यालय द्वारा सामान्य एवं दिव्यांग विद्यार्थियों को समानता प्रदान की जाती है एवं सरकार द्वारा लागू समावेशन शिक्षा अधिनियम को पूर्ण रूप से पालन किया जा रहा है।
- 96% सामान्य विद्यार्थी एवं 88% दिव्यांग विद्यार्थी सहमत है कि अध्यापकों द्वारा आपके शिक्षण कार्य का समय– समय पर मूल्यांकन किया जाता है जबकि 4% सामान्य विद्यार्थी एवं 12% दिव्यांग विद्यार्थी असहमत है कि अध्यापकों द्वारा आपके शिक्षण कार्य का समय–समय पर मूल्यांकन नहीं किया जाता है। अतः इससे यह स्पष्ट होता है कि अध्यापकों द्वारा दिव्यांग विद्यार्थियों की अपेक्षा सामान्य विद्यार्थियों की शिक्षा पर अधिक ध्यान दिया जाता है।
- 92% सामान्य विद्यार्थी एवं 84% दिव्यांग विद्यार्थी विज्ञान में रुचि लेते है जबकि 8% सामान्य विद्यार्थी एवं 16% दिव्यांग विद्यार्थी विज्ञान विषय में रुचि नहीं लेते है। अतः इससे यह स्पष्ट होता है कि अध्यापकों द्वारा दिव्यांग विद्यार्थियों में विज्ञान विषय के प्रति कम ध्यान दिया जाता है एवं विज्ञान विषय के प्रति दिव्यांग विद्यार्थियों को कम प्रोत्साहित किया जाता है।
- 96% सामान्य विद्यार्थियों के अध्यापक द्वारा अभिप्रेरित किया जाता है एवं 80% दिव्यांग विद्यार्थियों को ही अध्यापक द्वारा अभिप्रेरित किया जाता है जबकि 4% सामान्य विद्यार्थी एवं 20% दिव्यांग विद्यार्थी को अध्यापकों द्वारा अभिप्रेरित नहीं किया जाता है। अतः इससे यह स्पष्ट होता है कि विद्यालय में प्रशिक्षित अध्यापकों की कमी के कारण दिव्यांग विद्यार्थियों को कम अभिप्रेरित किया जाता हैं।
- 92% सामान्य विद्यार्थी मानते है कि विद्यालय का शैक्षिक वातावरण स्वस्थ है एवं 80% दिव्यांग विद्यार्थियों का मानना है कि विद्यालय का शैक्षिक वातावरण स्वस्थ है जबकि 8% सामान्य विद्यार्थी एवं 20% दिव्यांग विद्यार्थी इस बात से असहमत है। अतः इससे यह स्पष्ट होता है कि

विद्यालय में शिक्षकों एवं सामान्य विद्यार्थियों द्वारा दिव्यांग विद्यार्थियों के प्रति उचित व्यवहार नहीं किया जाता है।

- 88% सामान्य विद्यार्थी एवं 80% दिव्यांग विद्यार्थियों का मानना है कि शिक्षकों का व्यवहार उनके प्रति सहानुभूति पूर्ण है जबकि 12% सामान्य विद्यार्थी एवं 20% दिव्यांग विद्यार्थी इस बात से असहमत है। अतः इससे यह स्पष्ट होता है कि विद्यालय में शिक्षकों द्वारा दिव्यांग विद्यार्थियों को सहानुभूति एवं उचित दृष्टिकोण से नहीं देखा जाता है।
- 28% सामान्य विद्यार्थियों को अपने विषय वस्तु को समझने में कठिनाई उत्पन्न होती है एवं 20% दिव्यांग विद्यार्थियों को अपने विषय वस्तु को समझने में कठिनाई उत्पन्न होती है तथा 72% सामान्य विद्यार्थी एवं 80% दिव्यांग विद्यार्थियों को अपने विषय वस्तु को समझने में कठिनाई उत्पन्न नहीं होती है। अतः इससे यह स्पष्ट होता है कि सामान्य विद्यार्थियों की अपेक्षा दिव्यांग विद्यार्थी अपने विषय वस्तु को अच्छी तरह समझ लेते हैं।
- 80% सामान्य एवं दिव्यांग विद्यार्थियों का मानना है कि शिक्षक शिक्षाा में आवश्यक प्रगति हेतु समय–समय पर प्रगति रिपोर्ट जानने का प्रयास करते रहते हैं। अतः इससे यह स्पष्ट होता है कि विद्यालय में शिक्षकों द्वारा सामान्य एवं दिव्यांग विद्यार्थियों के प्रति समान एवं उचित दृष्टिकोण रखा जाता है एवं उनकी उपलब्धि के बारें में शिक्षकों द्वारा ध्यान दिया जाता है।
- 92% सामान्य एवं दिव्यांग विद्यार्थियों का मानना है कि शिक्षक कक्षा में उपर्युक्त शिक्षण विधियों का प्रयोग करते है। अतः इससे यह स्पष्ट होता है कि सामान्य एवं दिव्यांग विद्यार्थियों का शिक्षक के शिक्षण विधियों के प्रति समान दृष्टिकोण है एवं विद्यालय में प्रशिक्षित एवं उच्च गुणवत्ता वाले शिक्षकों से शिक्षण कार्यक्रम कराया जाता है।

निष्कर्ष–

प्रस्तुत अध्ययन में निम्नलिखित निष्कर्ष प्राप्त हुये–

- सामान्य छात्र की तुलना में दिव्यांग छात्र अधिक शिक्षण सहायक सामग्री की सहायता से शिक्षा प्राप्त करते है।
- 84 प्रतिशत सामान्य छात्र कक्षा–कक्ष में समायोजन करने में कठिनाई उत्पन्न करते है जबकि 96 प्रतिशत दिव्यांग छात्र कक्षा–कक्ष में समायोजन करने में कठिनाई उत्पन्न करते है।
- सामान्य छात्र 96% ही कक्षा–कक्ष में गुणवत्तापूर्ण शिक्षा प्राप्त करते है जबकि 84% दिव्यांग छात्र कक्षा–कक्ष में गुणवत्तापूर्ण शिक्षा प्राप्त करते है।
- 100% सामान्य छात्र एवं 84% दिव्यांग छात्र के शिक्षक द्वारा शिक्षण कार्य करते समय बीच–बीच में आने वाली कठिन शब्दों, प्रत्ययों का अर्थ समझाने का प्रयास उचित तरीके से किया जाता है।
- 88% सामान्य छात्र अभिभावक–शिक्षण कार्य में सहयोग प्रदान करते है जबकि दिव्यांग छात्रों को 76% अभिभावक शिक्षण कार्य में सहयोग प्रदान करते है।
- दिव्यांग विद्यार्थियों की अपेक्षा सामान्य छात्र की समस्याओं को शिक्षक अधिक गम्भीरता पूर्वक सुनता है।
- सामान्य विद्यार्थियों को दिव्यांग विद्यार्थियों की अपेक्षा विद्यालय में होने वाले शैक्षिक कार्यक्रमों में अधिक अवसर प्राप्त होता है।
- सामान्य विद्यार्थियों को दिव्यांग विद्यार्थियों की अपेक्षा को अध्यापक द्वारा नैतिक ज्ञान अधिक प्रदान की जाती है।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची :

- **सिंह, प्रभात, रघुभा (1992),** सामान्य एवं दिव्यांग बच्चों के समायोजन, क्रोध, पुनर्बलन और स्वसंकल्पना का तुलनात्मक अध्ययन, पी–एच0डी0, शिक्षा, गुजरातः सौराष्ट्र विश्वविद्यालय।
- **साधना पाण्डेय (1993).** अंग्रेजी एवं हिन्दी माध्यम में अध्ययनरत अंर्तमुखी–बर्हिमुखी किशोर छात्र–छात्राओं की समयोजन समस्याओं का अध्ययन, पी–एच.डी. स्रोत कानपुर विश्वविद्यालय।
- **शर्मा, पूनम (1994).** दिव्यांग छात्र–छात्राओं में समयोजन का उनकी बुद्धि के परिप्रेक्ष्य में एक तुलनात्मक अध्ययन, एम0एड0 डिजर्टेशन, आगरा : दयालबाग शिक्षण संस्थान।
- **चौहान, सुमनलता (1996).** बच्चों का मातृत्व भूमिका (स्वीकृत/अस्वीकृत) के प्रति प्रत्यक्षीकरण और उसका समायोजन एवं शैक्षिक उपलब्धि के सम्बन्ध में अध्ययन, पी–एच.डी. स्रोत डी.डब्ल्यू.टी.सी. कानपुर।
- **सिंह, अंकुर (2000).** किशोर छात्र–छात्राओं की शैक्षिक निष्पत्ति एवं समायोजन में उनके आत्मविश्वास की भूमिका, पी–एच.डी. कानपुर : सी0एस0जे0एम0 विश्वविद्यालय ।
- **शर्मा, अरविन्द (2002).** उच्चतर माध्यमिक स्तर के छात्र–छात्राओं की बुद्धिलब्धि, शैक्षिक रुचि, आकांक्षा स्तर एवं पारिवारिक सम्बन्धों से शैक्षिक उपलब्धि का सम्बन्ध; एक तुलनात्मक अध्ययन, पी–एच0डी0 थीसिस, कानपुर : दयानन्द महिला प्रशिक्षण महाविद्यालय।
- **मिश्रा, गगन (2013).** किशोरावस्था के छात्र एवं छात्राओं के संवेगात्मक बुद्धि का उनके समायोजन पर पड़ने वाले प्रभाव का अध्ययन, लघु शोध प्रबन्ध, इलाहाबाद : नेहरु ग्राम भारती विश्वविद्यालय।
- **कुमार, अश्वनी (2013).** हाईस्कूल स्तर के अनुदानित तथा गैर अनुदानित विद्यालयों में अध्ययनरत विद्यार्थियों के मानसिक स्वास्थ्य का अध्ययन, लघु शोध प्रबन्ध, कानपुर : छत्रपति शाहूजी महाराज विश्वविद्यालय।
- **शुक्ला, अनामिका (2011),** ने माध्यमिक के विद्यालयों के मानसिक स्वास्थ्य पर पारिवारिक वातावरण के प्रभाव का अध्ययन, लघु शोध प्रबन्ध, इलाहाबाद : नेहरु ग्राम भारती विश्वविद्यालय।
- **कुमार, राकेश (2013).** दिव्यांग तथा सामान्य विद्यार्थियों के शैक्षिक उपलब्धि पर सामाजिक–आर्थिक स्तर के प्रभाव का अध्ययन, लघु शोध प्रबन्ध, पिलखुवां हापुड़ पंचशील नगर : मोनाड़ विश्वविद्यालय।
- **बरनवाल, नागेश्वरनाथ (2014).** श्रवण बाधित बालकों को शिक्षा में मिलने वाली रियायतों एवं सुविधाओं के प्रति उनके माता–पिता की जागरूकता का अध्ययन, लघु शोध प्रबन्ध, फैजाबाद : डॉ0 राम मनोहर लोहिया अवध विश्वविद्यालय।
- **रंजन, तुषार (2014).** माध्यमिक स्तर के दिव्यांग एवं सामान्य विद्यार्थियों के शैक्षिक अभिप्रेरणा एवं शैक्षिक दुश्चिंता का तुलनात्मक अध्ययन, लघु शोध प्रबन्ध, इलाहाबाद : नेहरु ग्राम भारती विश्वविद्यालय।
- **पाल, जितेन्द्र (2013).** चित्रकूट जनपद में स्थित जे.आर.एच.यू. में व्यावसायिक शिक्षा प्राप्त कर रहे श्रवण बाधित बालकों के शैक्षणिक कार्यक्रम में आने वाली समस्याओं का अध्ययन, लघु शोध प्रबन्ध, इलाहाबाद : नेहरु ग्राम भारती विश्वविद्यालय।

ISSN : 2319-7137, Volume: 15/Issue: 01, January-June : 2022

माध्यमिक स्तर के सरकारी एवं गैर सरकारी सहायता प्राप्त विद्यालयों के शिक्षकों के शिक्षण प्रभावशीलता का तुलनात्मक अध्ययन

शोध निर्देशिका
डॉ0 सुनीता गुप्ता
विभागाध्यक्ष (शिक्षा–संकाय)
राजा श्रीकृष्ण दत्त स्नातकोत्तर
महाविद्यालय, जौनपुर (उ0प्र0)

शोधकर्त्ता
विजय बहादुर यादव
एम0ए0, एम0एड्0, नेट
(शिक्षाशास्त्र)

सारांश

प्रस्तुत अध्ययन **माध्यमिक स्तर के सरकारी एवं गैर सरकारी सहायता प्राप्त विद्यालयों के शिक्षकों के शिक्षण प्रभावशीलता का तुलनात्मक अध्ययन** है। अध्ययन के उद्देश्य में पुरुष एवं महिला का अलग–अलग अध्ययन किया गया है। प्रस्तुत अध्ययन में वर्णनात्मक अनुसंधान के अन्तर्गत सर्वेक्षण विधि का प्रयोग किया गया है। अध्ययन में जनसंख्या के रूप में जौनपुर जनपद में स्थित उन सभी सरकारी एवं गैर सरकारी सहायता प्राप्त माध्यमिक स्तर के विद्यालयों, शिक्षकों एवं अध्ययनरत् विद्यार्थियों को जनसंख्या माना गया। शोध कार्य में प्रतिदर्श चयन विधि के रूप में साधारण यादृच्छिक प्रतिदर्श विधि का प्रयोग करके जौनपुर जनपद के सरकारी, अर्द्धसरकारी एवं गैर सरकारी माध्यमिक स्तर के 40 विद्यालयों (20 सरकारी एवं 20 गैर सरकारी) का चयन किया गया तत्पश्चात् उन विद्यालयों में अध्यापनरत् 200 शिक्षकों (100 सरकारी एवं 100 गैर सरकारी शिक्षक) का चयन स्तरीकृत यादृच्छिक विधि से किया गया है। शिक्षक–प्रभावशीलता शोध को मापने हेतु प्रमोद कुमार एवं डी0एन0 मूथा द्वारा निर्मित– **"शिक्षक प्रभावशीलता मापनी"** का प्रयोग किया गया। अध्ययन में प्रदत्तों के विश्लेषण हेतु मध्यमान, मानक विचलन, मानक त्रुटि एवं टी–अनुपात सांख्यिकी विधियों का प्रयोग किया गया है। अध्ययन के निष्कर्ष में पाया गया कि– सरकारी विद्यालयों के शिक्षकों की प्रभावशीलता गैर सरकारी विद्यालयों के शिक्षकों की तुलना में उच्च पाया जाना इस बात को इंगित करता है कि सरकारी विद्यालयों में कार्यरत शिक्षकों का अनुभव, अध्यापकों की योग्यता, बौद्धिक कुशलता, अध्यापक मनोवृत्ति, अध्ययन क्षमता, मानसिक योग्यता, अध्यापक सामंजस्य, व्यक्तिगत योग्यता, अभिरुचि अध्यापकों का दायित्वबोध हो सकता है। जबकि गैर सरकारी विद्यालयों के कम अनुभव होने के कारण उनकी प्रभावशीलता में कमी होती है वहीं गैर सरकारी विद्यालयों द्वारा केवल पाठ्य–पुस्तकों को पूर्ण कराते हुए बच्चों के उपलब्धि को ही महत्त्व दिया जाता है।

मुख्य शब्द– माध्यमिक स्तर, सरकारी, गैर सरकारी, शिक्षक, शिक्षण प्रभावशीलता

प्रस्तावना–

सम्पूर्ण शिक्षण प्रक्रिया को शिक्षकों की शिक्षण प्रभावशीलता द्वारा समझा जा सकता है। शिक्षकों की शिक्षण प्रभावशीलता द्वारा ये ज्ञात होता है कि शिक्षक कितना उच्च प्रभावपूर्ण है, मध्य प्रभावपूर्ण है अथवा अप्रभावपूर्ण है, जिसका मूल्यांकन शिक्षकों की विभिन्न विशेषताओं गुणों उनके अध्यापन कार्य, पाठ योजना, तैयारी, कक्षा प्रबन्ध विषय–विशेषज्ञता, पारस्परिक सम्बन्ध, शिक्षण परिणामों आदि के आधार पर ज्ञात किया जाता है।

शिक्षण प्रभावोत्पादकता के द्वारा प्रभावपूर्ण आदर्श शिक्षकों व अप्रभावी शिक्षकों का मूल्यांकन किया जाता है। **लाउरा और बेल (2008)** के अनुसार शिक्षकों की प्रभावशीलता में कर्तव्यबोध, कार्य के प्रति लगन, ईमानदारी, योग्यता, व्यवहार, रूचि, आकर्षणत्व, गुण, कक्षा शिक्षण प्रदर्शन व बच्चों की शैक्षिक उपलब्धि आदि शामिल रहती हैं। जो शिक्षक योग्यतानुसार व परिश्रम द्वारा अपने कर्तव्यों का

पालन करता है व योजना के साथ कक्षा शिक्षण करते हुए कक्षा प्रबंधन रखते हैं उनमें विषय योग्यता के साथ–साथ आदर्श व प्रभावी शिक्षण की सभी विशेषतायें विद्यमान होती हैं।

शिक्षक प्रभावशीलता के सन्दर्भ में **फ्लान्डर्स व साइमन** ने कहा है कि शिक्षक प्रभावशीलता शोध का महत्वपूर्ण क्षेत्र है जो कि शिक्षकों की विशेषताओं, उनके अध्यापन कार्य व उनके कक्षा शिक्षण परिणामों पर उनके प्रभाव के मध्य सम्बन्धों से सम्बन्धित है।

शिक्षक प्रभावशीलता को परिभाषित करना दो वजहों से अत्याधिक महत्वपूर्ण है। प्रथमतः जो मापा गया है वह किसका प्रभाव है तथा द्वितीय जो मापा गया है उसका क्या महत्व है। परिभाषायें मापनीय चर का क्षेत्र, विशेषतायें व विस्तार निर्धारित करती हैं। उदाहरणतः यदि नीति–निर्धारक केवल परीक्षा अंकों तक ही अपना ध्यान केंद्रित करें तो संपूर्ण क्रिया मात्र उन्हीं कारकों के आस–पास सिमट जायेगी जिन्हें अंकों द्वारा प्रदर्शित किया जा सकता है परंतु यदि शिक्षक व छात्र के मध्य अंतःक्रिया को भी शामिल कर लिया जाय तो चर्चा का बिन्दु कक्षायें एवं शिक्षकों–छात्रों के मध्य प्रभावी संवाद की स्थितियों का निर्माण भी होगा। कक्षा शिक्षण पर ध्यान जाने से शिक्षण व्यवहार तथा दृष्टिकोण भी विमर्शित होगा।

शिक्षक प्रभावशीलता के सम्प्रत्यय को समय–समय पर उसके द्वारा निभाई जाने वाली भूमिकाओं के सन्दर्भ में तथा साथ ही शिक्षा में हितधारियों द्वारा स्वीकृत विभिन्न परिणामों के सन्दर्भ में अधिक अच्छे तरह से समझा जा सकता है। शिक्षक प्रभावशीलता के आकलन का परम्परागत तरीका छात्रों की औसत अंकीय निष्पत्ति से अधिक अंक अर्जन में उसके द्वारा दिये गये योगदान पर केन्द्रित है। हालांकि कुछ अंशों तक यह ठीक हो सकता है परंतु यह बहुत ही संकुचित दृष्टिकोण है।

फेन्स्टमेचर एवं रिचर्डसन (2005) के अनुसार केवल शिक्षक ही छात्र अधिगम हेतु उत्तरदायी नहीं होता। तार्किक व व्यावहारिक दोनों ही कारणों से यह तथ्य औचित्यपूर्ण प्रतीत नहीं होता। यदि हम छात्र को पूर्णतः निष्क्रिय ग्रहणकर्ता मान ले तो समस्त चिंतन का सार मात्र इतना रह गया है कि सफल शिक्षण मात्र शिक्षक व्यवहार पर निर्भर है तथा छात्र उसकी ओर निर्देशित प्रत्येक ज्ञान को स्वीकार कर लेता है। जबकि वास्तविकता में स्पष्ट रूप से ज्ञात होता है कि अधिगम हेतु अन्य परिस्थितियों का भी योगदान आवश्यक होता है। मात्र अंकीय निष्पत्ति सम्बन्धित दृष्टिकोण शिक्षकों द्वारा समाज, समुदाय विद्यालयों तथा छात्रों की सफलता में अन्य तरीकों से किये गये योगदान सभी की उपेक्षा कर देता है।

केंपबेल, आर.जे. (2003) के अनुसार इस सम्प्रत्यय के प्रति एक अन्य दृष्टिकोण अपनाना भी प्रासंगिक हो सकता है और यह कि इसे पूर्व परिभाषित किया ही न जाये अपितु वास्तविक कार्य स्थितियों में छात्र सम्बन्धी आंकड़ों की उपलब्धता व तकनीकी सम्बद्धता के माध्यम से इसकी पहचान की जाये अर्थात निरन्तर समीक्षात्मक दृष्टिकोण अपनाना।

केंपबेल, आर.जे. (2004) के अनुसार शिक्षक प्रभावशीलता वह प्रभाव है जो कक्षा सम्बन्धी कारकों जैसे शिक्षण विधियों, शिक्षक प्रत्याशाओं, कक्षा संगठन एवं संसाधनों के माध्यम से छात्र की निष्पत्ति पर पड़ता है।

शिक्षक प्रभावशीलता हम सबके लिए कोई नया सम्प्रत्यय नहीं हैं। हम अक्सर सुनते हैं कि अमुक शिक्षक अन्य की अपेक्षा प्रभावशाली है या अमुक शिक्षक अन्य की अपेक्षा कम प्रभावशाली है। इसका अर्थ यह है कि कुछ शिक्षक जो ज्यादा प्रभावशाली हैं, उनमें अन्य की अपेक्षा कार्य करने की योग्यता एवं क्षमता अधिक होती है। वे शिक्षक जो कम प्रभावशाली हैं उनमें उस योग्यता तथा क्षमता की कमी है।

समस्या कथन–

माध्यमिक स्तर के सरकारी एवं गैर सरकारी सहायता प्राप्त विद्यालयों के शिक्षकों के शिक्षण प्रभावशीलता का तुलनात्मक अध्ययन।

अध्ययन का उद्देश्य–

प्रस्तुत अध्ययन में निम्नलिखित उद्देश्यों का निर्माण किया गया है–

1. माध्यमिक स्तर के सरकारी एवं गैर सरकारी सहायता प्राप्त विद्यालयों के पुरुष शिक्षकों के शिक्षण प्रभावशीलता का तुलनात्मक अध्ययन।
2. माध्यमिक स्तर के सरकारी एवं गैर सरकारी सहायता प्राप्त विद्यालयों की महिला शिक्षकों के शिक्षण प्रभावशीलता का तुलनात्मक अध्ययन।

परिकल्पनाएँ–

अध्ययन के उद्देश्यों के आधार पर निम्नलिखित शून्य परिकल्पनाओं का परीक्षण किया गया है–

1. माध्यमिक स्तर के सरकारी एवं गैर सरकारी सहायता प्राप्त विद्यालयों के पुरुष शिक्षकों के शिक्षण प्रभावशीलता में कोई सार्थक अन्तर नहीं है।
2. माध्यमिक स्तर के सरकारी एवं गैर सरकारी सहायता प्राप्त विद्यालयों की महिला शिक्षकों के शिक्षण प्रभावशीलता में कोई सार्थक अन्तर नहीं है।

शोध विधि–

प्रस्तुत अध्ययन में वर्णनात्मक अनुसंधान के अन्तर्गत सर्वेक्षण विधि का प्रयोग किया गया है।

जनसंख्या–

अध्ययन में जनसंख्या के रूप में जौनपुर जनपद में स्थित उन सभी सरकारी एवं गैर सरकारी सहायता प्राप्त माध्यमिक स्तर के विद्यालयों, शिक्षकों एवं अध्ययनरत् विद्यार्थियों को जनसंख्या माना गया।

न्यादर्श–

शोध कार्य में प्रतिदर्श चयन विधि के रूप में साधारण यादृच्छिक प्रतिदर्श विधि का प्रयोग करके जौनपुर जनपद के सरकारी, अर्द्धसरकारी एवं गैर सरकारी माध्यमिक स्तर के 40 विद्यालयों (20 सरकारी एवं 20 गैर सरकारी) का चयन किया गया तत्पश्चात् उन विद्यालयों में अध्यापनरत् 200 शिक्षकों (100 सरकारी एवं 100 गैर सरकारी शिक्षक) का चयन स्तरीकृत यादृच्छिक विधि से किया गया है।

उपकरण

शिक्षक–प्रभावशीलता शोध को मापने हेतु प्रमोद कुमार एवं डी0एन0 मूथा द्वारा निर्मित– **''शिक्षक प्रभावशीलता मापनी''** का प्रयोग किया गया।

सांख्यिकी विश्लेषण–

अध्ययन में प्रदत्तों के विश्लेषण हेतु मध्यमान, मानक विचलन, मानक त्रुटि एवं टी–अनुपात सांख्यिकी विधियों का प्रयोग किया गया है।

सारणी सं0 1

माध्यमिक स्तर के सरकारी एवं गैर सरकारी सहायता प्राप्त विद्यालयों के पुरुष शिक्षकों के शिक्षण प्रभावशीलता का मध्यमान, मानक विचलन एवं टी–मान

क्र0 सं0	संस्था	संख्या (N)	मध्यमान (M)	प्रमाणिक विचलन (S.D.)	मध्यमान का अन्तर $D=(M_1 \sim M_2)$	प्रमाणिक त्रुटि σ_D	टी–मान (t)	सारणी मान
1.	सरकारी	50	287.58	25.26	16.19	3.74	4.33*	1.98 df=98
2.	गैर सरकारी	50	271.39	33.33				

*0.05 सार्थकता स्तर पर सार्थक

व्याख्या–

उपर्युक्त सारणी सं0 1 के अवलोकन से ज्ञात होता है कि माध्यमिक स्तर के सरकारी एवं गैर सरकारी सहायता प्राप्त विद्यालयों के पुरुष शिक्षकों के शिक्षण प्रभावशीलता का मध्यमान क्रमशः 287.58 एवं 271.39 तथा मानक विचलन क्रमशः 25.26 एवं 33.33 है। परिगणित टी–अनुपात का मान 4.33 है। मुक्तांश 98 तथा 0.05 सार्थकता स्तर पर टी–अनुपात का सारणी मान 1.98 है अर्थात् परिगणित टी–अनुपात सारणी मान से अधिक है, अतः कहा जा सकता है कि 0.05 सार्थकता स्तर पर शून्य परिकल्पना निरस्त की जाती है।

प्रस्तुत उद्देश्य की पूर्ति हेतु प्राकल्पित किया गया था कि *माध्यमिक स्तर के सरकारी एवं गैर सरकारी सहायता प्राप्त विद्यालयों के पुरुष शिक्षकों के शिक्षण प्रभावशीलता में अन्तर है* जो कि सार्थकता स्तर 0.05 पर स्वीकृत की जाती है तथा शून्य परिकल्पना *माध्यमिक स्तर के सरकारी एवं गैर सरकारी सहायता प्राप्त विद्यालयों के पुरुष शिक्षकों के शिक्षण प्रभावशीलता में अन्तर नही है,* निरस्त की जाती है तथा परिणामतः कहा जा सकता है कि माध्यमिक स्तर के सरकारी विद्यालयों के पुरुष शिक्षकों के शिक्षण प्रभावशीलता गैर सरकारी विद्यालयों के पुरुष शिक्षकों की अपेक्षा अधिक प्रभावशाली है अर्थात् दोनों में सार्थक अन्तर पाया गया।

आरेख सं0 1

माध्यमिक स्तर के सरकारी एवं गैर सरकारी सहायता प्राप्त विद्यालयों के पुरुष शिक्षकों के शिक्षण प्रभावशीलता के मध्यमानों का आरेखीय चित्र

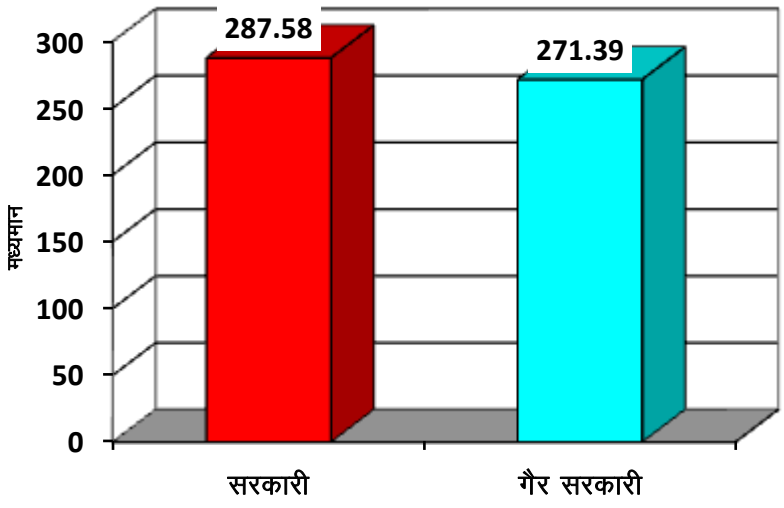

सारणी सं0 2

माध्यमिक स्तर के सरकारी एवं गैर सरकारी सहायता प्राप्त विद्यालयों के महिला शिक्षकों के शिक्षण प्रभावशीलता का मध्यमान, मानक विचलन एवं टी–मान

क्र0 सं0	संस्था	संख्या (N)	मध्यमान (M)	प्रमाणिक विचलन (S.D.)	मध्यमान का अन्तर $D=(M_1 \sim M_2)$	प्रमाणिक त्रुटि σ_D	टी–मान (t)	सारणी मान
1.	सरकारी	50	286.74	32.09	12.80	4.04	3.17*	1.98 df=98
2.	गैर सरकारी	50	274.14	31.82				

*0.05 सार्थकता स्तर पर सार्थक

व्याख्या–

उपर्युक्त सारणी सं0 2 के अवलोकन से ज्ञात होता है कि माध्यमिक स्तर के सरकारी एवं गैर सरकारी सहायता प्राप्त विद्यालयों के महिला शिक्षकों के शिक्षण प्रभावशीलता का मध्यमान क्रमशः 286. 74 एवं 274.14 तथा मानक विचलन क्रमशः 32.09 एवं 31.82 है। परिगणित टी–अनुपात का मान 3.17 है। मुक्तांश 248 तथा 0.05 सार्थकता स्तर पर टी–अनुपात का सारणी मान 1.98 है अर्थात् परिगणित टी–अनुपात सारणी मान से अधिक है, अतः कहा जा सकता है कि 0.05 सार्थकता स्तर पर शून्य परिकल्पना निरस्त की जाती है।

प्रस्तुत उद्देश्य की पूर्ति हेतु प्राकल्पित किया गया था कि *माध्यमिक स्तर के सरकारी एवं गैर सरकारी सहायता प्राप्त विद्यालयों के महिला शिक्षकों के शिक्षण प्रभावशीलता में अन्तर है* जो कि सार्थकता स्तर 0.05 पर स्वीकृत की जाती है तथा शून्य परिकल्पना *माध्यमिक स्तर के सरकारी एवं गैर सरकारी सहायता प्राप्त विद्यालयों के महिला शिक्षकों के शिक्षण प्रभावशीलता में अन्तर नही है,* निरस्त की जाती है तथा परिणामतः कहा जा सकता है कि माध्यमिक स्तर के सरकारी विद्यालयों के महिला शिक्षकों के शिक्षण प्रभावशीलता गैर सरकारी विद्यालयों के महिला शिक्षकों की अपेक्षा अधिक है अर्थात् दोनों में सार्थक अन्तर पाया गया।

आरेख सं0 2

माध्यमिक स्तर के सरकारी एवं गैर सरकारी सहायता प्राप्त विद्यालयों के महिला शिक्षकों के शिक्षण प्रभावशीलता के मध्यमानों का आरेखीय चित्र

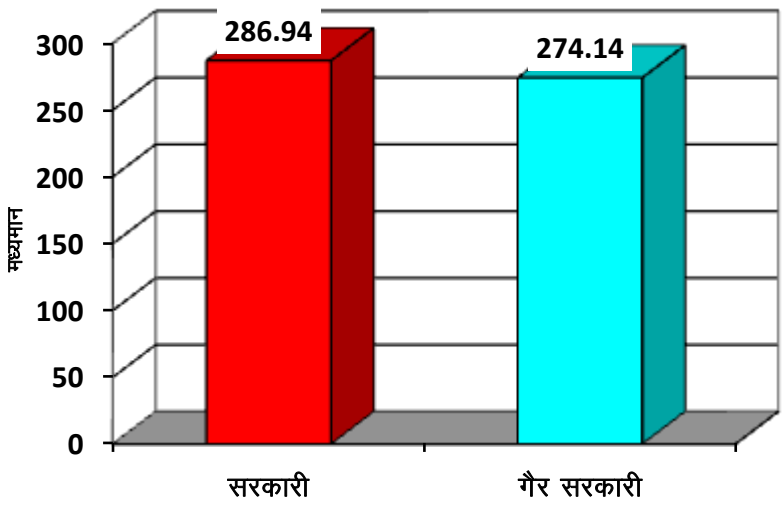

निष्कर्ष–

अध्ययनोपरान्त निम्नलिखित निष्कर्ष प्राप्त हुये–

- माध्यमिक स्तर के सरकारी विद्यालयों के पुरुष शिक्षकों के शिक्षण प्रभावशीलता गैर सरकारी विद्यालयों के पुरुष शिक्षकों की अपेक्षा अधिक प्रभावशाली है अर्थात् दोनों में सार्थक अन्तर है।
- माध्यमिक स्तर के सरकारी विद्यालयों के महिला शिक्षकों के शिक्षण प्रभावशीलता गैर सरकारी विद्यालयों के महिला शिक्षकों की अपेक्षा अधिक है अर्थात् दोनों में सार्थक अन्तर है।

  सरकारी विद्यालयों के शिक्षकों की प्रभावशीलता गैर सरकारी विद्यालयों के शिक्षकों की तुलना में उच्च पाया जाना इस बात को इंगित करता है कि सरकारी विद्यालयों में कार्यरत शिक्षकों का अनुभव, अध्यापकों की योग्यता, बौद्धिक कुशलता, अध्यापक मनोवृत्ति, अध्ययन क्षमता, मानसिक योग्यता, अध्यापक सामंजस्य, व्यक्तिगत योग्यता, अभिरुचि अध्यापकों का दायित्वबोध हो सकता है। जबकि गैर सरकारी विद्यालयों के कम अनुभव होने के कारण उनकी प्रभावशीलता में कमी होती है वहीं गैर सरकारी विद्यालयों द्वारा केवल पाठ्य–पुस्तकों को पूर्ण कराते हुए बच्चों के उपलब्धि को ही महत्त्व दिया जाता है।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

- कुमार, विवेकानन्द एवं नौटियाल, ए0के0 (2019). प्राथमिक स्तर पर कार्यरत टी.ई.टी. उत्तीर्ण एवं गैर टी.ई.टी. शिक्षकों की प्रभावशीलता का अध्ययन, *रिमार्किंग एन एनालाइजेशन*, वॉ0 3, इश्शू–12, पृ0 एच–72 से एच–80
- जायसवाल, वी. व गुप्ता, पी. (2011) नियमित शिक्षक–शिक्षिकाओं व शिक्षामित्रों के मानसिक स्वास्थ्य के सम्बन्ध में उनकी प्रभावशीलता का अध्ययन, *वैश्विक शैक्षिक परिप्रेक्ष्य*, वाल्यूम–1, नम्बर–1 जून 2011, पृष्ठ सं. 31–42.
- डिना, कोडी (2006), टीचिंग इफेक्टिवनेस एण्ड स्टुडेन्ट शेरमैन हिलेन अचिवमेंट इक्जामिंग द रिलेशनशिप, *एजुकेशनल रिसर्च क्वार्टर्ली* 29, पी. 40–51, साइटेड इन गौड़, शोभा (2016). गोरखपुर मण्डल के प्राथमिक विद्यालयों में कार्यरत बी0टी0सी0 एवं विशिष्ट बी0टी0सी0 प्रशिक्षित अध्यापकों की कार्य सन्तुष्टि, प्रभावशीलता एवं समायोजन का तुलनात्मक अध्ययन, *जर्नल ऑफ सोशियो–एजुकेशनल एण्ड कल्चरल रिसर्च*, वॉ0 2, नं0 5, पृ0 163–180
- दास देवेन्द्रा नाथ एण्ड बेहारा एन.पी. (2004) : टीचर इफेक्टिवनेस इन रिलेशन टू दिअर इमोशनल इंटेलीजेन्स, वाल्यूम–XXX, *जर्नल ऑफ इण्डियन एजुकेशन*, एन.सी.ई.आर.टी. पी.पी. 51–61
- दत्त एवं भारद्वाज (2015). मुरादाबाद जनपद के सरकारी प्राथमिक विद्यालयों में बी.टी.सी. शिक्षकों की कार्य सन्तुष्टि, शिक्षक प्रभावशीलता एवं समायोजन का तुलनात्मक अध्ययन, *इण्टरनेशनल जर्नल ऑफ एजुमकेशन एण्ड साइंस रिसर्च*, वॉ0 2, इश्शू–5, पृ0 6–12
- नाथ एवं गिरि (2018). ए कम्प्रेटिव स्टडी ऑफ डिफरेण्ट डाइमेशन्स टीचर्स इफेक्टिवनेस एमंग गर्वनमेण्ट एण्ड प्राइवेट टीचर्स ऑफ सेकेण्डरी स्कूल्स, *इण्टरनेशनल जर्नल ऑफ एडवांसड एजुकेशन एण्ड रिसर्च*, वॉ0 3, इश्शू–3, पृ0 25–27

ISSN : 2319-7137, Volume: 15/Issue: 01, January-June : 2022

जैन साहित्य में योग और उपयोग

डॉ0 अजित कुमार जैन
एम0ए0 (संस्कृत,हिन्दी,अंग्रेजी, अर्थशास्त्र)
आचार्य (जैन दर्शन) एल0एल0बी0, पी–एच.डी.
एसोसियेट प्रोफेसर एवं अध्यक्ष
संस्कृत विभाग– एस0वी0 कॉलेज, अलीगढ़

सामान्यतः योग का अर्थ जोड़ना होता है। दर्शन के क्षेत्र में तन्मय हो जाना, जुड़ जाना, एकाकार हो जाना, उसी रूप हो जाना आदि कहा जा सकता है। आचार्य पतंजलि ने योग दर्शन में कहा–

"योगः चित्तवृत्ति निरोधः"[1]

इसी प्रकार जैन दर्शन में योग के लक्षण संदर्भ में कहा गया है कि आत्मगुणों को विकसित करने के लिए आत्मज्ञान पाने के लिए, आत्मा के मोक्ष प्राप्त्यर्थ क्रमबद्ध प्रयास किया जाना अपेक्षित है। अतः आत्मा के पूर्ण रूप से विशुद्ध हो जाने पर ही मोक्ष पाने की बात संभव दिखती है।

योग का लक्षण : योग शुद्धिकरण करने की प्रक्रिया है। यह शुद्धिकरण मन का, वचन का, शरीर का, त्रिविध किया जाना आवश्यक एवं परमोपादेय है। जैन दर्शन में योग एवं ध्यान के द्वारा मोक्ष मार्ग प्रशस्त होना कहा है। इसके लिए रत्नत्रय– सम्यक् दर्शन, सम्यक् ज्ञान और सम्यक् चारित्र– की आवश्यकता कही है। आचार्य उमा स्वामी ने कहा है –

"सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्राणि मोक्ष मार्गः।"[2]

आचार्य प्रवर ने योग की परिभाषा देते हुए अपना मन्तव्य दिया है–

"कायवाङ्मनःकर्मयोगः।"[3]

अर्थात् शरीर से, वाणी से, मन से, एकाग्र होना योग है। इसी संदर्भ में आचार्य हरिभद्रसूरि ने कहा है –

"मोक्षेण योजनात् योगः।"[4]

अर्थात् आत्मा को मोक्ष के लिए जोड़ देने वाला या योजित कर देने वाला योग है।

यहाँ मेरा अभिमत है कि जैन दर्शन का योग केवल शारीरिक संतुलन तक ही सीमित नहीं है जिसके लिए आसन, व्यायाम आदि उपाय सारभूत हैं किन्तु जैन दर्शन में योग बौद्धिक एवं भावनात्मक स्तर पर संतुलन को भी आवश्यक मानता है।

मानसिक शुद्धिकरण से आसक्ति, मोह, लालसा, लालच आदि के साथ ही अहं के विसर्जन का भाव है। वाचनिक शुद्धिकरण से हित, मित और प्रिय वचन का ग्रहण तथा असत्य, मिथ्या, पापोपदेशी, हिंसात्मक, कटुक, मायाकारी आदि वचनों का नितांत परिहार कहा है। कायिक स्तर पर बाह्य मलों का अभाव परिलक्षित होता है। इस प्रकार सर्वतः संतुलन को योग कहना जैन दर्शन में मान्य किया गया है। यही भाव लगभग महर्षि वेदव्यास ने श्रीमद्भगवद्गीता में कहा है–

"समत्व योगं उच्यते।"[5]

इस संतुलन के प्राप्त होने पर ही इच्छाओं, वासनाओं से मुक्ति होगी। आचार्य ने कहा है कि **"इच्छानिरोधस्तपः"** अर्थात् इच्छाओं को निरोध कर पाना तप की श्रेणी में आयेगा। आचार्य उमा स्वामी ने कहा है–

"तपसा निर्जरा च।"[6]

अर्थात् तपश्चर्या से ही कर्मों की निर्जरा संभव है।

योग के भेदः जैन दर्शन में योग के भेद प्रभेद–वर्गीकरण को अत्यन्त सूक्ष्मरीति से विवेचित किया गया है। कई प्रकार से यह वर्गीकरण प्राप्त होता है। योग के चार भेद हैं–

(1) **भक्ति मार्ग**– तीर्थंकरों, महापुरूषों, बलभद्रों, नारायणों, प्रतिनारायणों तथा 169 पुण्य शलाका पुरूषों के चरित्र का गुणगान करना, उनकी पूजा करना, भक्ति करना श्रद्धा और समर्पण सहित इस कार्य में लगना यह भक्ति मार्ग को प्रशस्त करता है।

(2) **ज्ञान मार्ग**– जैन दर्शन में ज्ञान मीमांसा अत्यन्त वैज्ञानिक रीति से विवेचित की गयी है। पाँच प्रकार के सम्यक् ज्ञान, तीन प्रकार से कुज्ञान कुल आठ प्रकार के ज्ञान इनके भेद–प्रभेद 336 पूर्ण विस्तार से कहे गये हैं। यहाँ प्राथमिक स्तर पर सत्–असत् का निर्णय, मिथ्यात्व और सम्यक्त्व का निर्णय और मैं कौन हूँ? मेरा स्वरूप क्या है? मेरा धर्म क्या है? आदि का विचार कर निर्णय करना और करणीय अकरणीय में हेयोपादेय बुद्धि रखना ज्ञान मार्ग है। जैसा आशाधरजी ने कहा है–

"कोऽहं ? कः मम धर्मः।"[7]

(3) **कर्म मार्ग**– संसारी दशा में चार गति और चौरासी लाख योनियों में जीव का परिभ्रमण अनादिकाल से अनवरत चल रहा है और यह जब तक चलता रहेगा तब तक मोक्ष की प्राप्ति नहीं हो जाती। तब यहाँ विवक्षित है कि प्रत्येक कर्म को कर्त्ता बनकर नहीं करना है अपितु कर्तव्य (धर्म) समझकर करते रहना है।[8] अतः मेरा अभिमत है कि संसार में कार्य करते समय निष्काम भावना से बिना फल पाने की भावना से करना अभीष्ट है। यहाँ अहंकार का त्याग, कर्त्तापने का भाव शून्य होना परमोपादेय है। ऐसा करने से पुनः कर्म संतति प्राप्त नहीं होगी।

(4) **चारित्र मार्ग**– जैन दर्शन मे ंचारित्र मार्ग का धारण करना इसे ग्रहण किये बिना मोक्ष की सिद्धि कदापि संभव नहीं है। स्वामी कार्तिकेय ने कहा है –

"चारित्रम् खलु धम्मो।"[9]

यहाँ केवल दर्शन शुद्ध कर लेने से, वैदिक उद्घोष– **"ऋते ज्ञानान्न मुक्ति"** अर्थात् ज्ञान के बिना मुक्ति नहीं, इससे भी एक कदम आगे बढ़कर आचार्य ने कहा–

"नग्गो वि मोक्ख मग्गो।"[10]

अर्थात् मुनिव्रत (नग्नत्व) धारण किये बिना चारित्र की विशुद्धि और मोक्ष का मार्ग संभव नहीं है। अतः स्वनियंत्रण (यम, नियम, संयम, चारित्र, त्याग, व्रत, उपवास आदि के द्वारा) पाने में समर्थ सक्षम होने पर ही मोक्ष मार्ग प्रशस्त होगा। जैन दर्शन केवल अनुशासन को नहीं किन्तु **स्वानुशासन** को वरीयता देता है। क्योंकि अनुशासन दूसरे के द्वारा थोपा हुआ है और स्वानुशासन स्वप्रवृत्त है। इसके द्वारा ही धर्म के दशों अंग– क्षमा मार्दव आर्जव सत्य शौच संयम तप त्याग आकिंचन ब्रह्मचर्य – प्राप्त कर पाना संभव है।[11]

जैन दर्शन में योग की विवेचना आश्रव के संदर्भ में भी प्राप्त होती है। अतः योग मार्गणा का उल्लेख अन्य विविध मार्गणाओं के बीच प्राप्त है। यहाँ आचार्य ने कहा है – "मन वचन काय के निमित्त से आत्म प्रदेशों में परिस्पंदन होने से (योग) कर्म का आश्रव हो जायेगा।"[12] यहाँ योग के दो भेद कहे हैं– भाव योग व द्रव्य योग।

भाव योग का कोई भेद विवक्षित नहीं है किन्तु द्रव्य योग के तीन भेद हैं–

1– मनोयोग : सत्य/असत्य/उभय/अनुभय – 4 भेद

2– वचन योगः सत्य/असत्य/उभय/अनुभव – 4 भेद

3– काय योगः औदारिक/औदारिक मिश्र/वैक्रियिक/वैक्रियिक मिश्र/

आहारक/आहारक मिश्र/कार्माण का योग – 7 भेद

इस प्रकार कुल मिलाकर 15 उपभेद प्राप्त हैं। यहाँ यह कहना भी समीचीन है कि आत्मा में एक समय में एक ही योग होता है। प्रत्येक समय में योग है।[13]

इनकी प्रकृति की इच्छा से एक विभाजन और भी प्राप्त है। योग के दो भेद हैं–

(1) शुभ योग – यह पुण्याश्रव का कारण है।

(2) अशुभ योग– यह पापाश्रव का कारण है।

जैन दर्शन में उपयोग– चूँकि जैन दर्शन में योग से पूर्व उपयोग की चर्चा अत्यन्त समीचीन है। आचार्य ने जीव का लक्षण करते समय कहा है–

"उपयोगो लक्षणम्"[14]

अर्थात् सभी द्रव्यों में केवल जीवद्रव्य में ही यह लक्षण घटित होता है। इस उपयोग के दो भेद हैं–

(1) दर्शनोपयोग– चक्षु/अचक्षु/अवधि/केवल दर्शन

(2) ज्ञानोपयोग– पाँच सम्यक् ज्ञान– मति/श्रुत/अवधि/मनःपर्यय/केवल ज्ञान

तथा तीन कुज्ञान अर्थात् कुल 8 भेद हैं।

उपयोग का एक विभाजन और भी द्रव्यानुयोग में प्राप्य है। उपयोग के दो भेद हैं–

(1) शुद्धोपयोग– कषाय रहित परिणाम होना शुद्धोपयोग है। 7वें से 12वें

गुणस्थानवर्ती जीवों को शुद्धोपयोग निरन्तर बढ़ता हुआ है। केवल ज्ञान पाना शुद्धोपयोग का फल है।

(2) अशुद्धोपयोग– इसके दो भेद हैं–(क) शुभोपयोग– धर्मानुराग युक्त

परिणाम होना शुभोपयोग है। चौथे से छठवें गुणस्थानवर्ती जीवों के शुभोपयोग है। इसका फल पुण्याश्रव है।

(ख) अशुभोपयोग– विषय कषाय रूप परिणाम होना अशुभोपयोग है। प्रथम से तीसरे गुणस्थानवर्ती जीवों के अशुभोपयोग ही है।[15]

योग की उपादेयता– जैन दर्शन अशुभ की अपेक्षा शुभ और इससे भी आगे बढ़कर शुद्ध पर अधिक बल देता है। आचार्य ने कहा है–

"योग वक्रताविसंवादनं चाशुभस्य नाम्नः"[16]

अर्थात् योगों की वक्रता और विसंवादन से अशुभ नाम कर्म का आश्रव होगा। अतः इससे बचना चाहिए। जैन दर्शन में आश्रव के साथ बंध के कारणभूत भी योग को कहा है। आचार्य ने कहा है–

"मिथ्यादर्शनाविरति प्रमाद कषाय योगाः बंध हेतवः"[17]

यहाँ सारतः मेरा अभिमत है कि योग के लिए प्रतिपल सजग सावधान और अप्रमादी रहना चाहिए। अशुभ का सर्वथा त्याग श्रेयस्कर है। शुभयोग में रहते हुए शुद्ध योग की ओर प्रवृत्त होना जीव के लिए सर्वथा उचित है।

संदर्भ :

1– आचार्य पतंजलि– योग दर्शन

2– आचार्य उमा स्वामी– तत्वार्थ सूत्र/अध्याय–1/सूत्र–1

3– आचार्य उमा स्वामी– तत्वार्थ सूत्र/अध्याय–6/सूत्र–1

4– आचार्य हरिभद्रसूरि – योग दृष्टि समुच्चय

5– महर्षि वेद व्यास– श्रीमद्भगवद्गीता

6– आचार्य उमा स्वामी– तत्वार्थ सूत्र/अध्याय–9/सूत्र–3

7– पंडित आशाधर– सागार धर्मामृतम्

8– आचार्य कुन्दकुन्द स्वामी– समयसार/कर्त्ताधिकार

9– स्वामी कार्तिकेय – कार्तिकेयानुप्रेक्षा, 484

10– आचार्य कुन्दकुन्द स्वामी– अष्ट पाहुड़

11– आचार्य उमा स्वामी– तत्वार्थ सूत्र/अध्याय–9/सूत्र–6

12– ग्रन्थराज धवला– मार्गणा अध्याय

13– नेमिचन्द्राचार्य – गोम्मटसार – जीवकाण्ड

14– आचार्य उमा स्वामी– तत्वार्थ सूत्र/अध्याय–2/सूत्र–8

15– आचार्य कुन्दकुन्द– प्रवचनसार– चारित्राधिकार– 9,11,13,15,70,71–77

16– आचार्य उमा स्वामी– तत्वार्थ सूत्र/अध्याय–6/सूत्र–22

17– आचार्य उमा स्वामी– तत्वार्थ सूत्र/अध्याय–8/सूत्र–1

ISSN : 2319-7137, Volume: 15/Issue: 01, January-June : 2022

भक्ति की अदभुत मूर्ति : मीराबाई

डॉ. मंजू रानी
किरोड़ीमल कॉलेज
दिल्ली विश्वविद्यालय

हिन्दी साहित्य के इतिहास में भक्तिकाल स्वर्णयुग के रूप में जाना जाता है | भक्ति, ज्ञान, साधना, विश्वास आदि गुणों से युक्त यह युग भक्तों और साधकों की वाणियों से महक रहा है | भक्तिकाल की सगुण काव्यधारा में कृष्णभक्ति शाखा में प्रेम की सरिता बहती दिखती है | इस काव्यधारा में भक्त-साधक मीराबाई का काव्य अनूठा है| मीरा में कृष्ण के प्रति भक्ति-भावना का बीजारोपण बाल्यकाल में ही हो गया था। बाल्यावस्था में एक साधु ने मीराबाई को श्रीकृष्ण की एक मूर्ति दी थी , जिसे मीरा सदा अपने साथ रखती थी| विवाह के बाद भी उस मूर्ति को वे अपने साथ चित्तौड ले गयी। ससुराल में अपने घरेलू काम पूरा करने के बाद मीरा रोज श्रीकृष्ण के मंदिर चली जाती और उनकी पूजा करतीं , उनकी मूर्ति के सामने गाती और नृत्य करती। जब मीरा ने ससुराल की कुल-देवी दुर्गा की पूजा करने से मना कर दिया तो परिवारवालों ने उनकी श्रद्धा-भक्ति को मंजूरी नहीं दी। उनपर लांछन लगाए| मीराबाई की ननद उदाबाई ने उन्हें बदनाम करने के लिए उनके खिलाफ एक साजिश रची। उसने राणा को भडकाया कि मीरा का किसी के साथ गुप्त प्रेम है और उसने मीरा को मंदिर में अपने प्रेमी से बात करते देखा है। राणा कुंभा अपनी बहन के कहे अनुसार आधी रात को मंदिर गया | उसने मंदिर का दरवाजा तोड़ दिया और अंदर पहुंचा, जहां उसने देखा कि मीरा अकेले श्रीकृष्ण की मूर्ति के सामने सुख से बैठी मूर्ति से बातें कर रही थी और मस्ती में गा रही थी। राणा को मीरा पर गुस्सा आया ,और वह चिल्लाया – "मीरा, तुम जिस प्रेमी से अभी बातें कर रही हो, उसे मेरे सामने लाओ|"[1]

मीरा ने जवाब दिया – "वह सामने बैठा है , मेरा स्वामी, नैनचोर, जिसने मेरा दिल चुराया है , और वह समाधि में चली गईं।"[2]

इस घटना से राणा कुंभा का दिल टूट गया| हालांकि मीरा को राजगद्दी की कोई चाह नहीं थी, फिर भी राणा के संबंधी मीरा को कई तरीकों से सताने लगे | कृष्ण के प्रति मीरा का प्रेम शुरुआत में बेहद निजी था, लेकिन बाद में कभी-कभी मीरा के मन में प्रेमानंद इतना उमड़ पड़ता था कि वह आम लोगों के सामने और धार्मिक उत्सवों में नाचने-गाने लगती थीं| वे रात में चुपचाप चित्तौड़ के किले से निकल जाती थीं और नगर में चल रहे सत्संग में हिस्सा लेती थीं| मीरा का देवर विक्रमादित्य, जो चित्तौड़गढ़ का नया राजा बना, बहुत कठोर था। मीरा की भक्ति, उनका आम लोगों के साथ घुलना-मिलना और नारी-मर्यादा के प्रति उनकी लापरवाही का उसने कड़ा विरोध किया | उसने मीरा को मारने की कई बार कोशिश की , पर कोई षडयंत्र कामयाब नहीं हुआ| एक बार उसने मीरा के पास फूलों की टोकरी में एक जहरीला सांप रखकर भेजा और

जब मीरा ने टोकरी खोली तो उसमें से फूलों के हार के साथ कृष्ण की एक सुंदर मूर्ति निकली | राणा का तैयार किया हुआ कांटो का बिस्तर बनाया था पर वो भी मीरा के लिए फूलों का सेज बन गया|

ससुराल में श्रीकृष्ण जी का मंदिर बनवाकर वे अपने आराध्य कृष्ण की पूजा-अर्चना करती रही | किन्तु विधवा होने के बाद उनपर विपत्तियों का पहाड़ टूट पड़ा , जिससे उसका मन वैराग्य की ओर उन्मुख हो गया और उनका अधिकांश समय भगवद्-भक्ति और साधु संगति में बीतने लगा | मीरा को भक्तिमार्ग से विमुख करने के लिए उनको ससुरालवालों की ओर से महल की चहारदीवारी में बंद कर अनेक कष्ट दिये गये। ज्यों-ज्यों मीरा को कष्ट दिये गये , त्यों-त्यों उसका लौकिक जीवन से मोह क्षीण होता गया और उनकी कृष्ण-भक्ति के प्रति निष्ठा बढती गयी। अंततः वे ऐसे प्रतिकूल वातावरण को छोडकर मेडता आ गयी और कृष्ण-भक्ति व साधु-संतों की सेवा में लग गयी। बाकी जीवन मीरा ने वृंदावन और द्वारिका में भजन-कीर्तन में बिताया| इस प्रकार मीरा की कृष्ण भक्ति निरंतर दृढ होती गयी तथा वृंदावन व द्वारिका पहुँचने तक तो वह कृष्ण को अपने पति के रूप में स्वीकार कर वे अमर सुहागिन बन गयी|[3]

मीरा वैसे साधू-संतों के वानियाँ सुनती थी , पर वे किसी सम्प्रदाय में दीक्षित नहीं हुई और न ही कोई गुरु बनाया| हालांकि मीरा ने अपने पदों में गुरु के बारे में कहा है कि बिना गुरु धारण किए भक्ति नहीं होती| भक्तिपूर्ण इंसान ही प्रभु प्राप्ति का भेद बता सकता है | वही सच्चा गुरु है| डॉ. नगेन्द्र द्वारा सम्पादित हिंदी साहित्य के इतिहास में भी मीराबाई को संप्रदाय- निरपेक्ष कृष्ण भक्त कवयित्री के रूप में स्थान प्राप्त है।4स्वयं मीरा के पद से पता चलता है कि मीरा ने चाहे रैदास से दीक्षा नहीं ली लेकिन उनहोंने रैदास को ही अपना गुरू माना| मीरा ने गुरु के बारे में कहा है कि बिना गुरु धारण किए भक्ति नहीं होती। भक्तिपूर्ण इंसान ही प्रभु प्राप्ति का भेद बता सकता है। वही सच्चा गुरुहै| स्वयं मीरा के पद से पता चलता है -

“नहिं मैं पीहर सासरे, नहिं पियाजी री साथ
मीरा ने गोबिन्द मिल्या जी, गुरु मिलिया रैदास”[5]

भक्तिकाल में भक्ति को लेकर उसके दो रूप प्रचलित रहे सगुण और निर्गुण ईश्वर के सगुण और साकार रूप की उपासना करने वालों में कृष्णभक्त और रामभक्त कवियों का स्थान आता है और उन्हें कृष्ण-भक्तों में मीरा अनन्य भक्त इन के रूप में जानी जाती हैं | मीरा किसी कृष्ण संप्रदाय से नहीं जुड़ी रहे लेकिन उनकी भक्ति माधुर्य भाव की भक्ति के रूप में जानी जाती है ; लेकिन उनके वाणी में भक्ति के साथ-साथ साधना के स्वर भी अंतरभूत दिखाई देते हैं , इसलिए उन्हें भक्तिन कहें या साधक यह द्वंद्व बना रहता है | अधिकतर विद्वान उन्हें भक्त मीरा के रूप में ही जानते हैं , लेकिन उनकी वाणी में आए साधनात्मक शब्दों और रूपों का यहां उल्लेख और विश्लेषण किया जाएगा , जिससे यह स्पष्ट हो कि मीरा वास्तव में भक्तिन थी या उनमें साधनात्मक भाव भी प्रकार रूप में दिखाई देते हैं|

यदि मीरा के पदों को देखा जाय तो हमें मीरा की काव्य-यात्रा में भक्ति , प्रेम, श्रदधा, तन्मयता, आत्मबोध आदि सब कुछ दिखाई देता है|

"मैं विरहणी बैठी जागूँ,
जग सोवे री आली, दरस बिन दूखण लागे नैण।"[6]

इन पंक्तियों में मीरा का कृष्ण के लिये लालायित रहने का भाव दिखाई देता है|

"पायो जी मैंने नाम रतन धन पायो।
बस्तु अमोलक दी म्हारे सतगुरु, किरपा कर अपनायो।
जनम जनम की पूंजी पाई, जग में सभी खोवायो।
खरचै नहिं कोई चोर न लेवै, दिन-दिन बढ़त सवायो।
सत की नाव खेवहिया सतगुरु, भवसागर तर आयो।
मीरा के प्रभु गिरधर नागर, हरख-हरख जस पायो।"[7]

इन पंक्तियों में उनकी व्यग्रता दिखाई देती है|

"साजन म्हारे घरि आया हो,
जुगा-जुगारी जोवता, विरहणी पिव पाया हो।"[8]

इन पंक्तियों में मीरा के उद्गार प्रसन्नता के सूचक हैं|

"अँसुवन जल सींच-सींच प्रेम बेल बोई,
अब तो बेल फैल गयी आनंद फल होई।"[9]

इन पंक्तियों में मीरा को आत्मबोध हो जाता है|

"मेरे तो गिरिधर गोपाल दूसरो न कोई।
जाके सिर मोर मुकुट मेरो पति सोई।
छांड़ि दई कुल की कानि कहा करै कोई।
संतन ढिग बैठि बैठि लोक लाज खोई।
अंसुवन जल सींचि सींचि प्रेम बेलि बोई।
दधि मथि घृत काढ़ि लियौ डारि दई छोई।
भगत देखि राजी भई, जगत देखि रोई।
दासी मीरा लाल गिरिधर तारो अब मोई।"[10]

इन पंक्तियों के माध्यम से मीरा का अपने प्रियतम से मिलकर एकाकार होने का भाव है।

मीरा की सगुण भक्ति में किसी को कोई संदेह नहीं होता है जहां भी मीरा ने अपने आराध्य गिरधर गोपाल के लिए निर्गुण ब्रह्म का प्रयोग किया है वहां भी उनके आराध्य श्रीकृष्ण का सगुण और साकार रूप ही अभिन्न रूप में संयुक्त दिखाई देता है| वास्तव में अपने प्रियतम के लिए कोई भी संबोधन किया जा सकता है | अतः उसे किसी विशिष्ट अर्थ में नहीं जोड़ना चाहिए | जैसे कबीर ने अपने निर्गुण ब्रह्म के लिए राम , गोपाल, कृष्ण आदि अनेक सगुण नामों का सहारा लिया है ; लेकिन कबीर सगुण उपासक नहीं है | यहां भी इन शब्दों को लेकर मीरा का नाथ पंथ या नाथ संप्रदाय से संबंध जोड़ना निरर्थक है |[11] वे सगुण उपासक हैं

और सगुण उपासना का क्षेत्र अत्यंत व्यापक होता है | कुछ सगुण भक्तों ने अपने आराध्य के गुणगान के लिए ईश्वर के निर्गुण निराकार रूप का प्रयोग किया है | एकांगी निर्गुण उपासना में सगुण ईश्वर के लिए कोई स्थान नहीं होता| ऐसी परिस्थिति में मीरा के शब्द उन्हें चुनौती देते हैं।

मीरा ने "भज मन चरण कमल अविनाशी"[12] कहकर निर्गुण ब्रह्म का उल्लेख किया है तब भी उनकी उपासना सगुण उपासना ही कहलाती है क्योंकि 'चरण कमल' शब्द का प्रयोग कोई सगुण उपासक ही करता है| मीरा के समय भयंकर सामंती व्यवस्था फैली हुई थी| आचार-विचार, रूढ़ियां, परंपराएं, जाति-भेद, वर्ग-भेद, असमानता, नारी शोषण आदि; उन सबसे जूझते हुए मीरा ने विद्रोह का स्वर मुखर रखा और अपने विद्रोही स्वर में मीरा ने कहा है – "झक मारो संसार"[13] तो संसार को झक मारने के लिए जो शब्दावली प्रयोग की है, वह उनकी विद्रोही स्वर की क्षमता है | वास्तव में मीरा स्वयं सामंती परिवेश में पलकर बड़ी हुई| वह ऐसे परिवेश में होने वाली शोषण की स्थिति को समझती थी | अंतःपुर में वह बंधना नहीं चाहती थी इसलिए उन्होंने अपने लिए प्रेम-अनुभूति और भक्ति-भावना को चुना | उनकी भक्ति भावना आज भी अन्य भक्त कवियों में इसी प्रकार प्रेरणा रूप में दिखाई देती है|

वस्तुतः ईश्वर के प्रति प्रेम-रूपा भक्ति को प्राप्त करने के बाद न किसी वस्तु की इच्छा रहती है , न शोक रहता है और न द्वेष रहता है | इसे तो प्राप्त कर मनुष्य उन्मत्त हो जाता है। मीरा ने यही प्रेमा भक्ति पा ली है और मीरा की भक्ति की चरम सीमा भी यही है। संतों में ईश्वर प्राप्ति हेतु अनेक संत और साधक प्रख्यात हैं लेकिन स्त्री साधिका या भक्तिनों में मीरा प्रमुख है। उसका भक्ति से ओत-प्रोत साहित्य अन्य भक्तों का मार्गदर्शन करता है| मीरा के काव्य में सांसारिक बंधनों से मुक्ति एवं ईश्वर के प्रति पूर्ण निष्ठा और समर्पण भाव मिलता है। उसकी दृष्टि में सुख , वैभव, सम्मान, पद आदि मिथ्या हैं | उनकी दृष्टि में केवल गिरधर गोपाल का नाम ही सत्य है | कृष्ण को वे परमात्मा और अविनाशी पुरुष मानती हैं। उसकी भक्ति में ढोंग , आडंबर, रूढ़ियां और मिथ्या मान्यताएँ नहीं हैं| उनका भक्ति-मार्ग अत्यंत सरल, सीधा और भावना युक्त है| वे सदैव अपने गिरधर गोपाल के स्मरण , नृत्य और गायन में मग्न रहती थी। मीरा ने ज्ञान पर उतना बल नहीं दिया जितना भावना और श्रद्धा पर |

मीरा के समय हिन्दू-मुस्लिम संस्कृतियों का संघर्ष , धार्मिक कट्टरता और साम्प्रदायिकता चरम सीमा पर थी। इसलिए उसने वल्लभ संप्रदाय के अनुसार सत्संग तो किया , ज्ञानी एवं योगियों से ज्ञान चर्चा तो की किन्तु किसी सम्प्रदाय में दीक्षित नहीं हुई| डॉ.भगवानदास तिवारी के अनुसार, "मीरा का भक्ति-मार्ग साम्प्रदायिक पगडंडी न होकर स्वतंत्र राजमार्ग था। उसके विचार अतीत और वर्तमान से संबंधित होकर भी मौलिक थे, परंपरा समर्थित होकर भी पूर्णतः स्वतंत्र थे, व्यापक होकर भी सर्वथा व्यक्तिनिष्ठ थे।"[14]

मीरा की भक्ति सगुण थी अथवा निर्गुण , इस संबंध में विद्वानों में बेकार में ही मतभेद हैं। कुछ विद्वानों ने तो यहाँ तक कह दिया है कि मीरा योग अथवा नाथ पंथ से प्रभावित थी। लेकिन मीरा के आराध्य के स्वरूप को लेकर कोई भ्रम नहीं होना चाहिए | मीरा का संपूर्ण प्रेम , साधना और भक्ति सगुण श्रीकृष्ण के प्रति है| जिनका 'गिरधर' नाम ही मीरा को सर्वाधिक प्रिय था। कुछ विद्वानों ने यह प्रश्न किया कि जैसे 'राम' शब्द भक्तों और संतों के संदर्भ में सगुण और निर्गुण दोनों का ही वाचक है , वैसे ही क्या मीरा का

'गिरधर' शब्द भी निर्गुण ब्रह्म का वाचक हो सकता ? किन्तु मीरा ने अपने आराध्य गिरधर के सगुण स्वरूप का वर्णन किया है और श्रीकृष्ण को और भी अनेक संज्ञाओं से नेवाज़ा है |[15] जैसे वे गिरधर को नंदलाल कहती हैं -

"बसो मेरे नैनन में नंदलाल।
मोहिनी मूरति सांवरी सूरति, नैना बने विसाल।
अधर सुधारस मुरली, राजति, उर वैजंती माल।।"[16]

वस्तुतः सगुण भक्त जब भावविभोर होता है तो वह निर्गुण ईश्वर की उपासना करने वाला दिखने लगता है| इसी प्रकार निर्गुण उपासक जब भावविभोर होता है तो वह सगुण ईश्वर की उपासना करने वाला दिखने लगता है|

"म्हारो घर रमतो ही जोगिया तू आवाँ।
कानाँ बिच कुंडल गले बिच सेली, अंग भभूत रमाय।
तुम देख्या बिन कल न पड़त है, ग्रिह अँगणों न सुहाय|
मीराँ के प्रभु हरि अविनाशी, दरसण धौन मौकूँ आय|"[17]

इसी क्रम में मीरा ने जब अपने आराध्य श्रीकृष्ण की वन्दना करती हैं तब वे भावविभोर होकर अपने आराध्य को 'अविनाशी' शब्द से संबोधित करती हैं|

मीरा के पदों में उनका उपास्य देव सगुण रूप में चित्रित हुआ है। वह सगुण- साकार गिरधर की उपासिका हैं-

"वस्याँ म्हारे णेणण मा नंदलाल।
मोर मुकुट मकराकृति कुंडल अरुण तिलक सोहाँ भाल।
मोहन मूरत साँवराँ सूरत णेण बीण्या विशाल।
अधर सुधा रस मुरली राजाँ उर बैजंति माल।
मीराँ प्रभु संताँ सुखदायाँ, भक्त बछल गोपाल।"[18]

डॉ. भगवान सहाय श्रीवास्तव के अनुसार "कृष्ण-भक्तों में मीरा भी एक प्रमुख नाम है। उनकी भक्तिमय जीवन की धारा किन-किन मोड़ों से निकलकर अपने आराध्य में विलीन हो गई उसका एक संपूर्ण चित्र इस लेख में प्रस्तुत किया गया है। कृष्ण भक्ति की अनन्य प्रेम-भावनाओं में अपने गिरधर के प्रेम में रंग राती मीरा का दर्द भरा स्वर अपनी अलग पहचान रखता है | समस्त भारत उस दर्द दीवानी की माधुर्य भक्ति से ओत-प्रोत रससिक्त वाणी से आप्लावित है।"[19]

मीरा आध्यात्मिक दृष्टि से श्रीकृष्ण को अपना पति मानती है | वे अपने कृष्ण प्रेम की दीवानी हैं | उन्होंने अपनी इस भक्ति की प्रेम-बेलि को आंसुओं के जल से सींचा है|

"म्हां-गिरधर रंगराती
पंचरंग चोला पहेरया, सखि म्हां झरमट खेलण जाति|"[20]

श्रीकृष्ण के प्रति उनकी भक्ति-भावना एकनिष्ठरूपा है-

"मेरे तो गिरधर गोपाल दूसरो न कोई।
जाके सिर मोर मुकट मेरो पति सोई॥"[21]

गिरधर की भक्ति में मीरा जिस स्थिति से गुजर रही थीं और उनके साथ जो भी हो रहा था , वह बहुत वास्तविक लगता था, लेकिन उनके पति को कुछ भी नजर नहीं आता था। वह इतना निराश हो गया कि एक दिन उसने खुद को नीले रंग से पोत लिया , कृष्ण की भांति पोशाक पहनकर मीरा के पास आया। दुर्भाग्य से उसने गलत तरह के रंग का इस्तेमाल कर लिया , जिसकी वजह से उसे एलर्जी हो गई और शरीर पर चकत्ते निकल आए| अर्थात मीरा को धोखा देकर भी धोखा नहीं दे सका | मीरा के दुःख का कारण केवल उसका पति ही नहीं था पति के मरने के बाद मीरा पर व्यभिचार का आरोप लगाया गया। उन दिनों व्यभिचार के लिए मत्युदंड दिया जाता था , पर मीरा का कुछ न बिगड़ा | इस तरह की कई घटनाएं हुईं | दरअसल भक्ति ऐसी चीज है, जो व्यक्ति को खुद से भी खाली कर देती है|

आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी इस सन्दर्भ में अपने विचार प्रस्तुत करते हुए कहते है कि "मीराँबाई अत्यंत उदार मनोभावनापन्न भक्त थीं| उन्हें किसी पंथ-विशेष पर आग्रह नहीं था | जहाँ कहीं भी उन्हें भक्ति या चारित्र्य मिला है वहीँ उन्होंने उसे सिर माथे चढ़ाया है |"[22] डॉ कृष्णलाल ने अपेक्षाकृत अधिक व्यापक दृष्टीकोण अपनाते हुए मीराँ के पदों का विश्लेषण कर उनमें सूर , तुलसी, कबीर, विद्यापति, चंडीदास, नाथपंथ आदि की विशेषताओं को देखते हुए यह निष्कर्ष दिया है की मीराँबाई के पदों में उस युग की सभी भावनाओं की अत्यंत सुन्दर व्यंजना मिल जाती है|"[23]

वस्तुतः जब मैं भक्ति की बात कहती हूं तो मैं किसी मत या धारणा में विश्वास की बात नहीं करती हूँ| मेरा अभिप्राय पूरे भरोसे और आस्था के साथ आगे बढ़ने से है। तो सवाल उठता है , कि मैं भरोसा कैसे करूं? मैं भरोसा किस पर करूं? अगर आप शान्ति और आराम से बैठे हैं तो यह भी ईश्वर का भरोसा ही है | हम सब और आप अनजाने में बिना प्रेम-भाव के कर रहे हैं | यह भी भरोसा है| यही भक्ति है| यह सृष्टि जैसी है, उसपर वैसे ही भरोसा करते हुए अगर आपने जागरुकता और प्रेम के साथ यहां बैठना सीख लिया , तो यही भक्ति है| भक्ति कोई मत या मान्यता नहीं है| भक्ति इस अस्तित्व में होने का सबसे खूबसूरत तरीका है| मीरा ऐसी ही भक्ति भावना से स्नात दिखती हैं | रामचंद्र शुक्ल जी लिखते है- "मीराँबाई की उपासना 'माधुर्य' भाव की थी अर्थात् वे अपने ईष्ट देव श्री कृष्ण की भावना प्रियतम या पति के रूप में करती थीं। "[24] परशुराम चतुर्वेदी तथा विश्वनाथ त्रिपाठी मीरा के निर्गुणोपासना सम्बन्धी पदों को प्रमाणिक मानते हुए भी उन्हें सगुणोपासक भक्त मानते है। 'मीराबाई की पदावली ' में परशुराम चतुर्वेदी जी लिखते हैं- "मीराँबाई द्वारा किए गये इष्टदेव के निर्गुण मत निरूपण तथा उसकी प्राप्ति के लए प्रयोग में आने वाली चारित्रिक साधनाओं के आधार पर कुछ लोग उन्हें संतमत की अनुयायिनी मान लेना चाहते हैं ; किन्तु ऐसा कहना

उचित नहीं जान पड़ता। मीराँ ने अपने अनेक पदों में अविनाशी हरी , कृष्ण को ही परम ऐश्वर्यशाली एवं लीलामय भगवान् के रूप में अंकित किया है।"[25]

मीरा ने अनेक पदों व गीतों की रचना की। उनके पदों में उच्च आध्यात्मिक अनुभव हैं। उनमें दिए गए संदेश और अन्य संतों की शिक्षाओं में समानता नजर आती है। उनके पद उनकी आध्यात्मिक उंचाई के अनुभवों का आईना है|

मीरा के पदों में भावनाओं की मार्मिक अभिव्यक्ति के साथ-साथ प्रेम की ओजस्वी धारा और वियोग की पीड़ा का मर्मभेदी वर्णन मिलता है। उन्हें चाहे भक्तिन कहें , साधिका कहें लेकिन वस्तुतः वे प्रेम की साक्षात् मूर्ति हैं | मीरा के बराबर शायद ही कोई भक्त-कवि हो|

संदर्भ :-

1. रेणु बाला, मीराबाई एवं उनकी काव्य कृतियाँ , शोध पत्र, IJRRA, वोल 2, ISSUE 1, मार्च, 2015
2. वही
3. रामकिशोर शर्मा और सुजीत कुमार शर्मा , मीराबाई की सम्पूर्ण पदावली , लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, 2016
4. हिन्दी साहित्य का इतिहास, सम्पादक डॉ नगेन्द्र, हरदयाल, ने. प. हाउस, दिल्ली, 1998
5. रामकिशोर शर्मा और सुजीत कुमार शर्मा , मीराबाई की सम्पूर्ण पदावली , लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, 2016
6. वही
7. वही
8. वही
9. वही
10. वही
11. डॉ भगवती उपाध्याय, मीराबाई की भक्ति का स्वर और उसका ऐतिहासिक विश्लेषण, शोध प्रबंध, बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय, 1982
12. मीराँबाई की पदावली: परशुराम चतुर्वेदी, हिंदी साहित्य सम्मेलन प्रयाग, 1989
13. वही
14. डॉ. भगवान सहाय श्रीवास्तव, मीरा की भक्ति भावना, लेख, फ्यूचर समाचार, फरवरी, 2011
15. भगवानदास तिवारी, मीरा की भक्ति और उनकी काव्य साधना का अनुशीलन , शोध प्रबंध, सागर विश्वविद्यालय, 1962

16. मीराँबाई की पदावली: परशुराम चतुर्वेदी, हिंदी साहित्य सम्मेलन प्रयाग, 1989
17. वही
18. वही
19. डॉ. भगवान सहाय श्रीवास्तव, मीरा की भक्ति भावना, लेख, फ्यूचर समाचार, फरवरी, 2011
20. मीराँबाई की पदावली: परशुराम चतुर्वेदी, हिंदी साहित्य सम्मेलन प्रयाग, 1989
21. वही
22. हिंदी साहित्य उद्भव और विकास, आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी, कपूर एंड संस, दिल्ली 1988
23. मीराँबाई, कृष्णलाल, संस्करण 2006, पृष्ठ (94-95)
24. हिंदी साहित्य का इतिहास: आ. रामचन्द्र शुक्ल, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, 2012
25. मीराँबाई की पदावली: परशुराम चतुर्वेदी, हिंदी साहित्य सम्मेलन प्रयाग, 1989

ISSN : 2319-7137, Volume: 15/Issue: 01, January-June : 2022

अनिवार्य प्राथमिक शिक्षा के लिए किये गये सरकारी एवं निजी प्रयासों के प्रति शिक्षकों एवं अभिभावकों के अभिवृत्ति का अध्ययन

शोध निर्देशक
डॉ0 अरुण कुमार मिश्र
असिस्टेन्ट प्रोफेसर
शिक्षक शिक्षा विभाग
नेहरू ग्राम भारती (मानित विश्वविद्यालय),
प्रयागराज

शोधार्थी
अच्युत कुमार यादव
शिक्षाशास्त्र
शिक्षक शिक्षा विभाग
नेहरू ग्राम भारती (मानित विश्वविद्यालय),
प्रयागराज

सारांश

प्रस्तुत विषय में अनिवार्य प्राथमिक शिक्षा के लिए किये गये सरकारी एवं निजी प्रयासों के प्रति शिक्षकों एवं अभिभावकों के अभिवृत्ति का अध्ययन किया गया है। प्रस्तुत अध्ययन में वर्णनात्मक अनुसंधान के अन्तर्गत सर्वेक्षण विधि का प्रयोग किया गया है। अध्ययन में उत्तर प्रदेश राज्य के प्रयागराज जनपद में स्थित प्राथमिक विद्यालयों में अध्यापनरत् शिक्षकों एवं अध्ययनरत् विद्यार्थियों के अभिभावकों को जनसंख्या में सम्मलित किया गया है। न्यादर्श के रूप में यादृच्छिक न्यादर्शन विधि द्वारा 100 शिक्षकों (50 सरकारी एवं 50 गैर सरकारी) तथा 100 अभिभावक (50 सरकारी एवं 50 गैर सरकारी) के रूप में सम्मिलित किया गया है। उपकरण के रूप में अनिवार्य प्राथमिक शिक्षा के लिए सरकारी प्रयासों के प्रति की अभिवृत्ति सम्बन्धी उपकरण तथा अनिवार्य प्राथमिक शिक्षा के लिए निजी संस्थाओं की भूमिका के प्रति की अभिवृत्ति सम्बन्धी मानकीकृत उपकरण उपलब्ध न होने के कारण शोधकर्ता द्वारा अपने पर्यवेक्षक की सहायता से स्वनिर्मित मापनी का निर्माण किया गया। आँकड़ों के विश्लेषण हेतु टी–अनुपात सांख्यिकी विधि का प्रयोग किया गया है। अध्ययन के निष्कर्ष में पाया गया कि– सरकारी विद्यालयों के शिक्षकों की अभिवृत्ति 'अनिवार्य प्राथमिक शिक्षा'' के लिए किये गये सरकारी प्रयासों के प्रति गैर सरकारी शिक्षकों की अभिवृत्ति की अपेक्षा उच्च है। 'अनिवार्य प्राथमिक शिक्षा'' के लिए किये गये सरकारी प्रयासों के प्रति सरकारी एवं निजी संस्थानों में अध्ययनरत बच्चों के अभिभावकों की अभिवृत्ति में समानता है। 'अनिवार्य प्राथमिक शिक्षा'' के लिए निजी संस्थानों द्वारा किये गये प्रयासों के प्रति सरकारी एवं गैर सरकारी शिक्षकों की अभिवृत्ति में समानता है। 'अनिवार्य प्राथमिक शिक्षा'' के लिए निजी संस्थानों द्वारा किये गये प्रयासों के प्रति सरकारी एवं निजी संस्थानों में अध्ययनरत बच्चों के अभिभावकों की अभिवृत्ति में अन्तर है।

मुख्य शब्द– अनिवार्य प्राथमिक शिक्षा, सरकारी, निजी विद्यालय, शिक्षक, अभिभावक, अभिवृत्ति

प्रस्तावना–

वर्तमान आधुनिक समाज में शिक्षा को मानव अस्मिता एवं गरिमा सुनिश्चित करने का महत्त्वपूर्ण साधन माना गया है। शिक्षा के माध्यम से न केवल व्यक्तिगत वरन् सामाजिक, राष्ट्रीय एवं अंतर्राष्ट्रीय विकास भी अपने सर्वश्रेष्ठ स्वरूप में संभव हुए हैं। विकास के अनेक कार्यक्रमों व योजनाओं का केन्द्रीय घटक शिक्षा है जो विकास की धुरी है। शिक्षा की प्रथम सीढ़ी है 'प्राथमिक शिक्षा'। स्पष्ट है कि प्राथमिक शिक्षा का विकास करके ही समाज का विकास किया जा सकता है। जनसंख्या में निरन्तर वृद्धि तथा शिक्षा के प्रति रूचि के कारण समाज के सभी वर्गों में शिक्षा की मांग बढ़ रही है। राज्यसभा में 28 जुलाई 1997 में संविधान के 83वें संशोधन विधेयक के अनुसार शिक्षा को मौलिक अधिकार माना गया है अतः शिक्षा की मांग की आपूर्ति एक सामाजिक एवं राजकीय जिम्मेदारी है। अतः इसका ज्ञान प्राप्त करना आवश्यक हो जाता है कि शिक्षा की बढ़ती हुई मांग को पूरा करने के लिए सरकार

क्या–क्या प्रयास कर रही है। राष्ट्रीय समिति की सिफारिशों के आधार पर सर्व शिक्षा अभियान की योजना शुरू हुई जिसका उद्देश्य सभी को प्राथमिक शिक्षा तथा सन् 2010 की पूर्ण विद्यालयी शिक्षा उपलब्ध कराना रहा है। अतः यह जानना आवश्यक है कि प्राथमिक शिक्षा के लिए यह योजना कहां तक अपने उद्देश्यों को पूर्ण कर पायी है। अनिवार्य प्राथमिक शिक्षा के लिए सरकार एवं गैर सरकारी संगठनों द्वारा अनेक ऐसे कदम उठाए गए हैं जिससे लगता है कि भारत सबके लिए शिक्षा उपलब्ध कराने में समर्थ होगा। प्राथमिक शिक्षा के लिए निर्धारित लक्ष्यों को प्राप्त करने हेतु सरकार निरन्तर प्रयत्नशील है फिर भी ऐसी परिस्थिति में अन्य विकासशील देशों की तुलना में प्राथमिक शिक्षा के क्षेत्र में हमारी स्थिति बहुत दयनीय है अतः यह देखना आवश्यक हो जाता है कि अनिवार्य प्राथमिक शिक्षा के विकास में ऐसे कौन कौन से तत्व बाधक हैं? क्या कारण है कि बच्चे बीच में ही पढ़ाई छोड़ देते हैं? गांव में कुछ ऐसे भी बच्चे हैं जो निर्धारित समय से अधिक समय में अपनी आरंभिक शिक्षा पूर्ण करते हैं। क्या अब भी प्राथमिक स्कूलों में उपयुक्त सुविधाओं, प्रशिक्षित शिक्षकों की पर्याप्त संख्या, उपयुक्त शिक्षण विधियों तथा उपयोगी पाठ्यचर्या का अभाव है? इसके लिए सरकार प्रयास कर रही है। विश्व के लगभग सभी देशों में शिक्षा के संवर्द्धन हेतु जोर–शोर से प्रयास किए जा रहे हैं। भारत भी इन प्रयासों से अछूता नहीं है। इस हेतु विभिन्न कार्यक्रम एवं योजनाएँ चलायी जा रही हैं, जिनसे भारत संपूर्ण साक्षर देश बन सके। ये प्रयास भारत के प्रायः सभी राज्यों में किये जा रहे हैं परन्तु उत्तर प्रदेश राज्य आर्थिक दृष्टि एवं साक्षरता की दृष्टि से अभी भी अन्य राज्यों से पिछड़ा हुआ है। सम्पूर्ण साक्षरता को प्राप्त करने के लिए सरकार अनेक कार्यक्रमों जैसे सर्वशिक्षा अभियान, महिला समाख्या योजना, शिक्षामित्र योजना आदि को संचालित कर रही है। इन परियोजनाओं को राष्ट्रीय स्तर, राज्य स्तर, जिला स्तर, ग्राम एवं ब्लॉक स्तर में विभाजित कर दिया गया है, जिससे स्थानीय स्वयं सेवी संस्थाओं सहित सभी लोगों को प्रेरित किया जा सके और स्थानीय रूप से सुसंगठित कार्यनीतियाँ बनायी जा सके।

अतः अध्ययन में अनिवार्य प्राथमिक शिक्षा के लिए किये गये सरकारी एवं निजी प्रयासों के प्रति शिक्षकों एवं अभिभावकों के अभिवृत्ति के बारें में जानकारी प्राप्त करने हेतु किया गया है।

समस्या कथन–

अनिवार्य प्राथमिक शिक्षा के लिए किये गये सरकारी एवं निजी प्रयासों के प्रति शिक्षकों एवं अभिभावकों के अभिवृत्ति का अध्ययन।

अध्ययन का उद्देश्य–

- अनिवार्य प्राथमिक शिक्षा के लिए किये गये सरकारी प्रयासों के प्रति सरकारी एवं गैर सरकारी शिक्षकों की अभिवृत्ति का तुलनात्मक अध्ययन करना।
- अनिवार्य प्राथमिक शिक्षा के लिए किये गये सरकारी प्रयासों के प्रति सरकारी एवं निजी संस्थानों में अध्ययनरत बच्चों के अभिभावकों की अभिवृत्ति का तुलनात्मक अध्ययन करना।
- अनिवार्य प्राथमिक शिक्षा के लिए निजी संस्थानों द्वारा किये गये प्रयासों के प्रति सरकारी एवं गैर सरकारी शिक्षकों की अभिवृत्ति का तुलनात्मक अध्ययन करना।
- अनिवार्य प्राथमिक शिक्षा के लिए निजी संस्थानों द्वारा किये गये प्रयासों के प्रति सरकारी एवं निजी संस्थानों में अध्ययनरत बच्चों के अभिभावकों की अभिवृत्ति का तुलनात्मक अध्ययन करना।

अध्ययन की परिकल्पनाएँ–

H_{01} अनिवार्य प्राथमिक शिक्षा के लिए किये गये सरकारी प्रयासों के प्रति सरकारी एवं गैर सरकारी शिक्षकों की अभिवृत्ति में कोई सार्थक अन्तर नहीं है।

H_{02} अनिवार्य प्राथमिक शिक्षा के लिए किये गये सरकारी प्रयासों के प्रति सरकारी एवं निजी संस्थानों में अध्ययनरत बच्चों के अभिभावकों की अभिवृत्ति में कोई सार्थक अन्तर नहीं है।

H_{03} अनिवार्य प्राथमिक शिक्षा के लिए निजी संस्थानों द्वारा किये गये प्रयासों के प्रति सरकारी एवं गैर सरकारी शिक्षकों की अभिवृत्ति में कोई सार्थक अन्तर नहीं है।

H_{04} अनिवार्य प्राथमिक शिक्षा के लिए निजी संस्थानों द्वारा किये गये प्रयासों के प्रति सरकारी एवं निजी संस्थानों में अध्ययनरत बच्चों के अभिभावकों की अभिवृत्ति में कोई सार्थक अन्तर नहीं है।

शोध–प्रविधि–

प्रस्तुत अध्ययन में वर्णनात्मक अनुसंधान के अन्तर्गत सर्वेक्षण विधि का प्रयोग किया गया है। अध्ययन में उत्तर प्रदेश राज्य के प्रयागराज जनपद में स्थित प्राथमिक विद्यालयों में अध्यापनरत् शिक्षकों एवं अध्ययनरत् विद्यार्थियों के अभिभावकों को जनसंख्या में सम्मलित किया गया है। न्यादर्श के रूप में यादृच्छिक न्यादर्शन विधि द्वारा 100 शिक्षकों (50 सरकारी एवं 50 गैर सरकारी) तथा 100 अभिभावक (50 सरकारी एवं 50 गैर सरकारी) के रूप में सम्मिलित किया गया है। उपकरण के रूप में अनिवार्य प्राथमिक शिक्षा के लिए सरकारी प्रयासों के प्रति की अभिवृत्ति सम्बन्धी उपकरण तथा अनिवार्य प्राथमिक शिक्षा के लिए निजी संस्थाओं की भूमिका के प्रति की अभिवृत्ति सम्बन्धी मानकीकृत उपकरण उपलब्ध न होने के कारण शोधकर्ता द्वारा अपने पर्यवेक्षक की सहायता से स्वनिर्मित मापनी का निर्माण किया गया। आँकड़ों के विश्लेषण हेतु टी–अनुपात सांख्यिकी विधि का प्रयोग किया गया है।

आँकड़ों का विश्लेषण एवं व्याख्या–

उद्देश्य–1 अनिवार्य प्राथमिक शिक्षा के लिए किये गये सरकारी प्रयासों के प्रति सरकारी एवं गैर सरकारी शिक्षकों की अभिवृत्ति का तुलनात्मक अध्ययन–

H_{01} **अनिवार्य प्राथमिक शिक्षा के लिए किये गये सरकारी प्रयासों के प्रति सरकारी एवं गैर सरकारी शिक्षकों की अभिवृत्ति में कोई सार्थक अन्तर नहीं है।**

सारणी सं0 1

क्रमांक	सरकारी शिक्षक (50)		गैर सरकारी शिक्षक (50)		M_1-M_2	σ_D	t-value
	M	SD	M	SD			
1	145.00	11.65	138.04	13.63	7.96	2.54	3.13

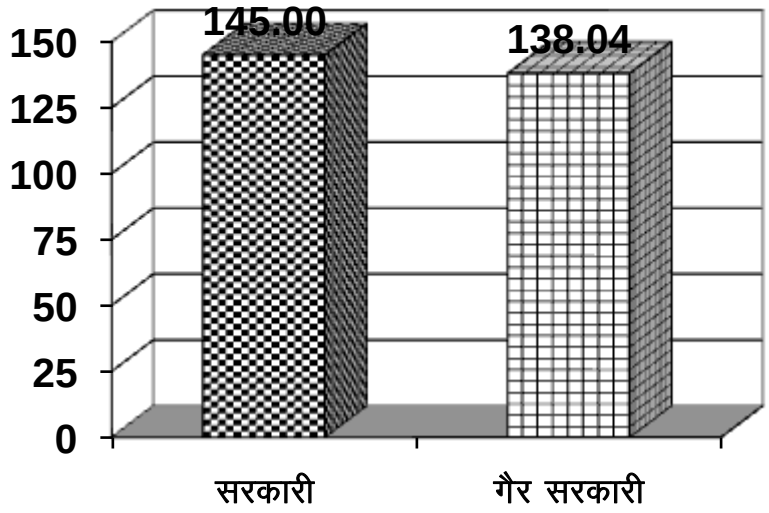

t का परिकलित मूल्य 3.13 है जो कि सार्थकता स्तर 0.05 तथा मुक्तांश 98 पर t के सारणी मान 1.98 से अधिक है अर्थात् मध्यामानों के बीच अन्तर सार्थक है। अतः शून्य परिकल्पना अस्वीकृत तथा शोध परिकल्पना स्वीकृत होती है अर्थात अनिवार्य प्राथमिक शिक्षा के लिए किये गये सरकारी प्रयासों के प्रति सरकारी एवं गैर सरकारी शिक्षकों की अभिवृत्ति में अन्तर है।

उद्देश्य–2 अनिवार्य प्राथमिक शिक्षा के लिए किये गये सरकारी प्रयासों के प्रति सरकारी एवं निजी संस्थानों में अध्ययनरत बच्चों के अभिभावकों की अभिवृत्ति का तुलनात्मक अध्ययन–

H_{02} **अनिवार्य प्राथमिक शिक्षा के लिए किये गये सरकारी प्रयासों के प्रति सरकारी एवं निजी संस्थानों में अध्ययनरत बच्चों के अभिभावकों की अभिवृत्ति में कोई सार्थक अन्तर नहीं है।**

सारणी सं0 2

क्रमांक	सरकारी संस्थानों के बच्चों के अभिभावक (50)		निजी संस्थानों के बच्चों के अभिभावक (50)		M_1-M_2	σ_D	t-value
	M	SD	M	SD			
1	137.60	12.62	134.56	12.70	3.04	2.53	1.20

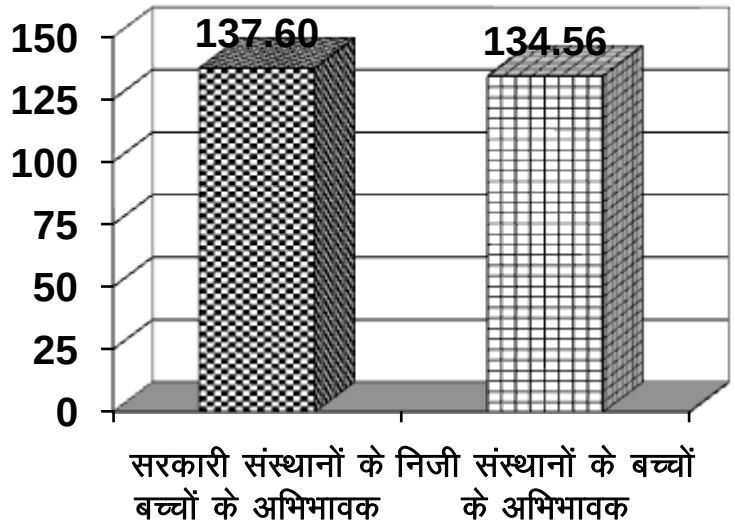

t का परिकलित मूल्य 1.20 है जो कि सार्थकता स्तर 0.05 तथा मुक्तांश 98 पर t के सारणी मान 1.98 से कम है अर्थात् मध्यामानों के बीच अन्तर असार्थक है। अतः शून्य परिकल्पना स्वीकृत तथा शोध परिकल्पना अस्वीकृत होती है अर्थात अनिवार्य प्राथमिक शिक्षा के लिए किये गये सरकारी प्रयासों के प्रति सरकारी एवं निजी संस्थानों में अध्ययनरत बच्चों के अभिभावकों की अभिवृत्ति में अन्तर नहीं है।

उद्देश्य–3 अनिवार्य प्राथमिक शिक्षा के लिए निजी संस्थानों द्वारा किये गये प्रयासों के प्रति सरकारी एवं गैर सरकारी शिक्षकों की अभिवृत्ति का तुलनात्मक अध्ययन –

H_{03} **अनिवार्य प्राथमिक शिक्षा के लिए निजी संस्थानों द्वारा किये गये प्रयासों के प्रति सरकारी एवं गैर सरकारी शिक्षकों की अभिवृत्ति में कोई सार्थक अन्तर नहीं है।**

सारणी सं0 3

क्रमांक	सरकारी शिक्षक (50)		निजी संस्थानों के शिक्षक (50)		M_1-M_2	σ_D	t-value
	M	SD	M	SD			
1	145.66	9.77	148.50	12.19	2.84	2.21	1.29

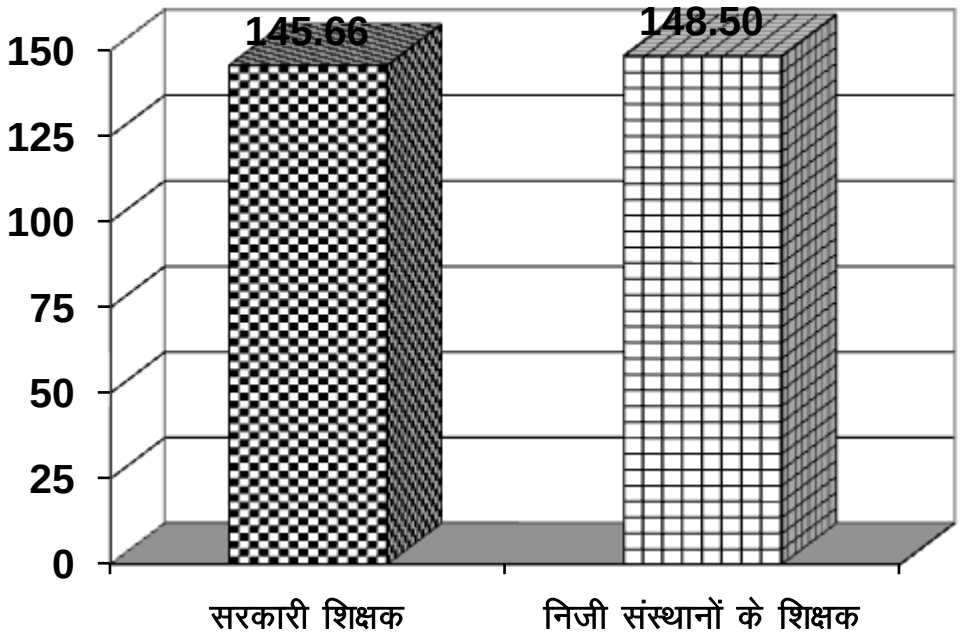

t का परिकलित मूल्य 1.29 है जो कि सार्थकता स्तर 0.05 तथा मुक्तांश 98 पर t के सारणी मान 1.98 से कम है अर्थात् मध्यामानों के बीच अन्तर असार्थक है। अतः शून्य परिकल्पना स्वीकृत तथा शोध परिकल्पना अस्वीकृत होती है अर्थात अनिवार्य प्राथमिक शिक्षा के लिए निजी संस्थानों द्वारा किये गये प्रयासों के प्रति सरकारी एवं गैर सरकारी शिक्षकों की अभिवृत्ति में अन्तर नहीं है।

उद्देश्य–4 **अनिवार्य प्राथमिक शिक्षा के लिए निजी संस्थानों द्वारा किये गये प्रयासों के प्रति सरकारी एवं निजी संस्थानों में अध्ययनरत बच्चों के अभिभावकों की अभिवृत्ति का तुलनात्मक अध्ययन –**

H_{04} **अनिवार्य प्राथमिक शिक्षा के लिए निजी संस्थानों द्वारा किये गये प्रयासों के प्रति सरकारी एवं निजी संस्थानों में अध्ययनरत बच्चों के अभिभावकों की अभिवृत्ति में कोई सार्थक अन्तर नहीं है।**

सारणी सं0 4

क्रमांक	सरकारी संस्थानों के बच्चों के अभिभावक (50)		निजी संस्थानों के बच्चों के अभिभावक (50)		M_1-M_2	σ_D	t-value
	M	SD	M	SD			
1	129.72	12.46	140.56	12.55	10.84	2.50	4.34

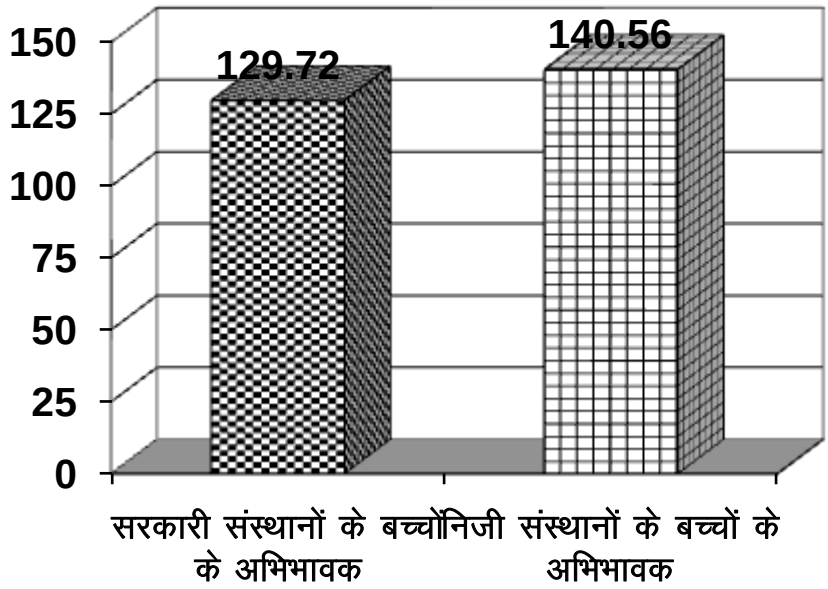

t का परिकलित मूल्य 4.34 है जो कि सार्थकता स्तर 0.05 तथा मुक्तांश 98 पर t के सारणी मान 1.98 से अधिक है अर्थात् मध्यामानों के बीच अन्तर सार्थक है। अतः शून्य परिकल्पना अस्वीकृत तथा शोध परिकल्पना स्वीकृत होती है अर्थात अनिवार्य प्राथमिक शिक्षा के लिए निजी संस्थानों द्वारा किये गये प्रयासों के प्रति सरकारी एवं निजी संस्थानों में अध्ययनरत बच्चों के अभिभावकों की अभिवृत्ति में अन्तर है।

निष्कर्ष–

- सरकारी विद्यालयों के शिक्षकों की अभिवृत्ति 'अनिवार्य प्राथमिक शिक्षा'' के लिए किये गये सरकारी प्रयासों के प्रति गैर सरकारी शिक्षकों की अभिवृत्ति की अपेक्षा उच्च है।
- 'अनिवार्य प्राथमिक शिक्षा'' के लिए किये गये सरकारी प्रयासों के प्रति सरकारी एवं निजी संस्थानों में अध्ययनरत बच्चों के अभिभावकों की अभिवृत्ति में समानता है।
- 'अनिवार्य प्राथमिक शिक्षा'' के लिए निजी संस्थानों द्वारा किये गये प्रयासों के प्रति सरकारी एवं गैर सरकारी शिक्षकों की अभिवृत्ति में समानता है।
- 'अनिवार्य प्राथमिक शिक्षा'' के लिए निजी संस्थानों द्वारा किये गये प्रयासों के प्रति सरकारी एवं निजी संस्थानों में अध्ययनरत बच्चों के अभिभावकों की अभिवृत्ति में अन्तर है।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

- अनुज कुमार, (2010). 21वीं सदी में उच्च शिक्षा की चुनौतियाँ ; भारतीय आधुनिक शिक्षा, *N.C.E.R.T* नई दिल्ली, वर्ष 31(1).
- अनुज सिंह (2004). माध्यमिक स्तर के वित्तपोषित एवं स्ववित्तपोषित विद्यार्थियों की मूल अधिकारों सम्बन्धी जागरूकता, लघु शोध प्रबन्ध, वीर बहादुर सिंह पूर्वाचल विश्वविद्यालय जौनपुर।
- उपाध्याय, मनोज कुमार (2011). ग्रामीण स्तर पर अनिवार्य प्राथमिक शिक्षा के लिए किये गये सरकारी प्रयासो का समीक्षात्मक अध्ययन, लघु शोध प्रबन्ध, डॉ0 राममनोहर लोहिया विश्वविद्यालय, फैजाबाद।
- बिन्द, यमुना प्रसाद (2020). आरक्षित वर्ग की प्राथमिक शिक्षा के लिए किये गये संवैधानिक प्रयासों का अध्ययन, लघु शोध प्रबन्ध, हण्डिया पी0जी0 कालेज, हण्डिया, प्रयागराज।
- मिश्र, विजय लक्ष्मी (2017). अल्पसंख्यक, पिछड़े एवं अनुसूचित वर्ग के अभिभावकों की बालिका शिक्षा के प्रति मतकोण का तुलनात्मक अध्ययन, *पेरियाडिक रिसर्च*, वॉ0 6, इश्शू–2, पृ0 83–87
- मिश्रा, श्रुति (2017). प्राथमिक शिक्षा में गुणवत्ता संवर्धन हेतु राज्य सरकार एवं केन्द्र सरकार की भूमिका का समीक्षात्मक अध्ययन, लघु शोध प्रबन्ध, नेहरू ग्राम भारती विश्वविद्यालय, इलाहाबाद।
- सिंह, वन्दना (2015). वर्तमान परिप्रेक्ष्य में समावेशी शिक्षा का प्राथमिक शिक्षा पर पड़ने वाले प्रभाव का अध्ययन, लघु शोध प्रबन्ध, महात्मा गाँधी काशी विद्यापीठ, वाराणसी।

ISSN : 2319-7137, Volume: 15/Issue: 01, January-June : 2022

हिन्दी उपन्यास का परिचय एवं सामाजिक चेतना भूमि

सन्तोष कुमार

शोध छात्र

हिन्दी विभाग

कूबा स्नातकोत्तर महाविद्यालय दरियापुर नेवादा, आजमगढ़

उपन्यास का सामान्य अर्थ है 'सामने रखना ' इसमें प्रसादन / प्रसन्न करने का भाव निहित रहता है। किसी घटना को इस तरह सामने रखा जाय कि उससे दूसरे को प्रसन्नता हो तो उपन्यस्त करना कहा जायेगा। उपन्यास लोक जीवन की व्यापक अपेक्षाओं के दबाव में साहित्यिक विधा के रूप में अस्तित्व में आया। इसे आधुनिक लोक जीवन का महाकाव्य कहा जाता है। इसकी शुरूआत हमारे आख्यान साहित्य से ही हो गयी थी। ऐतिहासिक व सांस्कृतिक पृष्ठभूमि वाले उपन्यास का संकेत संस्कृत के आख्यानों में मिलते हैं। यह जरूर है कि मध्यवर्गीय समाज की आवश्यकताओं व आकांक्षाओं ने अपने आस – पास के जीवन को अंकित करनें में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। अनुकूल परिस्थितियां पाकर इसका विकास भारतेन्दु युग से ही हो गया। उपन्यास के बारे में लिखा है **'यह शब्द उप (समीप) तथा न्यास (थाती) के योग से बना है जिसका अर्थ हुआ (मनुष्य के) निकट रखी हुई वस्तु अर्थात वह वस्तु या कृति जिसको पढ़कर ऐसा लगे कि यह हमारी ही है। इसमें हमारे ही जीवन का प्रतिबिम्ब है इसमे हमारी ही कथा हमारी ही भाषा में कही गयी है।'**[1]

इसके सन्दर्भ में मुंशी प्रेमचन्द का मानना है **' मै उपन्यास को मानव चरित्र का चित्र मात्र समझता हूँ। मानव चरित्र पर प्रकाश डालना और उसके रहस्यों को खोलना ही उपन्यास का मूलतत्व है।'**[2] सबका निहितार्थ यही है कि उपन्यास में ऐसे चरित्र हो जो पाठक को सम्मोहित कर ले, इसमे अपने आस–पास के चरित्र रहने चाहिए जो सद्व्यवहार एवं सद्विचार से सजीव चित्रण प्रस्तुत कर सके।

हिन्दी उपन्यासों में सामाजिक चेतना की शुरूआत तो हिन्दी के प्रथम उपन्यास श्रद्वाराम फुल्लौरी द्वारा लिखित उपन्सास 'भाग्यवती' (1877) से ही हो जाती है। ये शुरूआती उपन्यास आर्यसमाज व सनातनधर्मी सिद्वान्तों के इर्द–गिर्द लिखे गये थे। ये सब उपन्यास समाज को दिशा देने के लिए लिखे गये थे। हलाकि यह उपन्यास छोटा था लेकिन शुरूआती दौर के हिसाब से बहुत ठीक था। बांग्ला में सामाजिक उपन्यास पहले से था लेकिन हिन्दी में यह प्रथम था क्योंकि भारतेन्दु जी ने **'पूर्ण प्रकाश ' और 'चन्द्रप्रभा' नामक उपन्यास का बांग्ला से हिन्दी में अनुवाद कराया था। भारतेन्दु युगीन सुधारवादी आग्रहों के अनुकूल ही इसमें एक ओर यदि बृद्व विवाह के दोषों का उद्घाटन किया गया था तो वही इस समस्या के निदान के रूप में लड़कियों की शिक्षा पर बल दिया गया था। मध्यवर्ग के पढ़े– लिखे लोग नव विकसित गद्य रूप (उपन्यास) के पाठक रहे हैं और उन्हीं में से कुछ अपने या अपने आस–पास के जीवन को अंकित करने की लालसा से उत्प्रेरित होकर ही उसमे रचनात्मक हस्तक्षेप की दिशा में अग्रसर हुए है।'**[3]

'भाग्यवती' मे फुल्लौरी जी ने बालविवाह का विरोध, विधवा विवाह की स्वीकृति, विवाह मे फिजूल खर्ची के स्थान का सादगी पर बल दिया गया है। फुल्लौरी जी सनातन धर्मी ब्राह्मण होते हुए भी व्याख्यान और कथाओं के माध्यम से धार्मिक आडम्बरों, सामाजिक कुरीतियों, रूढ़िगत अंधविश्वासों के विरूद्व संघर्ष किये। विवाह में दहेज, आतिशबाजी जैसे फिजूलखर्ची के विरोधी थे, इन्होने अवैज्ञानिक

विवेकरहित कर्मकांडो का विरोध किया। इनके उपन्यास की नायिका भाग्यवती सद्व्यवहार व सेवा के बल पर भारतीय स्त्री के लिए आदर्श प्रस्तुत करती है।

'गबन' में मुंशी प्रेमचन्द जी ने फिजूलखर्ची के दुष्परिणामों को उद्घाटित किया है। **'एक शिक्षित व गुणवती स्त्री अपने मायके और ससुराल दोनो ही परिवारों में कैसे उजाला कर सकती है। जो भी उसके सम्पर्क में आता वह पहले की अपेक्षा बेहतर बन कर निकलता है, अपनी शिक्षा के कारण वह अनेक प्रकार की सामाजिक कुरीतियों पाखण्ड और अंधविश्वासों से स्वयं बचती व दूसरे को भी बचाती भी है।'**[4]

शिक्षा के बल पर 'अलका' का विजय 'कुल्लीभाट' का कुल्ली 'निरूपमा' का निरू भी सामाजिक परिवर्तन करने की बात करते हैं।

इसके बाद अग्रेजी ढंग का प्रथम मौलिक उपन्यास लाला श्रीनिवास दास कृत 'परीक्षा गुरू' (1882) में लिखा गया है। इसमें श्रीनिवास दास जी अपने समकालीन मध्यवर्गीय समाज और सम्पूर्ण देश–दशा का परिचय दिया है। नायक मदन मोहन नव शिक्षित मध्यवर्ग की कमजोरियों का मूर्तिमान रूप है, इसमें निजी व वास्तविक लगने वाली घटना का वर्णन है। चरित्रों का क्रमिक विकास न दिखाकर उन्हें अपनी मानवीय दुर्बलताओं एवं सबलताओं से संयुक्त कर हमारे जाने पहचाने जीते जागते मनुष्य के रूप में प्रस्तुत किया है। समाज के बीच ही मनुष्य के जीवनानुभव का विस्तार होता है इससे उसमें प्रौढ़ता या परिपक्वता आती है। यौवनावेग व स्वार्थी लोगो के वशीभूत आदमी सही रास्ते से वंचित हो जाता है। यही ठोकरें ही उसका गुरू बनती है।

ब्रजकिशोर विकासोन्मुख मध्यवर्ग के दृष्टिकोण को प्रस्तुत करता है। वह स्वदेशाभिमानी के साथ– साथ देश की दशा से भी परिचित है। ब्रिटिश शासन के लोग इतने पीड़ित थे कि प्रत्यक्ष रूप से स्वदेश व स्वराज्य की बात नहीं कर सकते थे, ऐसे समय इस उपन्यास में एकता अखण्डता की बात की गयी है। वह एकता के पक्ष में है। दुःख या ठोकरें ही आदमी की परीक्षा लेते है। यह सदियों से देखते आ रहे हैं, यह सामाजिक सत्य भी है।

एकता में विघटन से ही देश का नुकसान होता है। उन्नीसवी सदी में जब हमारे देश में राष्ट्रीयता के बीज अभी पृष्टभूमि मे थे ऐसे में एकता की बात की आवश्यकता थी। अकर्मण्यता के कारण ही देश की उन्नति नहीं हो पा रही थी। भारतेन्दु हरिश्चन्द जी भी अकर्मण्ता को ही देश की उन्नति की सबसे बड़ी बाधा बताते है। आरम्भिक उपन्यासों का मुख्य प्रेरक तत्व समाज सुधार की भावना थी। परीक्षा गुरू को सब मिलाकर नीतिपरक और उपदेशात्मक उपन्यास कहा जाता है जो कि समाज के विकास के लिए अति आवश्यक है। इसमें कुसंगतग्रस्त युवक मदनमोहन को केन्द्र में रखकर समाज के ऐसे चरित्रों की तरफ संकेत किया है। **'पिता से विरासत में मिली अकूत सम्पति व व्यवसाय को संभालकर रख पाने की क्षमता उसमें नही है मित्रों और चापलूसों से घिरकर वह उस सम्पति को नष्ट कर देता है। अहंकार और मिथ्या प्रदर्शन उसके चरित्र में घुसी बुराइयॉ है। उसकी दरबारी करने वाले, खुशामदी मुसाहिब उसे लूटकर अपना घर भरने लगते है, इसी सारे लोगों के बीच व्रजकिशोर (वकील) उसका वास्तविक मित्र व हितैषी है लेकिन कुसंगति की पट्टी बंधी होने के कारण मदनमोहन उसके महत्व को नहीं पहचान पाता है।'**[5]

इसके अतिरिक्त अन्य उपन्यासकार भी जो सामाजिक पृष्ठभूमि तैयार करने में मुख्य थे। जैसे बालकृष्ण भट्ट की 'रहस्य कथा' 1879, 'नूतन ब्रह्मचारी' 1886, 'सौ अजान एक सुजान' 1892। इन्होंने सामाजिक यथार्थों व समाज में व्याप्त कुरीतियों को व्यंग्य के रूप में चित्रण किया है। समाज में पसन्द के अनुरूप मनोरंजक व असरकारी बनाने के लिए भट्ट जी ने उपन्यासों में श्लोक व उर्दू के शेर भी डाल दिये है। आधुनिक काल की शुरूआत में शेर खूब पसन्द किये जाते थे इसलिये भट्ट जी ने इसका सहारा लिया ताकि एक बड़ा सहृदयी पाठक वर्ग तैयार हो जाय और समाज को दिशा दे। पाठक वर्ग को या देश की जनता को क्या चीज पसन्द है इसका अंदाजा भट्ट जी को अच्छे तरीके से था। 'सौ अजान एक सुजान' उपन्यास नीतिपरक एवं उपदेशात्मक है। चरित्र निर्माण पर बल दिया गया है। पं0 चन्द्रशेखर नामक जो सदाचारी विद्वान शिक्षक थे वे एक युवक को कुसंगत व दुर्गुण से बचाकर

सुमार्ग पर लाने का कार्य करते है। समाज निर्माण का उपन्यास 'नूतन ब्रह्मचारी' में भी ब्रिटिश प्रभाव की जगह भारतीय परम्परा को अपनाने की बात कही गयी है।

इसी कड़ी में दूसरे उपन्यास लेखक राधाकृष्ण दास का 'निस्सहाय हिन्दू' 1890 में लिखा है। इसकी पृष्ठभूमि काशी है। इन्होने इसमें मध्यकाल के दुस्साहसी शासकों की खराब नीति व कुशासन का उद्घाटन किया है। वे बताते है कि मध्यकालीन शासकों ने कट्टरता के बल पर समाज के दो मुख्य समुदायों (हिन्दू–मुसलमान) में आपसी बैर उत्पन्न करके शासन किया। उस बैर भाव को अब समाज नकार कर हिन्दू– मुसलमान में मित्रता के रूप में स्थापित किया।

इसमें सन्देश दिया कि दोनो वर्गो में आपसी सौहार्द बना रहना चाहिए ताकि एकता बनाकर देश की स्वत्रंत्रता में सहायक बन सके। सनातन हिन्दू धर्म के सहारे साम्प्रदायिक सौहार्द या सद्भाव बनाने का रास्ता बताया गया है। गोवध की समस्या को उठाया गया है, सामान्य रूप से समाज और धर्म का मामला मिला जुला रहता है। समाज में धार्मिक आडम्बर व ढोंग चलते रहते है। यही समस्याये तो उपन्यास की विषयवस्तु बनती है। इसमें नैतिक आग्रह का दबाव बना रहता है। यह समाज में अतिआवश्यक है। संस्कारों का निर्माण करना सामाजिक उपन्यासों का लक्ष्य रहता है।

लज्जाराम शर्मा का उपन्यास 'धूर्त–रसिक लाल' 1890 में मित्रघात व विश्वासघात का वर्णन है। किसी के घर को कलंकित करके आगे नहीं बढ़ा जा सकता है। 'स्वतंत्र रमा परतंत्र लक्ष्मी' 1899 में तो दो परस्पर सभ्यताओं (रमा–पश्चिमी सभ्यता –लक्ष्मी भारतीय सभ्यता) की समीक्षा है। 'आदर्श दम्पति' 1904 में भी समाज की कुरीतियों पर प्रकाश डाला गया है । यह स्त्रियों की असुरक्षा से सम्बन्धित है।

इन सभी उपन्यासों का लक्ष्य सामाजिक कुरीतियो, कमियों, विकृतियों, अन्यायों, अग्रेजी शिक्षा व सभ्यता के दुष्परिणामों का विरोध करना था। लेखकों ने उस परतंत्रता के समय में भी भारत के समाज को एक नई दिशा देने का काम किया। उस समय कुछ सामाजिक संगठन थे जो समाज मे चेतना या जागरूकता का सन्देश प्रचारित कर रहे थे। उन्हीं संस्थाओं में राजाराम मोहन राय द्वारा स्थापित ब्रह्मसमाज, स्वामी दयानन्द सरस्वती द्वारा स्थापित संस्था व गोविन्द रानाडे द्वारा स्थापित प्रार्थना समाज कुछ जादा ही महत्वपूर्ण थे। सामाजिक उपन्यास जन साधरण में ज्यादा प्रचलित हो जाते है क्योकि उसमें समाज की समस्याओं का ही वर्णन रहता है । ग्रामीण समाज की समस्या को उठाया गया है।

किशोरी लाल गोस्वामी (1865–1932) ने समाज में मानवीय प्रेम के विभिन्न पहलुओं को बड़े सहज ढंग से प्रस्तुत किया है। उस समय समाज सुधार की लहर चल रही थी। किसी भी राष्ट्र के स्वरूप और संस्कृति को निश्चित और सुसंगठित दिशा व दशा देने के लिए स्वस्थ समाज की जरूरत होती है। स्वस्थ समाज के एक दूसरे से सम्पर्क बनाने में साहित्य की भूमिका महत्वपूर्ण होती है। बिना समाज के कोई साहित्य नही हो सकता है। और बिना साहित्य के समाज का अस्तित्व खतरे में रहता है। तत्कालीन भारत में राष्ट्रीय जागरण की पृष्ठभूमि तैयार करना था इसी कारण सभी की समस्याओं को सुना गया और उन्हें एक धारा में लाने का प्रयास किया गया। सामाजिक सुधार आन्दोलन 1820 के दशक से ही चल रहे थे। उसी सुधारवादी जीवन दृष्टि का ही परिणाम इन सब उपन्यासों में दिखाई पड़ता है। गोस्वामी जी ने अपने उपन्यासों में सहज भाषा के माध्यम से सामाजिक पाखण्ड का उद्घाटन किया है। समाज में नैतिक यौनभावना को इन्होने अपने उपन्यास में स्वीकार किया।

किशोरीलाल गोस्वामी, लज्जाराम शर्मा आदि लेखकों ने समाज को नैतिक दृष्टि देने का काम किया। सती साध्वी देवियों के आदर्श प्रेम के साथ अवैध प्रेम, विधवाओं के व्यापार, वैश्याओं के कुत्सित जीवन, देवदासियों की विनाशलीला आदि का चित्रण किया गया है। लेखकों का उद्देश्य सकारात्मक रहा है। इन सब नारकीय दूषित जीवन के गलत परिणाम को दिखाकर उच्च नैतिक जीवन स्थापित करने का काम किया है। अपने राष्ट्र के प्रति चेतना जागरित करके समाज में राष्ट्र भक्ति की भावना भरने का प्रयास किया गया है। मानवीय प्रेम के विविध पक्षों का उद्घाटन किया गया क्योंकि अभी यथार्थ से सम्बन्धित वातावरण नहीं हो पाया था। इन्हीं सब उपन्यासों ने आगे के उपन्यास के लिए पृष्ठभूमि तैयार किया। जीवन के वास्तविक समस्या को केन्द्र में रखा गया है।

समाज के रीति–रिवाजों से ही सामाजिक शिष्टाचार व नियम रूथापित किये जाते थे। इन सब सामाजिक रीति–रिवाजों को उपन्यासों के माध्यम से प्रसारित व प्रचारित किया जाता था। शुरूआती उपन्यासों में पात्रों का चरित्र पहले निश्चित होता था, घटनाओं या समाज को वह अपने चरित्र से प्रभावित करता था। लेखक अपने सामाजिक दृष्टिकोण को व्यंगात्मक उपन्यास के माध्यम से या यौनभावना वाले उपन्यास के माध्यम से आगे बढ़ाता है। समाज को केन्द्र में रखे बिना किसी भी उपन्यास या साहित्य की कल्पना करना कठिन है। पात्रों के आपसी भावों व विचारों के माध्यम से साजाजिक सद्भाव को किस तरह स्थापित किया गया है इसे 'निःसहाय हिन्दू' उपन्यास में भी बड़ी आसानी से देखा जा सकता है। यही सब उपन्यास प्रेमचन्द युग के लिए सामाजिकता–पारिवारिकता की व्यापक पृष्ठभूमि तैयार किये थे। उपन्यास धीरे–धीरे राष्ट्रीय स्वाधीन चेतना का सहचर बनने के लिए तैयार हो रहा था जिसे साम्राज्यवादी व सामन्तवादी शक्तियों की कमियों को उजागर करना था।

उन्नीसवीं सदी के मध्य से ही भारत में निर्णायक परिवर्तन हो रहे थे। विदेशी साम्राज्यवादी बाधाओं के बावजूद भी देशी पूजीवाद उदित हो रहा था। समाज की प्रवृत्तियों व परिस्थितियों का उल्लेख करने से उपन्यास में ताजगी आ जाती है। सहृदय पाठक अपने आस–पास के परिवेश व गतिविधियों को बड़ी तल्लीनता से जानना चाहता है। उपन्यास में उसकी जिज्ञासा पूरी हो जाती है।

सन्दर्भ सूची :

1. हिन्दी साहित्य कोश 1 : सम्पादक धीरेन्द्र वर्मा, ज्ञानमण्डल लिमिटेड वाराणसी, पृष्ठ–121
2. साहित्य उद्देश्य : प्रेमचन्द भार्गव प्रेस इलाहाबाद प्रथम संस्करण 1954, पृष्ठ–54
3. हिन्दी उपन्यास का विकास : मधुरेश चतुर्थ संस्करण 2008, लोक भारती प्रकाशन इलाहाबाद, पृष्ठ–11,12
4. हिन्दी उपन्यास का विकास : मधुरेश चतुर्थ संस्करण 2008, लोक भारती प्रकाशन इलाहाबाद, पृष्ठ–17
5. हिन्दी उपन्यास का विकास : मधुरेश चतुर्थ संस्करण 2008, लोक भारती प्रकाशन इलाहाबाद, पृष्ठ–13

ISSN : 2319-7137, Volume: 15/Issue: 01, January-June : 2022

महिला सशक्तिकरण पर वित्तीय समावेशन में प्रधानमंत्री जनधन योजना के प्रभाव का अध्ययनः छत्तीसगढ़ राज्य के विशेष संदर्भ में

प्रियंका द्विवेदी
शोधार्थी
राजनीति विज्ञान
गुरू घासीदास केंद्रीय विश्वविद्यालय बिलासपुर, छत्तीसगढ़

सारः वित्तीय समावेशन की अवधारणा 1991 के बाद से बढ़ने लगा, क्योंकि कम आय वाले लोगों को बैंकों से जुड़कर वित्तीय समावेशन की सुविधाओं से उन्हें रोजगार तथा स्वरोजगार पाने में आसानी होने लगी। विकास से दूर, कम आय व गरीब लोग वित्तीय जागरूकता के अभाव में मुश्किल भरी जिंदगी से गुजर कर रहे है, ऐसे में इन तबकों का प्रधानमंत्री जन धन योजना द्वारा बैंकों से जुड़ना उनके लिए प्राणवायु के समान है। प्रस्तुत शोध पत्र में शोधार्थी ने तीन अंतर मॉडल का उपयोग करके छत्तीसगढ़ में महिला सशक्तिकरण पर वित्तीय समावेशन में प्रधानमंत्री जन धन योजना के प्रभाव का विश्लेषण किया गया है। तथा यह भी देखा गया है, कि महिला सशक्तिकरण में वित्तीय समावेशन की क्या क्या भूमिका रही है, और महिला सशक्तिकरण के वित्तीय समावेशन क्रियान्वयन के समास्याओं का अध्ययन भी किया गया है। इसलिए इस शोध पत्र में महिलाओं के पूर्ण और सार्थक सशक्तिकरण के लिए वित्तीय समावेशन में आने वाली बाधाओं को दूर करने के तरीको और साधनों को बताया गया है।

शीर्ष शब्दःवित्तीय समावेशन, प्रधानमंत्री जन धन योजना, महिला सशक्तिकरण, वित्तीय साक्षरता,

प्रस्तावना

भारत में वित्तीय विकास और आर्थिक विकास दोनों के दर्शन हाल के वर्षा में योजनाओं में वित्तीय समावेशन को सवोच्च प्राथमिकता दी गई है। वित्तीय समावेशन को दुनिया भर में समाज के विकास एवं भलाई के लिए एक महत्वपूर्ण संकेतक के रूप में माना जाता है। समावेशी वित्तीय सेवाएं प्रदान करना, भारत सहित कई देशों की एक बुनियादी प्राथमिकता बन गई हैं, पिछले तीन दशको में वित्तीय समावेशन के क्षेत्र में मूलभूत परिवर्तन हुए हैं, तथा इसके साथ ही साथ वित्तीय समावेशन के महत्व में निरंतर वृद्धि हुई है। आधुनिक समय में सामाजिक, राजनीतीक एवं सांस्कृतिक विकास भी अति महत्वपूर्ण है, और आर्थिक विकास के बिना वित्तीय समावेशन मात्र एक कल्पना है। वित्तीय समावेशन की प्रक्रिया मानव विकास की प्रक्रिया को मजबूत बनाती है। (परवित कुमारः 2011), एवं आर्थिक विकास के बिना कोई भी समाज वास्तविक प्रगति नहीं कर सकता। बैंकों के माध्यम से चलाई जा रही विभिन्न सरकारी योजनाएं इसी दायित्व के निर्वहन की दिशा में उठाएं जा रहे महत्वपूर्ण कदमों में शामिल है। "देश के सभी नागरिक को समान आर्थिक विकास एवं सामाजिक एकरूपता के लिए बिना किसी भेदभाव और प्रतिबंध के, बुनियादी बैंकिंग एवं भुगतान संबंधी सेवाएं उपलब्ध कराना है। यदि समाज का एक बड़ा वर्ग इन सेवाओं से उपेक्षित रहता है, तो देश की आर्थिक विकास तथा उच्च समृद्धि दर तक नहीं पहुंच सकता है।" (सिंह, सतीशः 2019)

वर्तमान समय में प्रधानमंत्री जनधन योजना लोकनीति के रूप में सशक्तिकरण के एक महत्वपूर्ण साधन के रूप में हैं। सरकार द्वारा विभिन्न क्षेत्रों में कमजोर एवं असहाय लोगों को सशक्त करने के लिए केंद्र सरकार द्वारा कई प्रयास किये जा रहे हैं। विशेषकर इन क्षेत्रों में महिलाओं एवं बच्चों की स्थिति अत्यंत दयनीय होती हैं। वर्तमान सरकार द्वारा कल्याणकारी लोकनीतियों का निर्माण

किया गया हैं, तथा सरकार की ऐसी नीतियों में प्रधानमंत्री जनधन योजना, प्रधानमंत्री आवास योजना, प्रधानमंत्री उज्जवला योजना एवं प्रधानमंत्री जीवन ज्योति बीमा योजना का मुख्य लक्ष्य वित्तीय समावेशन रहा हैं। प्रधानमंत्री जनधन योजना के जरिये सरकार की कोशिश नए बैंक खाते में पंहुचने की रही हैं।

वुमन्स वर्ल्ड बैंकिग में एशिया के कार्यकारी उपाध्यक्ष श्री रामन जगन्नाथन ने कहा–"हमें जन धन योजना खातों जैसा एक मंच मिला हैं, जो दुनिया का सबसे बडा महिला सशक्तिकरण अवसर हो सकता हैं। अन्य राज्यों जैसे महाराष्ट्र, राजस्थान से भी प्रधानमंत्री जनधन योजना से संबंधित उत्साहजनक हैं।"

बैंक ऑफ बडौदा द्वारा प्रकाशित एक अध्ययन में कहा गया है,कि महिलाओं द्वारा मेंटेन किए गए एवरेज बैंलेस पुरूषों की तुलना में 30% अधिक हैं, अतः प्रधानमंत्री जन धन योजना वर्तमान परिस्थितिओं में महिलाओं को सशक्त बनाने में अपनी महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वाह कर रहा हैं।

कंसल्टिंग फर्म माइक्रोसेव कंसल्टिंग ने अपनी रिपोर्टद रियल स्टोरी ऑफवूमन्स फाइनेंशियल इंक्लूजन इन इंडिया' में बताया, कि देश में महिलाओं ने भी वित्तीय मामलों में सहभागिता (वित्तीय समावेशन) बढायी हैं। इससे लैंगिक असमानता में 14% तक कमी आई है।रिपोर्ट के मुताबिक वर्ष 2014 में 43% महिलाओं के बैंक खाते थे, जो 2017 में बढ़कर 77% हो गए।

वित्तीय समावेशन की प्रक्रिया मानव विकास की प्रक्रिया को मजबूत करती हैं, क्योंकि वित्तीय समावेशन की प्रक्रिया संगठित वित्तीय प्रणाली के दायरे में समाज के कमजोर वर्गों को लाने का एक प्रयास हैं। समाज के वंचित व कमजोर वर्गों को शामिल बिना समावेशी विकास निरर्थक हैं।

वित्तीय समावेशन से संबंधित ऐतिहासिक पृष्ठभूमि

वर्ष 2005 में संयुक्त राष्ट्र संघ के पूर्व महासचिव ने वैश्विक विकास में बाधा के रूप में लैंगिक असमानता के मुद्दे को संबोधित करते हुए दो बातों को स्पष्ट किये हैं। लैगिक आर्थिक असमानता सुनिश्चित करने के लिये समावेशी वित्तीय क्षेत्र के महत्व पर भी जोर दिया। विश्व बैंक के एक रिपोर्ट के अनुसार, 2011 के बाद से 1.2 बिलियन वयस्कों की वित्तीय सेवाओं तक पहुँच है एवं 1.7 बिलियन वयस्क आज भी वित्तीय क्षेत्र से अनजान हैं। जिसमें अधिकांश गरीब लोग एवं कामगार लोग हैं तथा उनमें भी महिलाओं की आर्थिक स्थिति और भी ख़राब है। वित्तीय क्षेत्रों से महिलाओं की दूरी महिला सशक्तिकरण एवं वित्तीय क्षेत्र के लिए ठीक नहीं है, क्योंकि महिला सशक्तिकरण के लिए यह आवश्यक है, कि अर्थ का संचालन महिलाओं के हाथ में हो यदि आर्थिक संपन्नता/संचालन में महिलाएं सक्रिय भूमिका निभाती है, तो यह लिंग असमानता को कम करने में अपनी भूमिका का निर्वहन अच्छे तरीके से कर सकती हैं, अर्थात् वित्तीय समावेशन के लिए महिला सशक्तिकरण का होना जरूरी है। महिला सशक्त होगी, जब उनके हाथ में सामाजिक एवं सांस्कृतिक अधिकारों के साथ–साथ वित्तीय स्वंतत्रता होगी तथा साथ ही साथ महिला सशक्तिकरण के लिए आवश्यक है, कि उनके तक वहन योग्य वित्तीय सेवाएं आमदनी से पहुंचायी जा सके तभी हम वैश्विक सतत् विकास के लक्ष्य को प्राप्त कर सकते हैं। (भाटिया, शिवांगी और सिंह,सीमा:2019),

भारत के सदंर्भ में वित्तीय समावेशन

स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद वित्तीय समावेशन का परिदृश्य में व्यापक बदलाव किए गए। वर्ष 1991 में तत्कालीन केंद्र सरकार के प्रयासों से देश में आर्थिक समावेशी विकास हेतु उदारीकरण, निजीकरण,भूमंडलीकरण, नीतियों के तहत आर्थिक खुलेपन को अपनाना तथा परिणाम स्वरूप वित्तीय समावेशन के क्षेत्र में केंद्र सरकार द्वारा सकारात्मक प्रयत्न किए गए। वित्तीय समावेशन की आवश्यकता 2000 के बाद अधिक बढ़ा, क्योंकि इस दौर में लोंगों को बैंकिग सिस्टम से जुड़ कर स्वरोजगाार शुरू करने एवं रोजगार के अवसरों में आसानी होने लगी। इसके फायदे को देखते हुए भारत में वित्तीय समावेशन को सफल बनाने के दिशा में सरकार के द्वारा सफल प्रयास भी हुए। भारत में वित्तीय समावेशन का उपयोग पहली बार आरबीआई के तत्कालीन गवर्नर वाई वेणुगोपाल रेड्डी द्वारा अप्रैल 2005 में किया गया था। अधिक वित्तीय समावेशन प्राप्त करने के लिए कई कदम विशेषकर सरकार, विश्व बैंकों और भारतीय रिज़र्व बैंक द्वारा उठाए गए हैं।

वित्तीय समावेशन को भारत में ग्यारहवीं पंचवर्षीय योजना (2007–2012) में तीव्र एवं समावेशी विकास को प्राप्त करने पर विशेष बल दिया गया। 12वीं पंचवर्षीय योजना (2012–2017) में समावेशी विकास की प्रक्रिया को सतत या सुस्थिर टिकाऊ विकास के साथ आगे बढ़ाया गया। समावेशी विकास में कई कार्यक्रमों एवं गतिविधियों को शामिल किया गया है–जैसे विकास के माध्यम से निर्धनता का उन्मूलन करना,बेरोजगारी दूर करना,अमीर व गरीबों के बीच की असमानता को दूर करना, गांव व शहर के अंतराल को कम करना, शहरी स्लम बस्तियों के पुनर्वास हेतु आवास बनवाना, विभिन्न राज्यों एवं प्रदेशों के बीच विकास की असमानता को कम करना, ताकि देश का संतुलित एवं समग्र विकास हो सके। समाज के विभिन्न वर्गों एवं जातियों के बीच सामाजिक–आर्थिक असमानता को घटाना, ताकि समाज के सभी वंचित वर्ग तथा शहरी स्लम में रहने वाले लोग विकास की मुख्यधारा से जोड़ा जा सके एवं विकास में स्त्री पुरूष के बीच लिंग विभेद तथा आर्थिक असमानता को मिटाना, जिससे महिला सशक्तिकरण के प्रयासों को गति मिल सके। वित्तीय समावेशन को बढ़ावा देने के लिए पहले भी 2010 में "ओपन बेसिक सेविंग डिपोजिट अकाउंट स्कीम" नाम से योजना चलाई गई थी। इसके अंतर्गत भी जीरो बैलेंस खाते खोलने का प्रावधान मौजूद था। (शर्मा,जी.एलः2015),वित्तीय सशक्तिकरण के लिए वर्तमान राष्ट्रीय लोकतांत्रिक गठबंधन सरकार ने वित्तीय समावेशन को सफल बनाने के लिए प्रधानमंत्री जन धन योजना, अटल पेंशन योजना, प्रधानमंत्री उज्जवला योजना, प्रधानमंत्री सुरक्षा बीमा योजना, प्रधानमंत्री जीवन ज्योति बीमा योजना की शुरूआत की गयी हैं। प्रधानमंत्री जन धन योजना केंद्र की नरेंद्र मोदी सरकार की महत्वपूर्ण योजनाओं में से एक है। इसके तहत् हर नागरिक का बैंकिंग/बचत जमा खाते, विप्रेषण, ऋण, बीमा, पेंशन तक पहुंच सुनिश्चित करता हो। यह खाता किसी भी बैंक शाखा अथवा व्यवसाय प्रतिनिधी (बैंक मित्र) आउटलेट में खोला जा सकता है। प्रधानमंत्री जन धन योजना(पीएमजेडीवाई) खातों को जीरो बैंलेंस के साथ खोला जा रहा है, जो महिलाओं के सशक्तिकरण में वरदान साबित हो रहा है। वित्तीय समावेशन को बढ़ावा देने के क्रम में केंद्र में यूपीए सरकार ने भी महत्वपूर्ण प्रयास किये है, जिससे भारतीय महिला बैंक और स्वयं सहायता समूह ने महिलाओं को 7%की ब्याज दर पर ऋण की सुविधा उपलब्ध करवाना, महिला सशक्तिकरण हेतु जेंडर बजट को लागू करना इत्यादि क्षेत्रों में महत्वपूर्ण कदम महिला सशक्तिकरण हेतु सरकार द्वारा उठाए गए महत्वपूर्ण कदम हैं।

भारत में महिलाओं के लिए वित्तीय समावेशन का महत्व

वित्तीय समावेशन महिलाओं को सशक्त बनाने का एक महत्वपूर्ण साधन है और अपने आप में एक मानव अधिकार है। महिला को घर के अंदर और बाहर दोनों जगह सशक्त बनाने में सक्षम है। सशक्त महिलाएं समाज की चुनौतियों का सामना करने में सक्षम होगी और सही और गलत घटनाओं की खिलाफ खड़ी हो सकेगी, इसलिए वित्तीय समावेशन महिला सशक्तिकरण में महत्वपूर्ण संबंध रखता है यह महिलाओं को सशक्त बनाने और उन्हें विकास की प्रक्रिया में पूर्ण भागीदारी देने के लिए आवश्यक ज्ञान कौशल और आत्मविश्वास देने का सबसे बड़ी महत्वपूर्ण साधन है। महिलाओं के वित्तीय समावेशन के महत्व का अध्ययन किया जाए तो वित्तीय साक्षरता और वित्तीय समावेशन को महिला सशक्तिकरण के शक्तिशाली उपकरण के रूप मे पहचाना गया है। महिलाएं भले ही कुल आबादी का लगभग आधा हिस्सा है, उनमें से अधिकांश महिलाये ने अपनी वित्तीय निर्भरता के कारण अवसरो और अधिकारों से वंचित कर दिया है।

वर्तमान में निश्चित रूप से प्रधानमंत्री जन धन योजना सरकार की महत्वपूर्ण योजना है, जो कम समय में काफी सफल हुई है। यह योजना वर्ष2014 में प्रारभं की गई थी, जो 28 अगस्त 2021 को 7वर्ष की पूर्ण हुई है। मार्च 2015 में कुल प्रधानमंत्री जन धन योजना के अंतर्गत 14.72 करोड़ खातों से 18 अगस्त 2021 तक खातों की संख्या बढ़कर 43.04 करोड़ हो गए हैं, और इन खातों में से 55% खाता केवल महिलाओं का है, जो प्रधानमंत्री जन धन योजना के अंतर्गत खुला है, अर्थात् इस योजना से महिलाओं को सबसे ज्यादा फायदा हुआ है। क्योंकि जहां इन 43.04 करोड़ खातों में सें 55% महिलाओं की हिस्सेदारी हैं, वहीं 67% खाता प्रधानमंत्री जन धन योजना का ग्रामीण एवं अर्धशहरी क्षेत्रों में है। जहां ग्रामीण एवं अर्द्धशहरी क्षेत्रों की महिलाएं इस योजनाओं का पूरा लाभ उठा रही हैं।

महिला सशक्तिकरण एक क्रांतिकारी दृष्टिकोण है। भारत में महिला सशक्तिकरण के लिए वित्तीय समावेशन की बहुत ही महत्वपूर्ण भूमिका है। वित्तीय समावेशन आर्थिक विकास में वृद्धि करने एवं गरीबी में कमी लाने के लिए आर्थिक रूप से वंचित वर्गों तक गुणवत्तापूर्ण वित्तीय उत्पादों एवं सेवाओं की पहुँच बढ़ाने के लिए आवश्यक हैं। इसे देखते हुए वित्तीय समावेशन में महिलाओं की भागीदारी बढ़ाना बेहद महत्वपूर्ण हैं, क्योंकि महिलाएँ तुलनात्मक रूप से अधिक गरीब, श्रम के असमान वितरण और आर्थिक संसाधनों पर निंयत्रण की कमी का अनुभव करती हैं। वित्तीय समावेशन किसी अर्थव्यवस्था के विकास की राह को आसान बनाता हैं। वित्तीय समावेशन के माध्यम से सुस्थिर एवं न्यायमूलक विकास संभव हो सकता है। समाज के विभिन्न वर्ग विकास में भाग लेने हेतु वित्तीय साधनों की मांग करने लगते हैं, अतः उसकी पूर्ति आवश्यक हो जाती हैं। जब कर्ज की राशि का उपयोग करके वे अपनी आमदनी बढ़ाते हैं। तो आगे चलकर उनकी बचते बढ़ती हैं, उनकी तरफ से निवेश बढ़ता है और उनके लिए अधिक कर्ज लेने के अवसर उत्पन्न होते हैं। अतः इस प्रक्रिया में विकास को उतरोत्तर अधिक बल मिलता जाता है, वित्तीय समावेशन की मदद से निर्धन लोग आमदनी के उतार चढ़ाव एवं आर्थिक क्षेत्र की असामान्य परेशानियों को सहने मे अधिक समर्थ हो पाते हैं। यह अध्ययन, सिद्धांत और व्यवहार में कई योगदान देता हैं। भारत सरकार की वित्तीय समावेशन योजनाओं के माध्यम से महिला सशक्तिकरण की बहस को आगे बढ़ाने में सहायक है।

वित्तीय साक्षरता सशक्तिकरण के लिए एक महत्वपूर्ण उपकरण 2011 की जनगणना के अनुसार महिला साक्षरता दर 65.46% है। समाज की सामाजिक संरचना कें साथ कम साक्षरता दर उनकी महिलाओं के लिए वशिष्ठ वित्तीय साक्षरता कार्यक्रम चाहती हैं, ताकि वे वित्तीय योजनाओं और उनकी पहुंच के बारे में जागरूक हो जाए, यह महिलाओं को वित्तीय नियोजन, बचत बैकिंग की मूल बातें, घरेलू बजट की आवश्यकता को समझने और वित्तीय लक्ष्यों को पूरा करने के लिए संपति का आंवटन को समझने के लिए ज्ञान और कौशल प्रदान करके उन्हें वित्तीय रूप से स्मार्ट कार्य करने में सक्षम बनाता है।

छत्तीसगढ़ में महिला सशक्तिकरण में प्रधानमंत्री जनधन योजना की भूमिका

समृद्ध व सशक्त समाज की परिकल्पना महिला के उत्थान के बिना नही की जा सकती है। 1 नवम्बर 2000 में छतीसगढ़ राज्य के गठन के उपरांत केद्र व राज्य सरकार ने महिलाओं को सशक्त बनाने व उनके हितों की देखभाल व उनका संरक्षण करने हित के लिए कल्याणकारी नीतियों का निर्माण किया गया है। तथा वित्तीय समावेशन महिलाओं को आर्थिक निर्णय लेने, क्रय क्षमता बढ़ाने, ऋृणों पर नियंत्रण और आय बचत पर नियंत्रण के लिए सक्षम बनाता है। जब महिलाएं क्रेडिट और बचत के संबंध में अपने वित को नियंत्रण के लिए सक्षम बनाता है। स्वंय के घर के कल्याण अनुकूलन करेगी, जिससे वित्तीय स्थिरता और सशक्तिकरण होगा, पितृसतात्मक समाज में महिलाओं के पास संपति का स्वामित्व बहुत कम होता है, इसलिए वित्तीय समावेशन से महिलाए अपने जीवन के निर्णय लेने में उनकी भागीदारी होती है। महिलाओं को आर्थिक रूप से मजबूत होने की जरूरत हैं। ताकि महिलाओं से संबंधित वशिष्ठ मुद्दों को नजरअंदाज ना किया जा सके। वित्तीय सुरक्षा वाली महिलाएं अपने स्वास्थ्य और शिक्षा, पानी, स्वच्छता कानूनी अधिकार तथा बच्चों और परिवार नियोजन की देखभाल कर सकती है। महिलाओं को लक्षित कर वित्तीय समावेशन में उनकी भागीदारी सुनिश्चित कर ऋृण की उपलब्धता एवं काम के अवसरों तक महिलाओं की पहुँच बढ़ाने से महिलाओं का सशक्तिकरण तो होगा ही साथ ही, घरेलू स्तर पर आर्थिक लचीलापन भी बढ़ेगा, जो किसी भी आर्थिक संकट उदाहरण स्वरूप महामारी में बेरोज़गारी का संकट के समय सहायक होगा।

अगस्त 2021 तक प्रधानमंत्री जन धन योजना के 7 साल पूरे हो गए हैं। इस स्कीम के तहत अब तक 43 करोंड़ अकाउंट खोले जा चुके हैं जिसमें करीब 1.5 लाख करोड़ इस अकाउंट की मदद से सरकार प्रधानमंत्री सुरक्षा बीमा योजना और प्रधानमंत्री जीवन ज्योति योजना का लाभ पहुंचा रही है। इसके कारण भारत के विकास का पथ पूरी तरह से बदल गया है, इस योजना ने लाखों महिलाओं की जिंदगी का प्रभाव सकारात्मक रहा है, जैसे उदाहरण स्वरूप कोरोना महामारी के दौरान पूरे भारत में लॉकडाउन हो जाने के कारण बहुत सारे लोंगो को सफर करना पड़ रहा था, जिसके कारण उनकी

आर्थिक स्थिति खराब थी तथा प्रधानमंत्री गरीब कल्याण योजना को अप्रैल 2020 से अगस्त 2020 तक में देश में उन सभी महिला खाताधारको को आर्थिक सहायता हर महीने 500 देने का ऐलान किया गया था। जिनका खाता प्रधानमंत्री जनधन योजना के तहत खुले थे। परिणाम स्वरूप इस योजना ने 20 करोड़ महिलाओं को लाभान्वित किया है।

शोध पद्धति

भारत में महिला सशक्तिकरण के बीच वित्तीय समावेशन और प्रधानमंत्री जन धन योजना को विस्तार से समझने के लिए द्वितीयक स्रोतों से डाटा एकत्र किया गया हैं चूंकि महिलाओं के जीवन पर प्रधानमंत्री जन धन योजना के प्रभाव, उसके कारण महिलाओं के जीवन में आने वाले परिवर्तनों तथा उन परिवर्तनों का महिलाओं के सशक्तिकरण से संबंध का अध्ययन किया गया है।

प्रस्तुत अध्ययन में द्वितीयक स्रोतों से प्राप्त आंकड़ों के संकलन पर आधारित है। जिंसमें द्वितीय स्रोतों में सरकारी और गैर–सरकारी विभागों/संगठनों के प्रतिवेदनों, कार्यालयीन अभिलेखों, पूर्व में किए गए शोध, रिसर्च जर्नल में छपे शोध पत्रों, समाचार पत्र, पत्र–पत्रिकाओं आदि में छपे आलेखों आदि से सूचनाओं का संकलन किया गया हैं।

निष्कर्ष :

प्रधान मंत्री जन धन योजना का मुख्य उद्देश्य भारत में सभी लोगों के बेंक खाते के स्वामित्व को बढ़ावा देना हे। यह योजना वाकई में एक सराहनीय योजना है, इस योजना से वित्तीय समावेशन का समग्र रूप से बढ़ावा देने से गुणात्मक परिणाम हो रहे है, फलस्वरूप लैंगिक असमानता कम हो रही है, और महिलाओं का आर्थिक सशक्तिकरण हो रहा है जिसके कारण महिलाये अपने विकास के साथ व परिवार को गरीबी से बाहर निकालने में मदद कर रही है, जो वर्तमान समय में प्रधान मंत्री जन धन योजना महिला सशक्तिकरण के लिए प्रभावपूर्ण नीति है। देश के विकास में महिलाओं की अहम भूमिका होती है, इसलिए हम भारत में महिला सशक्तिकरण के संदर्भ में वित्तीय समावेशन के महत्व की उपेक्षा नहीं कर सकते हैं। भारत में सदियों से महिलाओं का सशक्तिकरण विभिन्न कारणों से बाधित रहा है। महिलाओं की आबादी में देश की आबादी की आधी आबादी शामिल है, इसलिए किसी भी देश की प्रगति और विकास उसकी महिला आबादी के योगदान पर निर्भर करती है।

संदर्भ ग्रंथ सूची

- भाटिया, नवीन एण्ड अर्नव चटर्जी. ''फाईनेशियल इनक्लूसन इन द स्लम्स ऑफ मुम्बई.'' इकॉनामिक एण्ड पोलिटीकल विकली (2010): 23–26.
- भाटिया, शिवांगी एण्ड सीमा सिंह. ''इम्पावरिंगवुमेन थ्रू फाईनेशियल इनक्लूसनःए स्टडी ऑफ अर्बन स्लम.''सेज पब्लीकेशन (2019): 182–196.
- देवान, टी., एण्ड माल, अ. (2021). डस बैंक एकान्ट ऑनरशीप बाय वुमेन इमपॉवर देम? एनॉलाईजिंग आउटकम्स फ्राम द प्रधान मंत्री जन धन योजना इन इंडिया (एसएसआरएन स्कॉलरी पेपर न. 3888341). सोशल सांईस रिसर्च नेटवर्क.
- जार्ज,बी., एण्ड थोमांचन, के.टी. (2018). फाईनेशियल इनक्लूसन एण्ड वुमेन इम्पॉवरमेंटः ए जेंडर प्रेसपेक्टिव. इन्टरनेशनल जर्नल ऑफ रिसर्च –ग्रंथालय, 6(5), 229–237.
- हसन, जेड., एण्ड प्रवीण, जी. (2020). जेंडर इक्विलीटि एण्ड इम्पॉवरमेंट ऑफ वुमेन इन इंडियाः मेंपिंग थ्रू यूएन सस्टेंनेबल डेवलपमेंट गोल्स. 40, 1295–1303.
- वुमेन इम्पॉवरमेंट इन इंडिया एण्ड फाईनेशियल इनक्लूसन बेरियरर्स बाय सौजन्य सेठ्ठी, वी. बासील हंसः एसएसआरएन. (एन.डी.).

ISSN : 2319-7137, Volume: 15/Issue: 01, January-June : 2022

''भारतीय इतिहास लेखन और इतिहास–पुराण परम्परा : एक पुनरावलोकन''

डॉ0 महेन्द्र पाठक
एसोसिएट प्रोफेसर
का0सु0 साकेत, अयोध्या

दुर्गेश दत्त शुक्ल
शोध छात्र
डा0 राम मनोहर लोहिया अवध विश्वविद्यालय, अयोध्या

'पुराण' शब्द का अर्थ है प्राचीन। मान्यता के अनुसार, पुराणों की रचना भी व्यास ने की किन्तु इतिहास की दृष्टि से यह बिलकुल स्पष्ट है कि न तो इनकी रचना किसी एक काल में हुई है और ना ही किसी एक लेखक के द्वारा की गयी है।

पुराण भारतीय संस्कृति के प्राण है। कोई भी व्यक्ति इस कथन की सत्यता से इंकार नहीं कर सकता, इसके कारण है वेदों ने भारतीय संस्कृति को सुदृढ़ आधार प्रदान किया। वेदों में निहित बीज–सूत्रों ने उपनिषदों की चिंतन धारा को उद्यम दिया जिससे भारतीय दर्शन की सुरसरि प्रवाहित हुई, किन्तु इनसे भारतीय दर्शन, भारतीय चिंतन तथा भारतीय आध्यात्मिक विचार प्रणाली ही निर्मित हुई। भारतीय जीवन को जीवन रस, जीवन शैली, जीवन–व्यवहार, जीवन की धड़कन तथा लोक–व्यवहार और लोक–जीवन का व्यवस्थित स्वरूप दिया पुराणों ने।

प्राचीन भारत में इतिहास के ज्ञान को बहुत उच्च स्थान दिया जाता था, उसे वेद के समान पवित्र माना जाता था। अथर्ववेद, ब्राह्मणों और उपनिषदों में इतिहास–पुराण परम्परा को ज्ञान की एक शाखा के रूप में शामिल किया गया है तथा भारतीय परम्परा में पुराणों को ही इतिहास ग्रन्थ कहा गया है, जिन्हें पंचमवेद अथवा इतिहास वेद की संज्ञा दी गयी है।

भारतीय इतिहास लेखन में इतिहास–पुराण परम्परा का विशेष महत्व है। इतिहास–पुराण परम्परा का बीजारोपण हमें वैदिक साहित्य में ही होता हुआ दिखाई पड़ता है। पुराण शब्द का प्रयोग ऋग्वेद में अनेकशः हुआ है। वहाँ इसका अर्थ है 'प्राचीन काल में होने वाला'। यास्क के अनुसार 'पुरानव भवति इति पुराणम्' अर्थात जो प्राचीन होकर भी नया बना रहता है अर्थात हर काल में प्रासंगिक बना रहता है, वह पुराण है। वायु पुराण के अनुसार 'यस्मात् पुराहि अनिति इति पुराणम्' अर्थात प्राचीन काल में जो जीवित था वह पुराण है। पद्मपुराण के अनुसार 'पुरा परम्परया वहित काम्यते' अर्थात जो प्राचीन परम्परा की कामना करता है, वह पुराण है। ब्रह्माण्ड पुराण में 'पुरा एतत् अभूत' अर्थात प्राचीन काल में ऐसा हुआ, यह अर्थ पुराण को परिभाषित करता है। चूंकि इतिहास भी अतीतकालीन मानव के जीवन की घटनाओं से सम्बद्ध है इसलिए भारतीय विचारधारा में पुराण एवं इतिहास को एक ही अर्थ में स्वीकार करने की परम्परा रही है।

इतिहास–पुराण परम्परा के संबंध में पंच–लक्षणों की मान्यता है, अर्थात उनमें पांच विषयों की चर्चा अपेक्षित है– 1. सर्ग अर्थात जगत् की सृष्टि, 2. प्रतिसर्ग अर्थात प्रलय के बाद जगत की पुनः सृष्टि, 3. वंश अर्थात ऋषियों तथा देवताओं की वंशावली, 4. मन्वन्तर अर्थात महायुग और 5. वंशानुचरित अथ्रत प्राचीन राजकुलों का इतिहास।

सर्गश्च प्रतिसर्गश्च वंशो मन्वान्तराणि च।

वंशानुचरितश्चैनं पुराणं पंचलक्षणम्।।

पुराण साहित्य में मानव जीवन से सम्बन्धित घटनाओं के अतिरिक्त देवों, राक्षसों, किन्नरों, अतिमानवीय एवं इतर मानवीय घटनाओं के विवरण के साथ–साथ यत्र–तत्र सम्भव एवं असम्भव के बीच भेद का अभाव होने के कारण फ्लीट, स्मिथ, वर्नेल, विण्टरनित्स प्रभूति विद्वान इन्हें ऐतिहासिक ग्रन्थ मानने के लिए तैयार नहीं है।

पुराणों में वर्णित काल से जुड़ी अवधारणा विलक्षण है। उनके अनुसार, कृत, त्रेता, द्वापर और कलि चार युग है, जिनमें प्रत्येक की अवधि सहस्त्रादिक वर्षों की है। एक महायुग में ये चारों युग व्यतीत होते हैं तथा 1,000 महायुगों का एक कल्प होता है। प्रत्येक कल्प 14 मनवन्तरों में विभाजित है, जिनमें से प्रत्येक के एक प्रतिनिधि मनु हैं। प्रत्येक युग के अन्त में सृष्टि का विनाश हो जाता है तथा दूसरे युग में पुनः सृष्टि की रचना होती है। काल के इस चक्र में धर्म का चक्रवत् विनाश और अभ्युदय होता है।

पुराण साहित्य की ऐतिहासिकता के सम्बन्ध में पाश्चात्य विद्वानों द्वारा दिये गये नकारात्मक विचार भारत की ऐतिहासिक अवधारणा को ठीक से न समझ पाने के कारण है। उन्होंने पुराणों को पाश्चात्य ऐतिहासिक ग्रन्थों के सन्दर्भ में देखने का प्रयास किया है। पुराणों में घटनाओं के विवरण के प्रति कम जबकि संस्कृति के शाश्वत मूल्यों की ओर अधिक ध्यान दिया गया। इन मूल्यों के संरक्षण से जो पात्र सम्बन्धित है, केवल उन्हीं का उल्लेख पुराण साहित्य में मिलता है।

वैदिक साहित्य में अनेक स्थलों पर इतिहास–पुराण का उल्लेख मिलता है। अथर्ववेद में इसका उल्लेख गाथा, नाराशंसी एवं आख्यान के साथ हुआ है। छान्दोग्योपनिषद् में सनत्कुमार से विद्या सीखने के अवसर पर नारद मुनि ने अपनी अधीत विधाओं में 'इतिहास–पुराण' का भी नामोल्लेख किया है और इसे पंचमवेद की संज्ञा दी है। महाभारत के आदिपर्व में इसे इतिहासोत्तम के साथ–साथ पुराण भी कहा गया है। वायुपुराण अपने को प्राचीनतम इतिहास कहता है। ऋग्वेद की अनेक ऋचाओं में पुराण शब्द का प्रयोग हुआ है। डा0 विश्वम्भर शरण पाठक का मत है कि वैदिक साहित्य में उल्लिखित 'गाथा' तथा नाराशंसी सामान्यतया इतिहास तथा पुराण के प्रतिरूप है।

ब्राह्मण साहित्य में भी इतिहास–पुराण परम्परा के प्रचलित होने के प्रमाण मिलते हैं। गोपथ ब्राह्मण में उल्लिखित है कि 'एवमिसे सर्ववेदाः निर्मिताः सकल्याः सरहस्यांः सब्राह्माणा सोपनिषत्काः ऐतिहासाः सान्वाख्याताः सपुराणाः।'' अख्यकों एवं उपनिषदों में भी इतिहास–पुराण परम्परा का विकसित रूप द्रष्टव्य है। तैत्तरीय आरण्यक में उल्लिखित है– ब्राह्मणानि, इतिहास पुराणानि कल्यान गाथा नाराशंसीरिति।' वृहदारण्यक उपनिषद मेंपुराणों की उत्पत्ति वेदों के समान ही बतायी है। सूत्र ग्रन्थों मेंभी इतिहास पुराण परम्परा के साक्ष्य उपलब्ध होते हैं। गृहसूत्र में एक स्थल पर कहा गया है कि 'आयुष्मतां कथां कीतियन्तो मांगल्यानीतिहास पुराणानि।' अर्थात चिरंजीवी मनुष्यों की कथाएँ, कीर्तियाँ और मांगलिक इतिहास पुराण का पाठ करना श्रेयस्कर है।

रामायण में वाल्मीकि ने पुराणों की ऐतिहासिक विश्वसनीयता को स्पष्ट किया है और राजा को उनमें वर्णित कथाओं को सुनने का निर्देश दिया है। महाभारत में पुराण, इतिहास और आख्यानों के महत्व को कई स्थलों पर रेखांकित किया है।

धार्मिक साहित्य के साथ ही लौकिक साहित्य में भी इतिहास–पुराण के सन्दर्भ प्राप्त होते हैं। अर्थशास्त्र में एक स्थल पर इतिहास तथा पुराण की ओर निर्देश किया गया है– 'सामर्ग्युजुवैदास्त्रयी अथर्ववेद इतिहास वैदौच वेदाः।' कौटिल्य का निर्देश है कि राजा प्रतिदिन अपना कुछ समय इतिहास का वर्णन श्रवण करने में लगाना चाहिए। उन्होंने इतिहास के अन्तर्गत आख्यायिका, उदाहरण, धर्मशास्त्र, अर्थशास्त्र आदि आख्यायिकोदाहरणं धर्मशास्त्रं, अर्थशास्त्र चेतीतिहासः। महाभाष्यकार पतंजलि ने भी इतिहास और पुराण को एक विधा के रूप मेंस्वीकार किया है जिससे ज्ञात होता है कि शुंगकाल में यह परम्परा प्रशस्त रूप में विद्यमान थी। व्यासस्मृति में वेद का पारंगत विद्वान होने के लिए छः वेदांगों के साथ–साथ पुराणों की भी मीमांसा करना आवश्यक बताया गया है– 'मीमांसते च यो वेदान्षडभिरगैः विस्तरैः। इतिहास पुराणानि समवेत वेदपारगाः।' शुक्र ने अपने नीतिसार में 32 विद्याओं का उल्लेख किया है जिसके अन्तर्गत मीमांसा, तर्कशास्त्र, वेदान्त, योग, स्मृति के साथ ही साथ इतिहास–पुराण भी शामिल

है। इसी प्रकार दर्शन साहित्य में भी इतिहास पुराण की एक नियमित परम्परा के विद्यमान होने का संकेत मिलता है।

पुराणों के पंच–लक्षणों में वंशानुचरित का विशेष महत्व है। अठारह पुराणों में केवल पाँच (मत्स्य, वायु, विष्णु, ब्राह्माण्ड, भागवत) में ही राजाओं की वंशावली पायी जाती है। इसी के साथ ही पुराणों में शक, यवन, कुषाण, हूण जैसी विदेशी जातियों का उल्लेख होना इसकी ऐहिासिक महत्व को द्विगुणित कर देता है। स्मरणीय है कि मत्स्यपुराण सबसे अधिक प्राचीन एवं प्रामाणिक है। पुराणों की भविष्य शैली में कलियुग के राजाओं की तालिकायें दी गयी है। इनके साथ शैशुनाग, नन्द, मौर्य, शुंग, कण्व, आध्र तथा गुप्त वंशों की वंशावलियां भी मिलती है। मौर्यवंश के लिए विष्णु पुराण तथा आन्ध्र सातवाहन वंश के लिये मत्स्य पुराण महत्व के हैं। इसी प्रकार वायु पुराण में गुप्तवंश की साम्राज्य सीमा का वर्णन तथा गुप्तों की शासन पद्धति का भी कुछ विवरण मिलता है। सामाजिक और सांस्कृतिक दृष्टि से अग्नि पुराण का काफी महत्व है जिसमें राजतन्त्र के साथ–साथ कृषि संबंधी विवरण भी दिया गया है। इस प्रकार पुराण प्राचीनकाल से लेकर गुप्तकाल के इतिहास से सम्बन्धित अनेक महत्वपूर्ण घटनाओं का परिचय कराते हैं। छठी शताब्दी ईस्वी पूर्व के पहले के प्राचीन भारतीय इतिहास के पुनर्निर्माण के लिये तो पुराण ही एकमात्र स्रोत है।

जब पुराणों के विषय और लक्षण निश्चित हो गये, उस समय इतिहास, पुराण से पृथक हुए। सायण के अनुसार प्राचीन आख्यान तथा आख्यायिका का सूचक भाग इतिहास है तथा सृष्टि प्रक्रिया का वर्णन पुराण है। यह पृथकीकरण सातवी सदी में आचार्य शंकर ने किया जब पौराणिक साहित्य वृक्तिगत हो चुका था।

जब पुराणों के विषय और लक्षण निश्चित हो गये, उस समय इतिहास, पुराण से पृथक हुए। पंचलक्षणों के अतिरिक्त पुराणों में दान, तीर्थ, व्रत, अवतार तथा भुवनकोश आदि का समावेश कर लिया गया। इतिहास विभिन्न विषयों की शिक्षा देकर तथा लोक व्यवहार के तत्वों को प्रकटित कर मानव के हृदय से मोह तथा अज्ञान का निवारण करता है। पुराणों के अन्तिम काल में इतिहास और पुराण की पृथकीकरण की प्रक्रिया प्रारम्भ होनी लगी, जिसका पृथक उदाहरण 'जय' नामक इतिहास ग्रन्थ है। इसे व्यास ने स्वयं पुराणों से पृथक कर महाभारत को उत्तम इतिहास के रूप में प्रथमतः प्रस्तुतः किया। इसलिए वेदव्यास विश्व के प्रथम इतिहासकार तथा प्राचीन भारतीय इतिहास पिता के रूप में प्रसिद्ध हुए।

वैदिक साहित्य से लेकर धर्मशास्त्रों तक में वर्णित इतिहास–पुराण परम्परा के आधार पर हम कह सकते हैं कि इतिहास का प्रयोजन यह समझना और बताना था कि व्यक्तियों का परिवार के प्रति, परिवारों का अपने वंश के प्रति वंशों का गाँवों के प्रति, गॉवों का जनपद व राष्ट्र के प्रति और अन्ततः समूची मानवता के प्रति क्या कर्तव्य है और उनमें त्याग और बलिदान की भावना कैसे उत्पन्न की जाये। इतिहास को राजाओं, राजवंशों के नामों और उनकी उपलब्धियों आदि का विशाल संग्रह नहीं समझा जाता था। इसे सांस्कृतिक और सामाजिक चेतना जागृत करने का एक सशक्त साधन माना जाता था। शायद इसलिए वर्षा ऋतु में और त्योहारों एवं पर्वो के अवसर प्रत्येक गांव और नगर में पुराणों का वाचन और श्रवण वार्षिक समारोहों का एक आवश्यक अंग था। हो सकता है कि पुराण आधुनिक इतिहास लेखन की कसौटी पर खरे न उतरें अथवा जिन्होंने इसे लिखा है उन्हें ''इतिहास कार्य के शिल्प विधान'' का ज्ञान न हो, किन्तु उन्हें अपने कार्य के प्रयोजन और स्वयं इतिहास के प्रयोजन की पूरी जानकारी थी।

सन्दर्भ–ग्रन्थ :

1. यास्क निरूक्त 3/19
2. वायु पुराण : 1/203
3. पद्म पुराण : 5/2/53
4. ब्राह्माण्ड पुराण : 1/1/173

5. पं0 भगवदत्त : भारतवर्ष का वृहद इतिहास प्रथम भाग पृ0 19
6. महाभारत आदि पर्व 1/17
7. डा0 रमाशंकर भट्टाचार्य इतिहास–पुराण का अनुशीलन पृ0 7
8. वायु पुराण, 103/48
9. शंकर भाष्य
10. सायण भाष्य शतपथ 11/5/6/8
11. डा0 विश्वम्भरशरण पाठक : Ancient Historians of India Page 2
12. डा0 बलदेव उपाध्याय, पृ0 10
13. गोपथ ब्राह्मण, पूर्वभाग, 2/10
14. वृहदारण्यक उपनिषद, 2/4/11
15. छान्दोग्य उपनिषद : 7/1/2–4
16. रामायण, बालकाण्ड, 9/11
17. अयोध्या काण्ड : 15/18
18. कौटिल्य : अर्थशास्त्र, 5/3 (भृत्तकरणीयम्)
19. सायण भाष्य : शतपथ ब्राह्मण (99/5/6/8)

ISSN : 2319-7137, Volume: 15/Issue: 01, January-June : 2022

हिन्दी उपन्यासों में चित्रित दलित जीवन

डॉ0 बृजेश कुमार पाण्डेय
सहायक प्राध्यापक– हिन्दी
शासकीय रामानुज प्रताप सिंहदेव
स्नात0 महाविद्यालय बैकुण्ठपुर
जिला– कोरिया (छ.ग.)

हिंदी साहित्य आज हमारे सम्मुख अपने पुष्ट रूप में उपस्थित है अपनी अनेक विधाओं के वैचारिक आयामों को नए–नए सामाजिक और साहित्यिक मूल्यों के परिप्रेक्ष्य में सुगठित करती हुई हिंदी साहित्य की भूमि और भूमिका दोनों ही बदल चुकी है। जहां पहले उसमें हाशिये के समाज पर बात नहीं होती थी या होती थी तो बहुत न्यूज़ रूप में या चलते–चलते वही हाशिए का समाज आज अपनी अस्मिता के लिए संघर्ष करता करता साहित्य के केंद्र में आ पहुंचा है। आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी ने कहा था कि– मनुष्य ही साहित्य का लक्ष्य है। यह कहते हुए मनुष्य शब्द के विभेद का उनके मन में संभवत कोई विचार ना रहा होगा किंतु भारतीय सामाजिक व्यवस्था में जाति इतने गहरे रूप में अपनी पैठ बना चुकी है कि उससे बाहर निकलना बहुत टेढ़ी खीर मालूम पड़ती है। इसी बात को स्वयं आचार्य द्विवेदी जी ने भी स्वीकार किया है और कहा है कि– भारत में नीच से नीच समझी जाने वाली जाति भी अपने नीचे की एक जाति ढूंढ लेती है ऐसी जटिल सामाजिक व्यवस्था में दलितों का अपना विमर्श आज साहित्य और समाज के वैचारिक केंद्र में है जिसे हम दलित विमर्श की संज्ञा के नाम से जानते हैं।

भारतीय सामाजिक परंपरा और व्यवस्था बहुत प्राचीन है प्रारंभ में यह जाति व्यवस्था कर्म पर आधारित थी लेकिन कालांतर में व्यवस्था में विकृति आ जाने के कारण यह जन्म पर आधारित हो गई। दलित साहित्य में दलित शब्द से आशय अस्पृश्य जातियों से है। यह मेहनतकश वर्ग होते हुए भी गुलामों जैसा जीवन व्यतीत करने को बाध्य थे। इस प्रकार यह कहा जा सकता है कि दलित चेतना भारतीय वर्ण व्यवस्था की कोख से पैदा हुई है दलित शब्द को विद्वानों ने अपने अपने अनुसार परिभाषित किया है डॉ प्रेम शंकर दलित शब्द को अनुसूचित जाति, जनजाति, घुमक्कड़ जाति, बौद्ध, कामगार, मजदूर, निर्धन, किसान, भूमिहीन एवं नारी समाज से जोड़कर देखते हैं। दलित शब्द का अर्थ स्पष्ट करते हुए नारायण सुर्वे लिखते हैं कि "दलित शब्द का अर्थ केवल बौद्ध या पिछड़ी जातियाँ नहीं है। समाज में जो भी पीड़ित है वे सभी दलित हैं ईश्वर निष्ठा शोषण निष्ठा जैसे बंधनों से आदमी को मुक्त रहना चाहिए उसके सामाजिक अस्तित्व की धारणा समता और विश्व बंधुत्व के प्रति निष्ठा ओं से निर्धारित होनी चाहिए। यही दलित साहित्य का आग्रह है।"[1]

समाज में घटित घटना को साहित्य चित्रित करता है। दलितों के संबंध में सबसे पहले मराठी साहित्य ने आवाज उठाई इस संबंध में नारायण सुर्वे अपने लेख दलित साहित्य और बाबा साहेब अंबेडकर में लिखते हैं कि– "जनमानस में जब नया बोध जाग उठता है तो उसे अपने स्व का एहसास होने लगता है और साकार होने लगती है नई अस्मिता वह अपना रूप उभारने लगती है। दलित समाज के विषय में भी यही कहा जा सकता है जो समाज बागी और कलम के सामर्थ्य से अनजान और वंचित था, उसे जब साहित्य के रूप में एक सामर्थ्यशाली हथियार मिला तो वह खुल कर बोलने लगा लिखने लगा उसे नई आत्म चेतना प्राप्त हुई।"[2] इस प्रकार दलित एक सामाजिक अवधारणा है जिसे दबाया या धकेला जाए वह दलित है और यह धकेला गया मनुष्य अपनी अस्मिता को पाने के लिए निरंतर उसी प्रकार से संघर्ष करता रहता है जिस प्रकार से एक सामान्य मनुष्य अपने जीवन को बेहतर बनाने के लिए करता है।

बीसवीं सदी के हिंदी उपन्यास कारों ने किस प्रकार से अपने उपन्यासों में दलितों की सामाजिक आर्थिक स्थिति को चित्रित करने का प्रयास किया है यह भी दृष्टव्य है। प्रारंभिक उपन्यासों में दलित पात्रों को हीन व्यक्ति के रूप में चित्रित किया गया है।लज्जाराम मेहता, किशोरीलाल गोस्वामी आदि के उपन्यासों में जिस दलित जीवन का चित्रण है वह प्रायः नकारात्मक है। लज्जाराम मेहता अपने उपन्यास 'आदर्श हिंदू' में लिखते हैं कि–"आप लोग नई टकसाल खोलकरशूद्रों को द्विजत्व का सर्टिफिकेट देना चाहते हैं, उनमें कोई बाल्मीकि और नारद के समान है भी।" प्रेमचंद ने दलित जीवन को सकारात्मक आधार पर चित्रित किया है। उनके कथा साहित्य में दलित पात्रों के माध्यम से उनके जीवन की विसंगतियों को उकेरा गया है इनमें मुख्य है आर्थिक शोषण और सामाजिक उत्पीड़न। प्रेमचंद के उपन्यास 'कर्मभूमि' के संबंध में कांति मोहन कहते हैं कि–"कर्मभूमि प्रेमचंद का एकमात्र ऐसा उपन्यास है जिसमें हमें अछूत जीवन के व्यापक चित्र मिलते हैं। इन चित्रों से अछूत समस्या के चिंतन के विभिन्न आयाम भी उभर कर सामने आते हैं।"[3]

गोदान उपन्यास में पंडित मातादीन और सीलिया के प्रसंग के माध्यम से प्रेमचंद्र दलितों और उनकी स्त्रियों पर हो रहे अत्याचार का चित्र प्रस्तुत करते हैं। पंडित मातादीन और सीलिया चमारिन के प्रेम प्रसंग से सिलिया गर्भवती हो जाती है, लेकिन फिर भी मातादीन उसे पत्नी का दर्जा ना देकर रखैल का दर्जा देता है। मातादीन के इस आचरण से दलित आक्रोशित होकर कहते हैं कि–"हमें ब्राम्हण बना दो हमारी सारी बिरादरी बनने को तैयार है। जब यह समरथ नहीं है तो तुम भी चमार बनो हमारी इज्जत लेते हो, तो अपना धर्म हमें दो।"[4] इसी प्रकार से उनके गबन उपन्यास में भी जालपा जातिवाद का विरोध करती है और ब्राह्मणों को अपना मानदंड बताते हुए कहती है कि–"मैं उस चमार को उस पंडित से अच्छा समझूंगी जो हमेशा दूसरों का धन खाया करता है।" इस प्रकार प्रेमचंद ने अपने उपन्यासों के माध्यम से ग्रामीण पृष्ठभूमि में दलित जीवन कैसा रहा तथा उनकी वैचारिकी कैसी रही इसका बहुत ही यथार्थ परक उद्घाटन किया है। पाण्डेय बेचन शर्मा उग्र ने भी अपने उपन्यास 'बुधुवा की बेटी' जिसका द्वितीय संस्करण मनुष्यानंद शीर्षक से प्रकाशित हुआ में दलितों की त्रासद स्थिति को व्यक्त किया गया है। इस उपन्यास में उन्होंने सवर्णों के सामाजिक, राजनीतिक संगठन दलितों पिछड़ों को जातियों में बांटकर अपनी राजनीति चलाने की नीति को समझते हुए भंगी जाति को ही संगठित करने पर जोर दे रहे थे। प्रेमचंदोत्तर उपन्यासों में दलित स्त्रियों की त्रासद स्थिति और उनके शोषण की समस्या को भी उठाया गया है। जगदीश चंद्र के उपन्यास 'धरती धन न अपना' में दलित स्त्रियों और बच्चों के अधिकारों की मांग की बात कही गई है। इन्हीं अधिकारों की मांग करते हुए फत्तू कहता है कि–'मैं तो कहूंगा कि जिन चमारों के घर जाटों के बच्चे पैदा हुए हैं उन्हें जायदाद में हिस्सा मांगना चाहिए।"[5] इस उपन्यास का पात्र काली जिस लाल पहलवान के यहां काम करता है वह चमारों के साथ समझौते का पक्षधर तो है किंतु वह संघर्ष के वक्त कभी भी कोई सहायता नहीं करता और इसके पीछे भी कारण जाति मोह ही है। वह अपने वर्ग के लोगों से कटकर नहीं रह सकता। यह बात इस ओर संकेत करती है कि उदारपंथियों और धार्मिक उपदेशों से भी चमारों को कोई सहायता नहीं मिलती।

भारतीय समाज की वास्तविक विडंबना यही है की जन्म पर आधारित जाति प्रथा की जड़ें बहुत गहरे पैठी हैं जो जाति को प्रतिष्ठा का विषय मानकर गलत धारणाओं के कारण जातिगत भेदभाव को मजबूत बनाकर समाज का स्वरूप विकृत कर रही है। मुस्लिम समाज में दलित चमारों की अवस्था का चित्रण करते हुए राही मासूम रजा ने अपने उपन्यास 'आधा गांव' में मुस्लिम समाज में निहित ऊंच–नीच के सत्य को उद्घाटित किया है। देश–विभाजन के चित्रण के साथ ही गांव के मुस्लिम बस्ती के उच्च लोगों की काली करतूतों तथा निम्न जाति के साथ किए जाने वाले अभद्र व्यवहार को भी दिखाया गया है।

नागार्जुन ने भी अपने उपन्यास 'बलचनमा' के माध्यम से शोषितों में अपने अधिकार के प्रति जागरूकता पैदा करने का प्रयास किया है। डॉक्टर पुरुषोत्तम अग्रवाल ने अपने प्रसिद्ध लेख "दलित अस्मिता और हिंदी उपन्यास" में इसका जिक्र करते हुए लिखा है कि–"प्रेमचंद किसानों की गरीबी बेकारी की कहानी लिख गए थे पर उनकी मुक्ति की दास्तान वे नहीं कह पाए थे। इस उपन्यास बलचनमा का विकास स्वाभाविक रूप में हुआ है। उसकी राजनीतिक चेतना क्रमशः धीरे–धीरे विकसित

होती है। इसी क्रम में वह विकास आंदोलन का पहले सिपाही और फिर अगुआ बन जाता है।"[6] भगवती चरण वर्मा के उपन्यास 'भूले बिसरे चित्र– और श्री लाल शुक्ल के उपन्यास 'राग दरबारी' में भी दलितों के भय की स्थिति को चित्रित किया गया है। वे भयभीत इसलिए है कि यदि वे आवाज उठाते हैं तो शायद इससे भी प्रतिकूल स्थिति का सामना न करना पड़ जाए। भूले बिसरे चित्र उपन्यास का पात्र गेंदामल चमार ऐसे ही भय से ग्रस्त है जो कि अपने गुलाम होने के अलावा अपने अधिकार की बात सोच तक नहीं सकता है।"आंदोलन कीजिए स्वराज्य लीजिए लेकिन हम लोगों को जिंदा रहने दीजिए। हम लोग तो अपनी गुलामी के लिए ही पैदा हुए हैं।"गेंदामल की ही भांति 'राजदरबारी' के लंगड़ और सनीचर की भी स्थिति है, जिसमें लंगड़ अपनी औलाद की उम्र के व्यक्तियों को बापू कहकर पुकारता है और दूसरा पात्र सनीचर है जो वैद्य जी की बैठक में भांग घोटता है और कई बार दुत्कारे जाने के बावजूद ही ही करके रह जाता है।

कोई भी साहित्य अपने समसामयिक सवालों और दबाओं के साथ ही सार्थकता प्राप्त करता है। भारतीय साहित्य के एक महत्वपूर्ण चरित्र एकलव्य को लक्ष्य करके उसके जीवन और घटित घटनाओं को आधार बनाकर एक उपन्यास लिया गया 'एकलव्य' जिसके लेखक हैं चंद्रमोहन प्रधान। धनुर्विद्या सीखने का शौकीन एकलव्य द्रोणाचार्य द्वारा शिक्षा देने से वंचित कर दिया जाता है और स्वयं के अभ्यास से एक सिद्धहस्त धनुर्विद हो जाता है। किंतु अपने प्रिय शिष्य राजपुत्र अर्जुन के प्रति वे गुरु दक्षिणा में उसका अंगूठा मांग लेते हैं। इस कथानक के माध्यम से उपन्यासकार ने यह बताना चाहा है कि निम्न जाति के व्यक्ति को अपनी इच्छा से शिक्षा का अधिकार भी नहीं है। लेखक ने एकलव्य की चिंता और प्रश्नों को आज के संदर्भो, चिंताओं और प्रश्नों से जोड़ा है।

प्रायः इस बात पर बहस होती है कि दलित साहित्य एक दलित लेखक ही लिख सकता है या गैर दलित भी। इस बात का कोई स्पष्ट निष्कर्ष आज तक नहीं निकल सका है। लेकिन मेरी समझ में एक प्रमाणिक दलित लेखन एक दलित लेखक ही कर सकता है क्योंकि भोगे हुए यथार्थ की जैसी अनुभूति और अभिव्यक्ति उस दलित लेखक में होगी वैसी गैर दलित लेखन में होना असंभव है फिर भी कई गैर दलित लेखकों ने दलित साहित्य पर अपनी लेखनी चलाई है जिनमें मुद्रा राक्षस का नाम उल्लेखनीय है। उन्होंने अपने उपन्यास 'दंड विधान' में दलित जीवन से संबंधित स्थितियों का उल्लेख किया है। इस उपन्यास की कथा बेदाना नामक मुसहर जाति के बंधुआ मजदूर के केंद्रीय चरित्र के इर्द–गिर्द घूमती है। इसमें अत्याचारों के खिलाफ होने वाले आंदोलन का पूरा ढांचा उपस्थित है। जमींदारों द्वारा दलितों के शोषण महिलाओं के बलात्कार के खिलाफ क्रांति का चित्रण दिखाई देता है।

इस समय लेखकों का यह दायित्व है कि सामाजिक समरूपता बरकरार रखते हुए सामान्य से सामान्य व्यक्ति को यथार्थ स्थिति से अवगत कराकर जागृत किया जाए और लेखकों की लेखनी में यह शक्ति है। संजीव सातवें आठवें दशक के ऐसे कथाकार हैं। संजीव ने दलितों के सुख दुख में बराबर भागीदारी करते हुए अपने उपन्यास लिखे हैं।'धार' और 'जंगल' जहां शुरू होता है नामक उनके दो उपन्यास इस दृष्टि से उल्लेखनीय हैं।'धार' उपन्यास का विषय छोटा नागपुर में रहने वाले आदिवासी हैं। इन आदिवासियों पर पुलिस और कोयला माफियाओं के अत्याचार और शोषण को दिखाया गया है।'जंगल जहां शुरू होता है'में नेपाल की सीमा से लगे बिहार के पश्चिमी चंपारण जिले के 'मिनी चंबल' नाम से प्रसिद्ध क्षेत्र में रहने वाली थारू जनजाति तथा उस क्षेत्र के राजनीतिज्ञों, डाकुओं और पुलिस के बीच छिड़ी जंग का अंकन किया गया है।बिसराम नामक पात्र के माध्यम से लेखक ने तमाम खेतिहर मजदूरों की खींझ को व्यक्त करते हुए लिखा है कि–"पहले चीनी मिलें बंद हुई, फिर खेत बंधक हुए, भैंस गई, मेहरारू मदन सेज पर और बेटी को सांप ने डसा।"[7] राजनीतिक पतन, उत्पीड़न, विस्थापन, पिछड़ापन, शोषण के साथ ही व्यवस्था गत विसंगतियों का विस्तृत चित्रण इस उपन्यास में है।

इसी क्रम में मिथिलेश्वर का उपन्यास 'यह अंत नहीं' आता है। इस उपन्यास में युवा दलित दंपत्ति जोखन और चुनिया के संकटग्रस्त और संघर्षरत जीवन का चित्रण है। चुनिया के माध्यम से मिथिलेश्वर ने भारत के पिछड़े गांव में यौन–लिप्सुओं की शिकार होती औरतों की विकल्पहीनता को

तोड़कर नारी को पुरुष वादी समाज के लिए चेतावनी के रूप में रेखांकित किया है। दलितों की सुधरी हुई स्थिति का चित्रण कर लेखक ने इस क्षेत्र में एक सकारात्मकता का संदेश दिया है।

इस प्रकार कुछ प्रतिनिधि उपन्यासों और उपन्यास कारों के रचना विधान को लेकर हम यह देखते हैं कि जहां हिंदी के प्रारंभिक दौर के दलित उपन्यासों में दलित पात्र अपने ऊपर होने वाले अत्याचार और शोषण के खिलाफ आवाज बुलंद नहीं कर पाता था और इसे अपनी नियति मान बैठता था, कालांतर में धीरे–धीरे वह अपनी स्थिति और अधिकारों के प्रति जागृत होता है और संघर्ष करता है ना केवल पुरुष पात्र बल्कि दलित नारी पात्रों के जागरण को भी लेखकों ने अपने उपन्यासों में रेखांकित किया है दलितों के साथ साथ जनजातीय पात्रों को भी लेखकों ने अपने उपन्यास के केंद्र में चित्रित किया और उनकी समस्याओं को भी पूरी ईमानदारी से प्रस्तुत किया है। हिंदी का दलित साहित्य दलित चेतना की उपज है। इसने कबीर, बुद्ध तथा बाबा साहब अंबेडकर से अपनी प्रेरणा ली है। हिंदी के उपन्यासकारों ने केवल दलित समस्याओं और शोषण का ही वर्णन नहीं किया है बल्कि उन कारणों को भी रेखांकित किया है जो कि दलितों की इस स्थिति के लिए उत्तरदायी है। दलित जीवन के साथ ही समकालीन परिवेश और राजनीति तथा पुलिस प्रशासन की यथार्थ भूमिका को भी उजागर किया है। इस तरह से साहित्य दलितों की आवाज उठाने का माध्यम बना और लेखकों ने बड़े ही सशक्त ढंग से इसे उठाकर दलितों को उनका वाजिब हक दिलाने में अपना योगदान दिया।

संदर्भ :–

1. हंस, अक्टूबर 1992 संपादक– राजेंद्र यादव, पृष्ठ– 23

2 वही पृष्ठ– 22

3 मोहन कांति, प्रेमचंद और अछूत समस्या, पृष्ठ– 223

4 प्रेमचंद –गोदान पृष्ठ– 214

5 चंद्र, जगदीश – धरती धन न अपना, पृष्ठ–202

6 वसुधा 58, जुलाई सितंबर 2003 पृष्ठ–157 संपादक प्रोफेसर कमला प्रसाद

7 संजीव –जंगल जहां शुरू होता है, पृष्ठ– 82

ISSN : 2319-7137, Volume: 15/Issue: 01, January-June : 2022

अज्ञेय के काव्य में बिम्बधर्मी विशेषण

डॉ0 सव्यसाची
असिस्टेंट प्रोफेसर, हिन्दी विभाग,
नेहरु ग्राम भारतीय मानित विश्वविद्यालय प्रयागराज

इत्यलम–

अज्ञेय ने 'इत्यलम् की कविताओं में बिम्बधर्मी विशेषणों का भी प्रयोग किया गया है। इन विशेषणों से कही चित्र–विधान हुआ है, कही मूर्तिकरण की प्रवृत्ति दिखाई देती है और कही मनोभावों और मूल्यों की अभिव्यक्ति हुई है। निर्धन, साधनहीन जैसे विशेषणों से सामाजिक स्थिति या आर्थिक स्थिति का बोध होता है। इस तरह से अज्ञेय ने 'इत्पलम' काव्य संग्रह में बिम्बधर्मी विशेषणों के प्रयोग से अपनी अभिव्यक्ति को और अधिक सक्षम बनाया है। नीचे ये विशेषण दिये जा रहे हैं।

कुंचित अलकों, दरकिले, आँचल, पावन, पागल झंझा (पृ0 17), सस्मिल, सानुराग, अम्लान प्रेम स्निग्ध है मेरा उर्मिल (20) कठिन हथकड़ी, कोमल बन्धन, बिखरे जीवन (22), आशाहीन रजनी, भीषण आहे0 अस्फुट अव्यक्त अनादि असीम प्रणय की तृष्णायें (23), जर्जर वीणा (24)। करुणा दृष्टि (27), ठंठी आहे (29) धनीभूता इच्छाओं (30), पुष्पविहीन (34), गर्वपूर्ण उन्नति ललाट लालघूल (38)। विजीत व्यथा (39) अनबुझी आशा (41) रिक्त पुकार, निहत्थें हाथों (51)। अप्रतिहन आहवान (52)। विवश प्रेरणा (55)। असहय रणातुर उसकी आत्मा, विवेक प्रेरणा स्पन्दित उद्धत उसका गान (57) अबाध आतुरता (61), अनथक कृतित्व (62), लालिम गगनाम्बर (64) अधिर साधना, अनथक ज्वाला (65)। मोहन मदिरा, मृदु अवगुण्ठन भस्मीभूत अस्थियों मनमोहक उन्मादक झिलमिल निर्झर (68), लालिम मदिरा उत्तप्त कथा (69), मधु विडम्बना, कंटकमय पथ (71) अंधी आशा अतीन्द्रिय तारे, अस्थिर कम्पन (74) रौरवनाद (75)। झीलो का निस्सीम प्रसार (83) लज्जाजनक पराजय (84) कठोर तन्मयता (85) अविरल कोलाहल, उद्धत विद्रोही (87) असीम शक्ति (93) प्रच्छन गगन, अमिट साघ, गति अबाघ, आरक्त कीर (95), चंचल कपोत, तुच्छ कामना (96) अन्तिम आश्वासन अन्तिम रक्तिम किरण, अन्तिम रक्तरश्मि (97) छिताराये बादल, उध्यंग भुजाये (99) मीलित आँखे (100) अचिर अभिन्न एकता, अथक स्नेह (101) उजडें कानन आशाहीन गगन, नई बूदें, अन्तिम प्रणयिन अधिर जाल (102) राग भरी रेखायें (103) व्यापक मौन मधुरे कितना है गदगद अपने प्राण (103) पर्वतमाला श्यामल (104) धूमिल नभ, नीरव निर्वेद (106) चंचल चरण (108), मधु सपना, शिथिल पांडु पट, मैंजी देह (109) मत्त बैजयंती (110), शून्य नभ (112), अंधे पतंगे विद्युन्मयी प्रतिमा, आदिम पुरुष, चिरन्तन निर्वास मृदु अनुराग रंजित (114), चिरमिलन, कृतज्ञ प्रणाम (116) स्वच्छन्द तारे (117), वह रसदायिनी निष्पाप भी है (118), सत्य चिरन्तन (121), मैं निर्धन हूँ साधनहीन स्वर्ण वितान, अमर प्रणय (122), मौन अनुग्रह उन्मीलित तरु (123), चिन्तामय हृदय,

निबल आकुल हृदय (125) तिक्त फल (120), दीर्घ साँझ विहान, चिन्तामय हृदय (127), मस्तक अभिमानी (128), आन्दोलित मानस, निमिष निश्चल अनमिअ लीके (129), सीमित स्नेह विकम्पित बाती, अनझिप लौ0 निरालोप यह मेरा घर (131) मिलन चिरन्तन (133)। हृदय अपाहिज (134), अनझिप ज्वाला, सूखे फूल (135), कौटा कठोर, कुट प्याला, सम्मोहनकारी हाला (136)। अन्तिम रहस्य (137)। सूखी दुनिया, दृढ़ डैने, तृषित श्रांत नभ भान्त और निर्मम झंझा झोंको से ताड़ित (138), कड़वा प्रत्यय, अंधियारी संध्या (140), झूठे अहंकार, रागातीत, दर्पस्फीत, अटल अतुलनीय मेरी अवहेलना की टक्कर सहार ले (156), नयक शायद अघमीचे (158), वाताहत तम, अतिशय निर्द्वन्द्व, सतत निमग्न (159), श्रमसिक्त कृति, तीव्र

अन्तरानुभूति (161), जागरूक प्रहरी, ओर–छोर हीन फैले ताप रूद्ध नभ, घोर मूर्च्छा (162), अन्य खग फूल से, उड्डीयमान, केवल उड्डीयमान, निरादर्श, स्पर्धाहीन, तपहीन (पृष्ठ सं0 163) निष्करण जन (164), एक अकिंचन, निष्प्रभ अनाहूत अज्ञात द्युति किरण (164), मुक्त नीलाकाश, अनथक अपलक द्युतिग्रह, नियतीबद्ध अग्रसर, अनथक गति (165), मूत्रसिंचित मृतका (166), निरवधि गहन विस्तार, चांदनी सित (167), उन्मुख विकलता, सबल पंख, पंखी सुनहला (172), प्रकंपित पाल (174), निर्निमेष लोचन युगल, दीप्तीमान नारी मुख (176), धौतपाप भागीरथ तारिणी, एकनिष्ठ ध्येयरत तपशील साधना, आंखें आर्द दीप्तीयुक्त (177), तपक्षीण कापालिक (178). उपेक्षित वारि कण (179), आर्द्र वेदना, प्यासी दृष्टि, संगीचेहरे, स्थिर नेत्र, स्निग्ध स्पर्श (182), सुनहले मार्ग, उछटली से वेकली परमतत्व वलयित आत्मा यह अनाहत और अक्षत, यंत्रचालित देह (183), चटक तारों सजा फूहड निलज आकाश, उमींदे लोचनों (188), अल्हण दिन (195) अभिन्न निष्कम्प अनिर्वच अनभिवद्य है युगातीत (196), लोल लट (203), मसृण मृदु आकार रेखा, सिहरकर तरुपाल, आक्षितिज उन्मुक्त (207)। सूखे पीलेपात (209)। बालबिखरें सौगात नयी (210), सुखी रेतीली धमनी, लाज अनजानी, नये अयाने बादल, (211), गहराते उद्याम हठीले (212), उजली सूनी सीपी (214) धनसार तमिस्र (217), निलज लम्बी छाँह, निर्व्यास दूरी (219)। झाँकती गिलहरी (225),

<u>हरी घास पर क्षण भर :–</u>

अज्ञेय की कविताओं में बिम्बधर्मी विशेषणों का प्रचुर मात्रा में प्रयोग हुआ है। इससे उनकी भाषा अर्थवान हो जाती है। इस संग्रह की प्रायः हर कविता में बिम्बधर्मी विशेषण आये हुए हैं। अज्ञेय के विशेषय प्रायः दो प्रकार के हैं। एक तो संस्कृत से लिए गए हैं जैसे अश्रृंखल, दूसरे तद्भव विशेषण है, जैसे अथिर। कुछ व्यंजक विशेषणों का प्रयेग भी अज्ञेय ने प्रभावशाली ढंग

से किया है, जैसे कसमसाते। उनके द्वारा प्रयुक्त कुछ बिन्बधर्मी विशेषण नीचे दे रही है अश्रृंखल दुर्बाध्य बासी, अधिर यायावर, चिर प्रवासी शिशिर भीगी रात (पृ0–13) मुक्त जीवन, दुर्दान्त एक पुकार, खुले हाथों (पृ0–14), ऐन्द्रजालिक चेतना, आडिग विश्वास, स्थिर विस्तार, तप्त लालिम शिखें, जगते उजाले, प्रखर स्वर (पृ0–16)। प्रिय वदन अनुरक्त (पृ0–18)। चिरन्तन जागता, सतत

विद्रोह, स्तब्ध अन्तरतम व्याकुल शब्द निर्झर, आक्षितिज नीला आकाश (19)। खुलती आँख (25), दृश्य पानीदार (26)। कसमसाते रुद्ध

सागर, बुझी फीकी चाँदनी, लालगुच्छ बुरुस, गीली टूब (27), विहग शिशु, डगर चढ़ती उमंगे, (29) जाल से उन्मुक्त (30), अनकही कुल व्यथा (32), लजीली शेफाली, मालती अनजान, भीगी गन्ध, झीना जाल, शुभ चाँदनी (36)। उजली लालिम मालती (37) स्फटिक नील सलिलाओं, उमगी काक्षायें रेगारंग फानूस, पैर अटपटे (38), अडराता है कागा, श्याम सुरीली (39)। ढँके दुलमुल गँवारु, लहराती अल्हण अमानी संस्कृति (41) बैठा निठल्ला (42), सिसकती याद, टूटा दिल (45), कच्चे अपात्र, उफनती छालियों में (45), कामरुपिणी वासना, गुथीला व्योम ग्रासीधुआँ आततायी दृप्त दुर्दम प्यार (46). मुग्ध प्राण (48). रवहीन दीन बगुलों की डाक (49), सामाजिक अभिव्यक्ति (51), मौन समाधि (52), महाशून्य आकाश, मेघ क्वार के हिमशीतल दुनिया (53), अच्छी आत्मा (54) पुरानी कुप्पियों (55), कलगी छरहरी बाजरे की ललाती सांझ (57), बिछली घास, सेने गगन, पालतू मालंच, संवरी जुही, दोलती कलगी अकेली, वीरान संसृति (58). अधुनातन मानव मन, हरी घास, कटी–छटी बाड़ (59), दुर्वा मेधाली, गड–मडु अकुलाहट भीतर के सूने सन्नाटे, लोल लहर (60), तिरती नाव, श्वेद से जीम अलक लट, अधजानी बबूल की धूल, सूर्य डूबता धीरे–धीरे, चमकीले पत्थर (161) दबी बासना (62), मसृण ध्वान्त (63). बृहद भूखण्ड (66)। बावरा अहेरी :

अन्य संग्रहें की समान इसमें भी कवि ने बिम्बधर्मी विशेषणों का प्रयोग प्रचुर मात्रा में किया है प्रायः सभी कविताओं में बिम्बधर्मी विशेषण मिलते हैं

अभ्रभेदी शिलाखण्डों के गरिष्ठ पुंज (11), औघड़ तुम्हारा दान (12), बावरा अहेरी (16), दुबकी कलौंस, विफल दिनों, कनक तार (17). सूखी खाल, ढ़ीली देह, मलय का झोंका, दूर की पुकार (18), ठीठ समीरन, करूण, कथा, चमकीली टिटिहरी (22), चकित मृगी, अल्हड़ मान, पानी अटपटे पैरों, कम्पित भूरास, सलज्ज मर्मर, शीलनम्र ओत्सुक्य सजग (23) उछवसित हास (24), हवा के स्वर बंदी, लम्बाइत परछांई, आकाश अधूरा (25), दूज का चांद कटीला (26)। हंसी अतर्कित, अवसन्न भाव, हिल्लोलित सागर (27), सहमी उसांस, सूने कोने, अन्धा विश्वास, उदास सने कोने (29), मुग्ध शिशु (30), स्थिर आँखों, पत्रहीन सूखे पेड़ों, हारी हुई लालिमा, अकेला तारा (32) प्रपातित विन्दुओं पहली किरण, फेली धुन्ध, आखिल संसृति दो मानसों (33), रुप

स्पर्शगीत (35). उन्नीत शक्ति आत्मा, मध्य बीज ब्रीडाहीन इस कान्ति को (36), ज्वाला अपराजिता अनावृता (37) अंधेरी रात, अनजानी ओस–बूँद, नया बीज (39) तोतापरी खेत गेहूँ के. पुराने इन कंधों पर, जर्जर डोरी उपयोगी थिगलियाँ (40), सैकड़ों पीठियाँ, उड़ रहा खिलाड़ी, बड़े शहर (41), शोषक भैया, रक्त मीठा रक्त ताजा, लहर भी ताजा और शक्तिशाली (42) अलोक मंजूषा, आक्रान्त ध्रुव अभिराम, आत्म अनुशासन नया यह युगों के स्वप्न, अभिनव सम्य भारत (44), सच्चे विधायक नतशीश धीरज, सच्चाकृती, स्तमित चिर संस्कार (45). असंख्य तारे (49), खड़े रहे उदग्रीव (51), आक्षितिज तम, लजीली घोर रश्मि, हिमाहत नलिनी, प्रगल्मा मानमयी (52), कँपती उगलियाँ, आँख पथराई, गंघ लोभी व्यस्त मौना (54), घने कुहाँसे, झिपते चेहरे, कुमुद ताकते अनझि (56) निथुर, समीर विथुरे सुवास, विदग्ध उर, दुर्निवार मेघ (59), हरहराती इस लहर को (60). यह दीप अकेला स्नेह भरा, गर्व भरा मदमाता, आग हठीली, अमृतपूतपय (62). यह सदा द्रवित अपनापा, जिज्ञासु प्रबुद्ध श्रद्धामय (63) सुख की स्मृति कसक भारी (64)।

इन्द्र धनु रौदें हुये ये (सदानीरा भाग–1 से उधुत)

इस संग्रह में भी कवि ने बिम्ध धर्मी विशेषण का प्रयोग किया है सुन्दर दिन, छाटा–सा पल–छिन, निःसंग समर्पण, अविरल अन्तःसत्व, अद्‌वितीय जलजात (264), दाईमारे खानाबदोश (265). वह तपः पूत, तपः कृशा, अखण्ड आस्था (266) हास्यारूपद ममता, निष्ठुर हवा, उर्वर मिट्‌टी, कुसमित पल्लवित हुए स्वप्न कल्पीलोक–मानस (271), सतरंगी सेतु, प्रवाहमयी नदी, चिर परिवर्तन शीला सागर झोंका इतराता झलमलाते ताजमहल (272), चापहीन एकलव्य (273), वशातीत विष (274), लाख–लाख मछलियाँ, विषैला वनैली हिंस्र जन्तु बहली हवा, भेले विश्वास (275), चिकनी अरूणाई, मूक गाने, अनपहचाने अभिप्राय, लोकोत्तर सुख (276), तीखे क्रंदन (277), बुदबुदाता अंधकार, सीमा हीनकाल (285), अटपटी लाली (280) स्थिर निष्ठावान् कुहासे (281), खड्‌गहस्त दसियों, सुरभिन्यूत स्वर्थ, कल्पित अमरता, विविक्त अद्‌वितीयता, प्रवहमान व्याप्त सम्पूर्णता (282). अजस्त्र अद्‌वितीय क्षण दुर्दमनीय हाथ, विकिरित शक्ति (285). अन्तहीन अकूल अथाह सागर, सनसनाता पवन (286) अनगिन किरीटों, मुखर आवाहन गम्भीर अर्थवती डगर (287) मधुर कुहासा, तनाव–भरा सन्नाटा, निबुद्धि हंसी (288) रूपहीन आलोक, ऊजली बादल–सेज (289) अविश्राम उद्‌यम, रासायनिक धुन्ध आकांक्षा भरी हमारी अंगुलियां (296), अनासक्ति, परिमिता (299), सिहरी हवा, लहरियां, कापी (300) सुविस्तृत भूमि, इकली व्यथा, सद्‌यः उपलब्धि (31) लालनम, निर्मम बल, (302)।

आंगान के पार द्‌वार

वे सब धुले पुंछे, उघड़े अवलिप्त, खुले गले, मुख स्वरों, अति प्रगल्भ अर्थहीन जल्पक, मैला उजला, धुंधलाती आंखें, अधिकाधिक हकलाता (11) अपार शोभा, सागर–विस्तीर्ण, प्रगाढ़, नीला, ऊपर हलचल से

भरा, नीचे अगाध असंख्य दबावों, तनावों खीचों और मरोड़ो को अपनी द्रव एकरूपता में समेटे हुए, अखण्ड, स्यैर्य (12), उछली हुई मछली, अविरल सूक्ष्मता, अगाध नीलिमा, अन्तन्त प्रगाढ़ नीलिमा (13) अन्तहीन उदीषा (14), मतियाया सागर लहराया, हरी बालियां (15), आंकी–बांकी रेखा, मनःपूत (16) अर्थहीनीतर भीड़ (18), पग रोष–भरे, अनोखाअंकुर (19), वैसा अभिसंचित अभिमंत्रित सघनतम संगोपन, निर्जन किनारा, उत्ताल लहर, (21). घेरते–घूरते टेरते लोग, अन्तरंग चेहरा हेरते अगोरते लोचन, अचंचल जल (22). शीलवान तरुओं, अनजानी राहें, छनी हुई धूप, सुनहली कली, लघु अनी, ममतामयी बाहें

(23), सूने गलियारे, पीली मन्द उजास थकी हारी सांसें नंगी काली डाली, उजला पंछी (25), सूनी सी सांझ, सांवली छांह, मद्धिम अरुणाली, (27), सच्ची लुनाई, बांझ अनुकम्पा (28), वही अनामय निर्विकार चिर सत्व, ज्योति शिखा, शुभवृत्त, पल–पल जलता जीवन, (29), स्तब्ध चरित सी वाणी, फटी छीनी (32), अगाध पारावार, लहरीला मगर बेटूट सुखी रेत, अनजाना पन्थ (34), अन्ततः सलिल है रेत (35), वासना थरथराती, जीवनमुक्त मैं कौतुक नरा बाल क्षण (36), मौन नदी, एक अनिर्वच छनद मुक्त (39) अधूडचे अवसान के स्वर, एक भव्य मन्द्र गंभीर बलवती तान, घना . सन्नाटा, चिरंतन प्राण (41), मैं बज्र कठोर (42), काले घोल स्वप्नातीत रूपातीत, पुनीत, गहरी नींदें, (43), सन्नाटे की कनबतियों, धीमी रहस सुरीली (44),आयत्त करने की आकांक्षा (45),वह अनजाना, अनपहचाना (46), स्फीतिइयत्ता, रूपाकार सारमय, मेरे अनजाने, अनपहचाने, अपने ही मनमाने अंकुर अपजाती है (47). गहरी वापिका (49), नीरन्ध तुम्हारी करूणा (50). तीखी कूक, गीली–पीली रेती, निर्मम प्रकाश (45), कन्या भोली क्वारी, मृदुतर कौतूहल सम्भ्रम अवगुण्ठित अंग (52), प्रियतम धीर, मनचली सहेली दीठबेबस अविश्रान्त गति, वह इसलिए निरत्र निर्वसन, निस्साधन निरीह (54). सब कुछ को सहलाती दुलारती असीसती (55), गोपन लज्जा सब पडा–पडा कुम्हलाया (56), तू और विशद अभ्रान्त (57). निर्बयक्तिक प्यार, पारमिता करुणा (59). बनने मिटने के कल्प, अन्तहीन क्रान्ति, बीहड काली एक शिला (60). झुका माथा ऊंचा (61). ओ निच्छाय, अरुप, अप्रतिम, प्रतिमा, ओ निःश्रेयस स्वयं सिद्ध (65) निविइतम उकान्त, स्वेच्छया आहूत, सद्यः धौत अन्तः पूत बलि अनसुलझ संस्तृति, तीक्षणतम निर्मम अमोघ, प्रकाश सायक (66).

1 जो कुछ सुन्दर था. प्रेम काम्य, जो अच्छा, मैजा–नया था, सत्य–सार,

मैं बीन–बीन कर लाया।

पृष्ठ सं0 56

2– मैं कवि हूँ द्रष्टा, उन्मेष्टा सन्धता, अर्थवाह

मैं कृतव्यय।

पृष्ठ सं0 57

3– तू काव्य : सदा वेष्टित यथार्थ चिर–तनित भारहीन, गुरू, अव्यय कितनी नावों में कितनी **बारः पृष्ठ सं0–57**

अज्ञेय के काव्य में बिम्बधर्मी विशेषणों का प्रयोग पर्याप्त मात्रा में हुआ है। इस संग्रह में भी बिम्बधर्मी विशेषण प्रयुक्त हुए हैं। कुछ बिम्बधर्मी विशेषण नीचे दिये जा रहे हैं थोडी मिठास, तनिक हरियाली, थोड़ा खुलापन, सिहरन भर उल्लास, आंख की झपकी भर असीमता, गंधवाही मुक्त खुलापन, निर्व्यास निस्सीम (1) अनदेखे अरूप, विविध अनुभव, स्वर अचकचाया (2), अम्बा तिमिरमयी, गान भी है अमोघ अनिवार्य, यह एकोन्मुख तिरोभाव (4), पूजा क्षण (5), तीखी आलोक–कशा, तिलमिलाते पैरों, मैं अनवरुद्ध अप्रतिहत, शुचस्नात (6) मर्यादातीत अधर (7), छोटी सी ज्योति, डगमग नाव, छोटी से रूपहली झममल, मैं धीर आस्वस्त अक्लान्त, अनबुझे सत्य, नंगा तीखा निर्मम प्रकाश, चौंधियाते हैं तथ्य, अन्तहीन सच्चाइयां, मुझे खिन्न विकल संत्रस्त (8), बड़ी अजनवी दुनिया, अविराम भीड़ (9). थोड़ा सा जल,

बहुरंगी उद्भिज समूह, केकड़ा एक, आंख–ठंडी, निष्प्रभ–निष्कौतूहल–निर्निमेष (11). उस उदासीन ने अलक्ष गति (12). मुंह लटकाये, रिरियाता कुत्ता, लड़खड़ाती टांगे, जाने अनपहचाने सब, दुर्गम निर्मम अन्तहीन उस ठंडे पारावार से (14) मद्धिम लालिमा (15) निर्व्यास तेजस, हेममज्जित उगलियां, निर्वाक मैंने , निश्छल उल्ला, निश्छल निस्तल गहराइयां, पारदर्शी लहरें, सिहरती पत्तियों, अनमनी झरती, पीली प्यालियां (17), असंख्य रसातुरा शिरायें, अगहन पकाता, फागुन लहराता, नैसर्गिक चक्रमण, अविराम–अक्लान्त–अनव्यापित तुम्हें (18), स्मृति अभिभूत (19), अयश कठोर छाप, तुम मायाविनि काम रूपा, तुम तरल हो वायवी हो (20), पर्वती घराट् एक अविराम, आवांस्वतः

अनुभूति, अजस धारा (21), असंख्य माया मूर्तियां, पियूषवर्षी– अनवद्य–अद्वितीय धार, मन्त्राइत ओ प्रियस्य मेरी (22), धधकते क्षण आाविष्ट जिव्हा, स्वयं प्रतिष्ठित, अमर्त्य कालजित हूँ, दिक प्रबुद्ध लक्ष्य सिद्ध (23), मेरी यह तितीर्षु मेरी सहयायिन, मेरी सहधर्मा (24), दुःसम्य धधक, परस्परपोषी है, परस्पर जीवी है, कोटि–कोटि लहरों (25), फिरते न फिरते सुगन्ध (27), हरियालियों छाई हें (28), मर्माहत उलाहना, (29), पहली चीख सनातन क्रान्ता, आजीवन ममता (30), नई नियति, हमें निरन्तर आमरण अविराम, अनाकुल–उन्मुक्ति, गहरा उल्लास (31), समूचे अस्तित्व, प्यासी गागर, अतर्कित पहचान (33), अन्तहीन खड़गधार, नर अकेले समूहगत (34), उत्तर वासन्ती दिन, बोली हे ठिठकी–सी (35), अंगारे से डह–डह निःशब्द गाऊंगा, थके हारे दिन, लहलह सब पर छा जायेगी (36), चुप सन्नाटे में, अकेलापन और मालूमियत (39), यह अनपहचानी सुरसुराहट (40), सैकड़ों घुसपैठियों, नामहीन–स्वरहीन अप्रत्याशित–अतर्किक भी, जाज्वल्यमान कर्मों, अलौकिक संगीत, सुरसुराते चुप में सघा हुआ तार (41) रिरियाती पुकरी, मैं मामुली–अकेला–दुर्दम अनस्वर आश्वस्त गूंजती मेरी मामूलियत, वयस्क स्वाधीन सबल प्रतिमा मण्डित अमर और हमारी तरह अकेला (42), लचकीले बुलबुले नकली रंगत, नकली बालाई (43). एक व्याप्त मामूलीपन का स्पन्दन (44), हृदयस्पन्दन तीव्रतर (49) चिरंतन छिने जाते हुये फिसलती जाती हुई भावना, बेमौसम की बरसात (50), सब कुछ सांय सांय गुंजता, शोर में संयत स्वर (51), इस नये जन्मे–नये जागे–अपूर्व अद्वितीय–अमागे मेरे पुष्पगीत (52), सीमाहीन अवकाश, सोन मछली, अन्तहीन–अर्थहीन सागर (53), कुठित अशमित प्रेत, दलदल में फँसी हुई मौत, अध दिखती ऊँचाइयाँ (54), अनोखी रंगशाला चिकनी सहलाहट, हिमचोटियों पर छाये हुये बादल, टुटे हुये कगारे, मानवी दायित्व, लोलुप पुकार (55), बच्चे किलकते, नारियां दुलारती हैं, अधिक शीतल (56), धीरे दृढ़वती दिकपाल (57), झझरे मटमैले प्रकाश, रंगबिरंगी हर गली, निराधार नर, पिघलती सुलगन (60), अंगार–कगारी तमोनदी (61), आग सी नंगी निर्ममत्व, दुःसह सच्चाई (62), मन उलझते रहें (63), कांपता गिरता चम्पे का फूल, ओट भवरती धीमी बिजली (64), कहा अनकहा जीवन, पुरानी संधिवाणियाँ, आदिम सच्चाई, मडराते संचित, अनिष्ठ उन्माद भ्रान्तियाँ (66), पिछले महायुद्ध, बैढंगे झंखाड़ों, चौकाठ रहित खूँटियाँ (68), अन्तहीन कुकुरमुत्ते, अग्निगर्भ बादल (71), डरावना झड़, नीड़ पर पुकारें (72), स्पर्श चुंबन, चढ़ती उतरती लहरें (73)

कहीं कहीं कवि ने बिम्बधर्मी विशेषणों की झड़ी लगा दी है। नीचे दो उदाहरण दे रहा हूँ

1. यह अकेलापन, यह अकुलाहट, यह असमंजस, अचकचाहट, आर्त अननुभव, यह खोज, यह द्वैत, यह असहाय विरहव्यथा। पृष्ठ सं0– 2
   मेरी आँखों के तारे,
2. मेरे आलोक–स्नात, पत्रस्थ जल–बिन्दु, मेरे कोटि लहरों से मँजे एकमात्र मोती
   ओ ध्रुव, ओ चंचल,
   ओ तपोजात,
   ओ विश्व–प्रतिमा, पृष्ठ सं0 25

क्योंकि मै उसे जानता हूँ :

रोम उमगाती (3). आलोक से विभोर (6), आलोक निर्भान्त, गहनतम निविडितम एकान्त (1), टूटी समाधि, छटपटाते प्राण (11), नंगे शब्द, लघर आन्दोलन, फटीचर कवि, पारम्परिक कलायें (12), जटिल सलीब (13) अनकहा संकल्प, ऐलानिया डींग (14), सिनेमाई प्रयाण गीत (15), अनजाने सागर, बेलाग बात, मैं अबध्य (17). तीनडग (19), पमेल भीड़ (20). दूर के व्यापारी, छटपटाती शिखायें, माल जिवित–गन्धित–स्पन्दित, शब्दातीत दर्द, चरम अपमान, चरम जिजीविषा (22), लम्बी भूख, बढ़ी हुई तिल्ली (25). सन्दिग्ध गौरव, भरापुरा खानदान (27), राष्ट्रीय राजमार्ग, पछाही भैंस, तेज दौड़ती मोटरें लारियाँ, स्थिर चितवन, प्रादेशिक पशु अन्तार्राष्ट्रीय करम कल्ले (28), आत्मनिर्वासित (29), अन्ध कन्दराओं, कच्चा धातु (31), सच्ची सीख (33), विचारा भारवासी, लुजलुज भारतवासी, डॉगर पशु असमय मृत आशा शिशु (34). धर्म निरपेक्ष, जाति निरपेक्ष भारतीय लोकतंत्र (35). लुटे हुए दिल (37), कम्बख्त मानव, दबी हुई चिनगारियाँ (38). रासायनिक साँपिनें, विषैले धुएँ झुलसते आकाश, एक जमुहाता विवर (39), अजर अजस श्रृंखला (40), बचकाने मोह, वासना में डूबे (50), उमडता एक ज्वार, मिली जुली चहचहाट (52), मीठी नशीली धुंध, अगाध–अबाध करूणा (53), लुब्धभाव (54), आकृतियों धुँधली, अनपहचानी औषधि, लम्बा सपना, अनोखा सुख, चाँदनी अलक्षित उपेक्षित (59), असाढ़ की पहली बरसात, ठठाती हँसी, पहला उजला गाला (63) सहमा हुआ सन्नाटा, चौकी हुई झपकी (68). प्रत्येक मर्मस्थल, कुशल निष्कम्प अचूक वार, अमोध दाँव (70). पहाड़ी काठघर, अनभोली महक (72) स्निग्ध छाँह, पथरीले मन कगार (75) मधुरतम भाव (77), भोला अनभोला सपना (79). अतर्कित उपेक्षा (80). अमोघ बाध्यता (81)।

ऐसा कोई घर आपने देखा है :

क्योंकि मे उसे जानता हूँ :

रोम उमगाती (3). अलोक से विभोर निर्भान्त, गहनतम निविडितम एकान्त (1), टूटी समाधि, छटपटाते प्राण (11), नंगे शब्द, लघर आन्दोलन, फटीचर कवि, पारम्परिक कलायें (12), जटिल सलीब (13) अनकहा संकल्प, ऐलानिया डींग (14), सिनेमाई प्रयाण गीत (15), अनजाने सागर, बेलाग बात, मै अबध्य (17). तीनड (19), पमेल भीड़ (20). दूर के व्यापारी, छटपटाती शिखायें, माल जिवित–गन्धित–स्पन्दित, शब्दातीत दर्द, चरम अपमान, चरम जिजीविषा (22), लम्बी भूख, बढ़ी हुई तिल्ली (25). सन्दिग्ध गौरव, भरापुरा खानदान (27), राष्ट्रीय राजमार्ग, पछाही भैंस, तेज दौड़ती मोटरें लारियाँ, स्थिर चितवन, प्रादेशिक पशु अन्तर्राष्ट्रीय करम कल्ले (28), आत्मनिर्वासित (29), अन्ध कन्दराओं, कच्चा धातु (31), सच्ची सीख (33), विचारा भारतवासी, लुजलुज भारतवासी, डॉगर पशु असमय मृत आशा शिशु (34). धर्म निरपेक्ष, जाति निरपेक्ष भारतीय लोकतन्त्र (35). लुटे हुए दिल (37), कम्बख्त मानव, दबी हुई चिनगारियाँ (38). रासायनिक साँपिनें, विषैले धुँए झुलसते आकाश, एक जमुहाता विवर (39), अजर अजस श्रृंखला (40), बचकाने मोह, वासना में डूबे (50), उमड़ता एक ज्वार, मिली जुई चहचहाट (52), मीठी नशीली धुध, अगाध–अबाध करुणा (53), लुब्धभाव (54), आकृतियाँ धुँधली, अनपहचानी औषधि, लम्बा सपना, अनोखा सुख, चाँदनी अलक्षित उपेक्षित (59), असाढ़ की पहली बरसात, ठठाती हँसी, पहला उजला गाला (63) सहमा हुआ सन्नाटा, चौकी हुई झपकी (68). प्रत्येक मर्मस्थल, कुशल निष्कम्प अचूक वार, अमोध दाँव (70). पहाड़ी काठघर, अनभोली महक (72), स्निग्ध छाँह, पथरीले मन कगार (75) मधुरतम भाव (77), भोला अनभोला सपना
(79). अतर्कित उपेक्षा (80). अमोघ बाध्यता (81)।

ऐसा कोई घर आपने देखा है :

इस संग्रह में कवि ने बिम्बधर्मी विशेषणों का प्रचुर प्रयोग किया हैं। नीचे मैं इन्हें दे रही हूँ अनबोल (9) कसमसाती उमस, उपड़ता अनल–रस (14) दमड़ी भर दान (15). धीमे आती

सहलाती, हम सहमे थमे वह आयी आँचल लहराती, तृषा ओर गहराती भरमाती सिहराती (23), असली अंधापन, उदासीन स्वीकार भाव (25), अन्ध अहम्, नकार मुद्रा, ज्वाला ढेंकी हुई (26), सुन्दर यान, संवेदन भरी उँगलियाँ, भुरभुरी राख, गुन्जाती रीरव (28), रक्त बीज प्राण, प्राणलेवा आग (31), स्वेच्छित मानव रक्त (32), ठंडे शीतल भरे घेरे, गीली छाँह (34), उर्ध्व मुख गति, असीमोन्मुख प्रवाह (35), उन्नत स्रोतस्विनी (36) घिसटे पैर, मनमसोस आहें (37),
थस्थराती छातियाँ, अतिथि तेजोपुंज (43), वह अभी अ अवगुक्ति, गौन, अकेली चिड़िया (51). एक अभिमंत्रित परिमण्डल (55), तितलियाँ हैं पीली चमकीजी, दोलती हवायें, नाचती प्रकाश किरणें, मुक्ति प्रदा स्मृति (58), आलोक रची प्रतिभा, शिथिल अंधकार (67), मुक्ति की देहरी है प्रकाशमान (60), व्याकुल भाव (67), अनध सनातन जयी (70), रवडीनता को सघनतर कर दे अंधेरा, चित्रज्योति प्रकाश (71), सदियों का सन्नाटा (73)। एक स्थल पर कवि ने कई बिम्बधर्मी विशेषणों का प्रयोग किया है– केवल
बेली
रही
अप्रतिम
गुणातीत
आप्लवनकारी पृष्ठ सं0 45 अज्ञेय ने अपनी कविताओं को बिम्बधर्मी विशेषणों का पर्याप्त मात्रा में प्रयोग किया है। '' इत्यलम्'' से लेकर ऐसा कोई अगर आपने देखा ताकि कविताओं में बिम्बधर्मी विशेषण मिलते है इन विशेषणों में कहीं चित्र विधान हुआ है कही मूर्तिकरण की प्रवृत्ति परिलक्षित होती है कहीं मनोभावों और मूल्यों की अभिव्यक्ति होती है अज्ञेय की कविताओं में प्रयुक्त हुये बिम्बधर्मी विशेषणों से उनकी भाषा अर्थगर्भित हो जाती है इन्हें दो वर्गों में हम बाट सकते है एक प्रकार के विशेषण संस्कृत से लिये गये हैं जैसे अश्रृंखल दूसरे प्रकार के विशेषण तद्भव हैं जैस–अथिर प्रयोग की दृष्टि से इत्यलम् इन्द्रधनु रौंदे हुये ये अरी ओ करूणा प्रभामय आगन के पार द्वारा कितनी नावों में कितनी बार आदि संग्रहों में बिम्बधर्मी विशेषण अधिक प्रयुक्त है अज्ञेय कहीं एक ही विशेषण का प्रयोग करके मूर्तन कर देते है। जैसे पागल झंझा अथक स्नेअ अविरल कोलहल आदि। कहीं कहीं कई बिम्बधर्मी विशेषणों को वे ला देते है जैसे आलोकित, रंजित, दिप्त हिरण्मय, रहस्यवेष्टित, प्रभागर्भ जीवनमय। इस प्रकार की प्रवृत्ति आंगन के पर द्वार में अधिक है कितनी नावों में कितनी बार के अर्न्तगत भी वे कई कई विशेषणों का एक साथ प्रयोग करते हैं जैसे मेरे आलोक स्नात, पद्य पत्रस्थ जल बिन्दु, मेरी आंखों के तारे वो ध्रुव, ओ चंचल, ओ तपोजात, ओ कोटि–कोटि लहरों में मैंजे एक मात्र मोती।

संन्दर्भ–ग्रन्थों की सूची

अज्ञेय के काव्य संग्रह :

1. भग्नदूत
2. चिन्ता
3. इत्यलम्
4. हरी घास पर क्षण भर
5. बावरा अहेरी
6. इन्द्रधनु रौंदे हुये ये
7. अरी ओ करूणा प्रभामय
8. आँगन के पार द्वार

9. पूर्वा
10. सुनहले शैवाल
11. कितनी नावों में कितनी बार
12. क्योंकि मै उसे जानता हूँ
13. सागर–मुद्रा
14. महले मै सन्नाटा बुनता हूँ
15. महावृक्ष के नीचे
16. नदी की बाँक पर छाया
17. सर्जना के क्षण
18. ऐसा कोई घर आपने देख है
19. चुनी हुयी कवितायें
20. सदानीरा : भाग–1, भाग–2।

सम्पादित ग्रन्थ–

1. आधुनिक हिन्दी साहित्य
2. तार सप्तक
3. दूसरा सप्तको
4. तीसरा सप्तक
5. चौथा सप्तक
6. पुष्करिणी
7. नये एकाकी
8. नेहरु अभिनन्दल

सहायक ग्रन्थ :–

1. आधुनिक हिन्दी कविता में बिम्ब–विधान– डॉ0 केदारनाथ सिंह
2. आद्य बिम्ब और नयी कविता– कृष्णामुरारि मिश्र
3. प्रयोगवाद ओर नयी कविता– डॉ0 शम्भूनाथ सिंह
4. काव्य बिम्ब–डॉ0 नगेन्द्र
5. दि पोयटिक इमेज– सी0डे0 लेविस
6. संस्कृत–इंग्लिश डिक्शनरी– गोनियर निवियम्स
7. रस मीमांसा– आचार्य राम चन्द्र शुक्ल
8. संस्कृत साहित्य का इतिहास–बलदेव उपाध्याय
9. हिन्दी साहित्य का इतिहास–आचार्य रामचन्द्र शुक्ल (सोलहवाँ संस्करण)
10. साहित्य–दर्पण– आचार्य विश्वनाथ––––––––––––

ISSN : 2319-7137, Volume: 15/Issue: 01, January-June : 2022

हिन्दी कहानी की भाषा तथा बदलता स्वरूप

विजय लक्ष्मी गुप्ता
शोध छात्रा
हिन्दी विभाग
कूबा स्नातकोत्तर महाविद्यालय दरियापुर नेवादा, आजमगढ़

(क) कथ्य

'' पछले वर्षों में जीवन की गति अनपे क्षत रूप से बढ़ी और परिणामस्वरूप बहुत कुछ बदला। इस बदलाव को चीजों के साथ के , आदमी के साथ के , समय के साथ के , हमारे बदलते हुए सम्बन्धों में देखा जा सकता है। बड़ी इकाइयाँ छोटी इकाइयों में बँटती चली गयीं- कभी जोड़ने वाले सूत्र के निर्जीव हो जाने से , कभी दरारें पड़ने से तो कभी उतनी बड़ी इकाइयों को सँभालना असम्भव हो जाने से। एक तरफ तो समूची दुनिया आदमी की पहुँच के दायरे में आती गयी और दूसरी तरफ आदमी अपने दायरे में समटता गया। वज्ञान की नयी स्थापनाओं के साथ यथार्थ सापेक्ष हो गया , नतीजतन जटिलतर होते उस जटिल यथार्थ को जीते-जागते मनुष्य के उलझे अनुभव के रूप में खोजने और पाने का प्रयत्न हिन्दी कहानी में भी कई वर्षों से हो रहा है। इसको लेकर ढेरों आंदोलन तथा बहसें चलती रही हैं।''

डॉ. पुष्पपाल संह इस आन्दोलन की महत्त्वपूर्ण कड़ी हैं। उनकी स्वीकारोक्ति है क ''समकालीन कहानी का यथार्थ आज अत्यन्त वस्तृत और व वधवर्णी है। जीवन की कोई समस्या और क्षेत्र नहीं छूटा है , जहाँ रचनाकार की दृष्टि नहीं गयी है। सामाजिक प्रतिबद्धता सामान्य मानव की पक्षधरता तथा इस पक्षधरता से प्रेरित होकर जिन्दगी के व भन्न मुहानों पर लड़ी जा रही उसकी लड़ाई में सहभा गता आज कहानीकार के कथ्य के प्रमुख सरोकार हैं।''

स्पष्ट है क समकालीन रचनाकारों ने परम्परागत यथार्थ को अस्वीकृत कया तथा अतियथार्थवादी दृष्टि को अपनाया है। अतः यहाँ यह समझ लेना आवश्यक है क अतियथार्थवाद क्या है ? वस्तुतः ''यथार्थवाद तथा प्रकृतवाद की भाँति ही अतियथार्थ का जन्म भी फ्रांस में हुआ। इसे प्रथम महायुद्ध की वभी षका-जनित निराशा का परिणाम माना जा सकता है। अतियथार्थवाद , यथार्थवाद का ही एक अतिवादी रूप है। जिस प्रकार यथार्थ की चरम अ भव्यक्ति प्रकृतवाद से हुई, उसी तरह प्रकृतवाद की चरम परिणति है-अतियथार्थ। निराशा एवं तद्जनित कुंठाओं की व वधरू पणी अ भव्यक्ति ही इस प्रवृत्ति का मनोवैज्ञानिक आधार है। फ्रायड के अवचेतन वज्ञान ने यह सद्ध कर दिया था क जनसामान्य की अ धकांश इच्छाएँ अनेक आ र्थक एवं सामाजिक कारणवश पूरी नहीं होतीं ; फलतः वे अचेतन मन में पहुँचकर व्यक्ति के व्यवहार में वकृति एवं असामान्यता उत्पन्न कर देती हैं। '' अतियथार्थवादी कहानीकार इन्हीं वकृतियों एवं वद्रूपताओं का प्रकाशन अपनी कहानियों के माध्यम से करता है। स्पष्ट है क वह सामाजिक या सांस्कृतिक मूल्यों में वश्वास नहीं रखता , ईश्वर पर भी उसकी आस्था नहीं। असंतुलन और असंगतियाँ, वीप्सा और नग्नताएँ ही उसकी कला की मेरुदण्ड हैं। परिणामतः अतियथार्थवादी कहानीकार अपने साहित्य को मानव-जीवन के वकृत एवं घिनौने चत्रों की प्रदर्शनी बना देता है।

कथाकार जयनंदन भी स्वीकार करते हैं क , ''कथा साहित्य के सरोकार समय की चुनौतियों और संक्रमणों से ही तय होते हैं। समय तेजी से बदल रहा है , तदनुरूप कहानियों को भी ढलना और बदलना जरूरी है। मोबाइल, एस.एम.एस., ई-मेल, चैटिंग और खबरों के लाइव प्रसारण का यह युग निश्चित रूप से प्रेमचन्द के

युग से काफी अलग हो गया है। कई बार ऐसा लगता है क मानवीय संवेदना के उत्स और दुख-सुख के कारण भी परिवर्तित हो गये हैं। प्रेमचन्द को जो चीजें वच लत करके कहानी के वषय में ढल जाती थीं ; अब वे चीजें समकालीन लेखकों के मर्म को उद्वे लत नहीं कर पातीं। इधर कई वर्षों से खा लस गरीबी , भुखमरी, बेरोजगारी पर केन्द्रित कोई कहानी नहीं आयी। जब क ये तीन पहलू ही सारी समस्याओं की जड़ हैं। देश का ज्यों-ज्यों जी. डी. पी. बढ़ रहा है, गरीब और गरीब हो रहे हैं तथा सारे उद्योगपतियों की आय में दो सौ से चार सौ प्रतिशत की वृ द्ध हो गयी है। '' अर्थात् अमीरी और गरीबी के बीच की खाई निरन्तर चौड़ी होती जा रही है। आज का तथाक थत नागरिक इन स्थितियों को देखकर वच लत नहीं होता है। उसकी तो स्पष्ट धारणा है क , ''देश अमीरों से चलता है, चूँ क वे टैक्स देते हैं और देश के लए कपड़ा , लोहा, तेल, गैस आदि का उत्पादन करते हैं। गरीब आदमी देश पर बोझ है, वह देश को देता कुछ नहीं, सर्फ लेता ही लेता है। स्पष्ट है क मोबाइल और ई-मेल वाली आज की नयी नस्लें दया , प्रेम और करुणा जैसी अनुभूतियों को बेमानी समझने लगी हैं। वे अब रिटायर हो गये बूढ़े माँ-बाप को छोड़कर वदेश में बस जाने को कोई समस्या नहीं मानते। '' तो यह है तथा-क थत समकालीन सजग नागरिक की सोच , जो पूर्णतः आत्म केन्द्रित है। आज के साहित्य में इन बदलते सन्दर्भों की छायाएँ साफ-साफ उभरकर आने लगी हैं। आधुनिक कथाकारों के कथा-साहित्य में इन छायाओं का चत्रण अतियथार्थवादी शैली में हुआ है। उदाहरणार्थ उदय प्रकाश की च र्चत कहानी 'दिल्ली की दीवार' का यह अंश देखा जा सकता है, जिसमें महिला सशक्तीकरण के इस दौर में शहरी महिलाओं की स्थिति का यथातथ्य निरूपण कया गया है , ''सोलहवीं सदी के उसी खण्डहर में राजवती की बहन फूलों , आजादपुर सब्जीमण्डी के निकास फाटक पर मूँगफली बेचने वाले जगराज की पत्नी सोमाली और लाल कले के आस-पास चरस बेंचने वाले मुश्ताक की फुफेरी बहन सलीमन, जो अब उसकी पत्नी भी थी, रहती थीं। वे तीनों धन्धा करती थीं। सोमाली तो खण्डहर में ही रहकर , वहाँ अक्सर आ जाने वाले स्मै कए- तिलक , भूसन और आजाद के लाए हुए ग्राहकों को निपटाती थी ले कन सलीमन और फूलो शाम को रिक्शा लेकर सड़क पर ग्राहकों की खोज में घूमती थीं। फूलो कभी-कभी 'पार्टी' में भी रात-रात भर के लए बाहर जाया करती थी।''

मुंशी प्रेमचन्द की कहानी 'कफन' की स्त्री-पात्र बु धया के समानधर्मा चरित्र वाली फु लया , उदय प्रकाश की कहानी 'हीरालाल का भूत' की प्रमुख स्त्री-पात्र है। ब्राह्मण वरोधी कथाकार के रूप में कुख्यात उदय प्रकाश इस कहानी में एक ठाकुर को खलनायक की भू मका में खड़ा करके तथा हीरा और फु लया जैसे द लत चरित्रों की सृष्टि करके एक साथ अनेक आरोपों से मुक्त होते हैं। उदाहरणार्थ पंक्तियाँ द्रष्टव्य हैं- ''तो घटना यह थी क उस दिन हीरालाल शाम को ही ठाकुर साहब के घर का सौदा-सामान लेने बाजार चला गया था। दोपहर के बरतन जूठे पड़े थे , इस लए उन्हें माँजने और बाकी काम निपटाने फु लया वहाँ आयी हुई थी। शाम सात बजे होंगे क ठाकुर साहब ने फु लया को आवाज देकर बुलाया और उसे कागज तथा बहीखाता देकर कहा क इसे वह पटवारी को दे आये। शायद ठाकुर और पटवारी में पहले ही बात-चीत हो चुकी थी। फु लया कमरे में पहुँची तो पटवारी ने उसे पकड़ लया , साँकल भीतर से चढ़ा ली , रे डयो की आवाज खूब ऊँची कर दी और इस तरह हीरालाल की सम्पत्ति का आ खरी कोना , उसकी औरत की आबरू भी जाती रही। आधे घंटे बाद ठाकुर हरपाल संह भी उस कमरे में आ गये और फु लया पटवारी के पलंग पर ससकती रही। बाद में फु लया को दोनों ने पाँच-पाँच रुपये दिये।''

''समकालीन कहानी का सार्थक लेखन मानवीय चरित्र तथा स्थितियों की जटिलता को प्रत्यक्ष करता हुआ, जीवन को एक अर्थवत्ता प्रदान करने का प्रयत्न करता है। कहानी की सफलता का मानक यही है क वह प्रामा णक रूप से जिन्दगी के बहुआयामी यथार्थ को चत्रित करती हुई , उसे बेहतर बनाने की को शश बन सके। जिन्दगी के चरित्र और स्थितियों के चत्रण में ही यह को शश दिखायी देनी चाहिए। अतिरिक्त रूप से कसी वाद या वचारधारा से प्रतिबद्ध होकर धर्मोपदेशक या राजनीतिक नेता की शैली में सद्धान्तों के अनुरूप जीवन को श्रेष्ठतर बनाने का उपदेश कहानीकार (या अन्य कसी भी वधा का रचनाकार) नहीं करता है। मानवीय

चरित्र और स्थितियों का जिस लेखकीय दृष्टि में सर्जनात्मक स्तर पर चत्रण होता है, वही दृष्टि जीवन को नयी दृष्टि से देखने का उपक्रम बन जाती है। आज कहानीकार इसी दृष्टि से कथा-रचना में संलग्न है। '' आज के कहानीकार भी इसी दृष्टि के अनुकर्त्ता हैं। अपनी पुस्तक 'अपनी उनकी बात' में उदयप्रकाश लखते हैं क, ''हर कलाकार अपने समय के परि चत यथार्थ के भीतर से ही अपने पात्रों की खोज करता है। अपनी रचना में वह उन्हीं पात्रों को रूपान्तरित करके एक वृहत्तर मानवीय अर्थवत्ता देता है। आप संसार की कसी भी भाषा के कसी भी साहित्य को उठाकर दे खए, सब में यह सच मलेगा।''

आज की हिन्दी कहानी की भाषा अत्यन्त प्रभावी अ भव्यंजना की नयी-नयी भं गमाओं से लैस और अत्यन्त समृद्ध है। यह कथन अपने आप में अतिशयोक्तिपूर्ण अथवा समकालीन आलोचना भाषा में 'फतवेबाजी' लग सकता है क हिन्दी-गद्य की सम्पूर्ण क्षमताओं का पूर्ण वकास कहानी-भाषा में ही प्राप्त होता है। अँगरेजी-गद्य की जिस कथ्यात्मक क्षमता का बखान करते हम अघाते नहीं , वैसी अपूर्व कथ्यात्मक क्षमता हिन्दी की कहानी वधा में ही प्राप्त होती है। इस भाषा ने कहानी के कथ्य के अनुरूप अपने मजाज को पूरी तरह बदला है। उसमें संस्कृत के तत्सम शब्दों को अपनाकर चलने वाली 'वैष्णवी' और 'शाकाहारी' दृष्टि को पूर्णतः नकारकर एक पूर्ण उन्मुक्त आकाशीभाव मलता है ; जो जीवन के प्रत्येक क्षेत्र से अ भव्यक्ति को शब्द और बिम्ब प्रदान करती है। हिन्दी कहानी की इस खुली दृष्टि का सर्वप्रमुख कारण यह है क भाषा अनुभव को व्यक्त कर देने मात्र का साधन भर नहीं है , अ पतु वह सर्जनात्मक प्र क्रया का स्वयं एक अंग है। इसी लए उसे बहुत दूर तक कथ्य से नहीं अलगाया जा सकता।

यदि हिन्दी कहानी की भाषा को साठ के दशक से पूर्व की भाषा से मलाकर देखें तो यह सहज ही स्पष्ट हो जायेगा क आज कहानी-भाषा वकास के कतने सोपानों को प्राप्तकर आगे बढ़ आयी है। आज वह जिस रूप में मानव-मन के रोयें-रेशे को पूरी तरह उघाड़कर अत्यन्त सूक्ष्म और तलस्पर्शी रूप में अ भव्यक्ति कर सकती है, वह उसकी बहुत बड़ी और गौरवपूर्ण उपलब्धि है। आज कसी भी नये-से-नये अच्छे कथाकार की कोई सार्थक रचना उठा लीजिए, उसकी अ भव्यक्ति की ताजगी और टटकापन सहज ही बाँधता है।

वस्तुतः भाषा कथ्य के अनुरूप ही स्वरूप ग्रहण करती है और वह सर्जनात्मक प्र क्रया का एक अ वभाज्य अंग है। हिन्दी कहानी ने जिस जीवन-यथार्थ को अपना कथ्य बनाया या यथार्थ के जिस रूप की अ भव्यक्ति से अपने को प्रतिबद्ध कया ; कहानी भाषा भी उसी मार्ग की अनुगा मनी बनी। यथार्थ से रू-ब-रू होती कहानी की भाषा में रोमानी , काल्पनिकता का ऐंद्रजा लक रूप और उससे अनुस्यूत उपमान , बिम्ब, प्रतीक-वधान या अतिशय भावुकतापूर्ण आग्रह अब समाप्तप्राय हैं। आज कहानी की भाषा अपनी सरलता , सहजता और अनगढ़ता में ही नयी अर्थ-छ वयाँ भरती है। जिस प्रकार कहानी आज जीवन के अत्य धक निकट है , उसी प्रकार कहानी-भाषा भी जीवन की निकटता में ही अपना साहित्यिक आ भजात्य स्था पत कर सकी है। इसी लए कहानी-भाषा में आज एक वशेष जीवनधर्मी गंध अनुभूत होती है। यहाँ यह स्पष्ट करना अ धक वषयांतर नहीं है क हिन्दी कहानी की समीक्षा-भाषा को भी कहानी-भाषा के अनुरूप ही अपने को रूपान्तरित और वक सत करना श्रेयष्कर होगा। यद्य प भाषा- वकास और समृ द्ध में 'इति' जैसी स्थिति नहीं हो सकती , कन्तु हमें यह मानने में कं चत् भी संकोच नहीं है क हिन्दी कहानी ने बीसवीं सदी के उत्तरार्द्ध के तीन दशकों में गद्य की शक्ति का चरम अथवा अपूर्व वकास कया है। यह समस्त भा षक प्रयोगों की गौरवपूर्ण उपलब्धि है। यदि हम अपने इस कथन को समकालीन हिन्दी कहानी के गौरवपूर्ण स्तंभों और च र्चत कहानीकारों की कहानी-भाषा के परिप्रेक्ष्य में वचे चत करने का प्रयास करें तो इसकी सत्यता सहज ही प्रमा णत हो जायेगी।

कहानी की भाषा के सम्बन्ध में उदयप्रकाश की मान्यता है क , ''हर अच्छी कहानी के हर वाक्य में उस समूची कहानी की रूपरेखा और सम्भावना पहले से ही मौजूद रहती है। हर अच्छी कहानी अपनी समग्रता में एक सम्पूर्ण वाक्य बनाती है और इसी वाक्य के निर्माण के लए कथाकार कहानी के वन्यास में असंख्य

अन्य वाक्यों का इस्तेमाल करता है। इन समस्त वाक्यों का अपना अलग अस्तित्व , संरचना और अर्थ होते हुए भी, उस महावाक्य (अर्थात् कहानी) से पृथक् अपनी कोई अस्मिता नहीं होती। ये असंख्य वाक्य उसी एक महावाक्य के लए अपने स्वतंत्र अस्तित्व को उत्सर्जित करते हैं। इसी लए जब उत्तर संरचनावादी आलोचक यह कहते हैं क कोई भी भा षक कला अपनी समग्रता में वस्तुतः एक वाक्य होती है ; तो वह गलत नहीं है। यानी सीधी-सी बात यह क जितना महत्त्वपूर्ण कहानी का कथ्य , उसका सामाजिक, सांस्कृतिक, मनोवैज्ञानिक या दार्शनिक पक्ष होता है, उससे कम महत्त्वपूर्ण उसका भा षक वन्यास नहीं होता, जिसकी हिन्दी कहानी और कथा आलोचना में निरन्तर अवहेलना हुई है। ज्यादातर हिन्दी आलोचना तो दुर्दांत वाक्य- वन्यासों का दयनीय कबाड़खाना ही है।''

प्रख्यात एवं प्रखर कथा-आलोचक बलराम भी रचना में भाषा की महत्ता को स्वीकार करते हैं। उन्होंने कृतिकार की तुलना बढ़ई से की है। उन्हीं के शब्दों में, ''एक अच्छी कहानी की रचना के लए भाषा, शल्प और कथ्य पर समान रूप से ध्यान देना जरूरी है ; क्यों क अंततः कृति कसी बढ़ई के अच्छे या बुरे निर्माण-सी ही तो है। इस सम्बन्ध में नोबेल पुरस्कार वजेता कथाकार गैब्रियल गारसे मारकेस की वह बात याद आ रही है, जो उन्होंने 'द पेरिस रिव्यू' के लए साक्षात्कार देते हुए पीटर एच. स्टोन से कही थी- 'साहित्य बढ़ईगीरी के अलावा और क्या है... कुछ लखना मेज बनाने जैसा ही मुश्किल काम है। दोनों में ही आप यथार्थ का सामना करते हैं। दोनों में ही ट्रिक है और तकनीक भी। ' मारकेस की इस लेखकीय बढ़ईगीरी के एक औजार 'भाषा' के सन्दर्भ में डॉ. राम वलास शर्मा का यह कथन कतना सटीक है- 'भाषा तो लेखक का बसूला है। जो लेखक सही ढंग से बसूला चलाना नहीं जानता, वह अच्छी मेज कैसे बना सकता है।''

भाषा बनावटी भी नहीं होनी चाहिए ; क्यों क ''बनावटी भाषा से आयाम नहीं खुलते , अर्थों की धक्का परेड होती है। वह भाषा थगली की तरह चपकायी हुई लगती है। मेरी समझ से कसी भी लेखक की निजता और पहचान में भाषा मुख्य रोल अदा करती है ; भाषा तो आयाम खोलती चलती है। और सन्दर्भ चाहे भाषा का हो या कथ्य का , वह जनसंपर्क से ही उपलब्ध होता है। एक लेखक की है सयत से उस भाषा और कथ्य को सर्फ संस्कार देने का काम लेखक को करना पड़ता है और जो लेखक ऐसा नहीं करते लेखकीय धर्म से च्युत होकर रचना को हल्की कर डालते हैं और उनकी रचनाओं से जनमानस में कोई खास प्रति क्रया नहीं होती।''

उपर्युक्त कथनों से स्पष्ट है क आधुनिक कथाकार भाषा के प्रति अत्यन्त सजग है। उसके सत्प्रयासों से '' शल्प के साथ-साथ समकालीन कहानी में भाषा को भी एक नई तराश और गद्य की नई लय प्राप्त हुई। गद्य-भाषा की सहजता में जीवन-धर्मी गंध लये कतनी अर्थ-क्षमता हो सकती है, वर्तमान कहानी इसका प्रमाण है। प्रयोग में आ रहे शब्दों को गद्य की लय के अनुसार अर्थ-संगति देने के सुन्दर प्रयास ने भाषा को अपूर्व शक्तिमत्ता प्रदान की है। समकालीन कहानीकार भाषा प्रयोग के प्रति अत्यन्त सजग और सचेत है। समग्रतः समकालीन हिन्दी कहानी आज साहित्य की सर्वा धक सशक्त और समादृत वधा है। कथ्य और शल्प दोनों दृष्टियों से उसने नूतन आयाम छुए हैं।''

(ख) भाषा

वर्तमान सदी में कहानी , हिन्दी साहित्य की प्रमुख वधा बन गयी है , क्यों क आज इस वधा के अन्तर्गत जनता के वैयक्तिक एवं सामूहिक, दोनों परिवेशगत पहलुओं एवं घटनाओं को रचनाकारों द्वारा उजागर कया जा रहा है। इस समय कहानी में मनुष्य के यथार्थ-जीवन का अंकन दृष्टिगोचर हो रहा है। अ धकतर रचनाकार भुक्तभोगी हैं जिसके कारण उनकी कहानियों में जीवन्तता दिखाई देती है। आज के कहानीकारों की रचना में आम जनता का शोषण , बलात्कार, जीवन संघर्ष, अपनी अस्मिता को तलाशने वाले मनुष्य की व्यथा जैसी व वध घटनाओं को अपनी रचना का वषय बनाया है। साथ ही इस समय की कहानियों की भाषा में आक्रोश, व्यंग्यात्मकता, करुणा का स्वर, लोकोक्तियाँ, मुहावरे, प्रतीक और बिम्बात्मकता आदि आती है। शल्प की

दृष्टि से देखें तो ये कहानियाँ वर्णनात्मक , मथकीय, व्यंग्यात्मक और फैन्टेसी मूलक भी होती हैं। डॉ. नीरज शर्मा लखते हैं- ''इस दौर के कहानीकारों ने भ्रष्टाचार , प्रशासन, पु लस, आतंकवाद, राजनीतिक स्थितियों, गाँवों, कस्बों, नगरों, महानगरों का वसंगतिपूर्ण जीवन , आम आदमी का संघर्ष , साम्प्रदायिक द्वेष, जातिगत भेदभाव, वर्गगत वषमता जैसे अनेकानेक सामाजिक समस्याओं को उजागर करने का प्रयास कया। इसके लए वे स्पष्ट भाषा को आधार बनाते हैं। स्पष्ट एवं खुलेपन की दृष्टि के चलते ही उसने भाषा को प्रायः सहज रखने की को शश की, जिसके फलस्वरूप वह स्वाभा वक बोलचाल की भाषा से जुड़ता गया। प्रादे शक शब्दों , ग्रामीण शब्दों, गीतों आदि का प्रयोग इसी का परिणाम है।'' इससे स्पष्ट होता है क वर्तमान सदी के मानवीय सम्बन्धों में हो रही संवेदनाओं, संघर्षों आदि को उजागर करने के लए रचनाकार सहज भाषा का प्रयोग करने में जुटे हैं।

भाषा मानव के लए भावा भव्यक्ति का प्रमुख औजार है। साहित्य में स्पष्ट , सरल या सहज और सशक्त भाषा का प्रयोग पाठकों को प्रभा वत करता है। अपनी रचनाओं को प्रभा वत करने के लए रचनाकार कहानियों में बिम्बों, लोकोक्तियों, कहावत, मुहावरों, रूप्कों और लोकजीवन के गान आदि का सहारा लेते हैं। भाषा के सम्बन्ध में डॉ. नीरज शर्मा का कथन है- '' व वधता एवं व्यापकता से युक्त इस दौर की कहानियों की भाषा अर्थक्षमता से परिपूर्ण है। इसकी खास वशेषता सम्प्रेषणीयता है। अर्थात् वह सहज संप्रेष्य है। इस दौर में कहानी की भाषा में कहानी का कथ्य तथा कहानीकार की संवेदना में अलगाव नहीं। शायद इसी कारण वै वध्यपूर्ण जटिल , गम्भीर तथा बहुआयामी कथ्य भी सशक्त रूप में प्रस्तुत होता है। '' आज के दौर की कहानियाँ भाषा की दृष्टि से पाठकां को प्रभा वत करने वाली हैं। इक्कीसवीं सदी के कहानीकारों ने आम आदमी की भाषा को अपनी रचनाओं में प्रमुखता दी है। जनसाधारण की भाषा में उनके सुख-दुःख , संघर्ष, आक्रोश, संत्रास, व्यंग्यात्मकता आदि की भरमार होती है। इस दौर की कहानियों में कहानीकार जन साधारण की बोलचाल की भाषा का प्रयोग करके साधारण जन जीवन को पाठकों के सम्मुख प्रभावी ढंग से प्रस्तुत करते हैं।

शब्द योजना में नवाचार

वर्तमान सदी की हिन्दी कहानियों में अंग्रेजी और अरबी शब्दों का प्रयोग , आंच लक और आदिवासी शब्दावली का प्रचुर प्रयोग हुआ है। भाषा का अध्ययन करते समय इन शब्दों पर अध्ययन करना समीचीन है।

इस दौर की कहानियों में अंग्रेजी शब्दों का बोलबाला है। स्वयं प्रकाश की कहानी 'कहाँ जाओगे बाबा' में पवरकट, गैस एजेंसी , शॉ पंग सेन्टर , फैक्टरी, फर्टिलाइजर कम्पनी , कान्स्ट्रक्शन, कूलर, एयरकंडीशनर, रिटायर, गैसरिलीस आदि बहुत सारे अंग्रेजी शब्दों का प्रयोग है। इसी प्रकार कैलाश बनवासी की कहानी 'एक गाँव फुलझर' में भी लाइसेंस, आर्डर, इम्पोर्टेड, वर्कर, प्राइवेटाइजेशन जैसे अंग्रेजी शब्दों का प्रयोग देखा जा सकता है।

इस दौर की कहानियों में अरबी शब्दों के प्रयोग का नवाचार हुआ। कैलाश बनवासी की कहानी 'बाजार में रामधन' में इत्मीनान, दलाली, वाजिब, मुताबिक और 'एक गाँव फुलझर' में मशगूल, इफारत, हुकुम, आलीशान, तहलका आदि शब्दों का प्रयोग देखा जा सकता है।

नये दौर की कहानियों में फारसी के शब्दों को इस्तेमाल धड़ल्ले से हो रहा है। स्वयं प्रकाश की कहानी 'कहाँ जाओगे बाबा' नामक कहानी में हर गज़, तख्ती, जल्दबाजी, दरवाजा और कैलाश बनवासी की कहानी 'बाजार में रामधन' में रौं, गुमान, निगरानी जैसे शब्दों का प्रयोग बखूबी हुआ है।

वर्तमान सदी की कहानियों में जमीदारों , पूँजीपतियों या कुटिल राजनीतिज्ञों , भ्रष्ट न्याय व्यवस्था और भ्रष्ट कर्मचारियों द्वारा आम जनता के साथ शोषण एवं दुख-दर्द की वजह से लोगों में अपने अस्तित्व के प्रति चेतना जागृत होकर अन्याय के खलाफ आक्रोश शुरू होते हैं। मोहनदास नै मशराय की कहानी 'अपना गाँव' में ठाकुर कबूतरी के साथ जुल्म करता है और सम्पत इस जुल्म के खलाफ अपना आक्रोश व्यक्त करते हुए कहता है- ''संपत आक्रोश के मारे उबल पड़ा , 'भइया, ठाकुर की पहूँच चीफ मनिस्टर तक हो या प्राइम

मनिस्टर तक। हम पर जुल्म हुआ है और उसकी रिपोर्ट पु लस में लखना जरूरी है।'' कहानी में सम्पत जुल्म के खलाफ अपने आक्रोश भरी भाषा का प्रयोग करते हैं। रणेन्द्र की कहानी 'रात बाकी' में सरकार द्वारा आदिवा सयों की भू म अ धग्रहण करके बाँध बनवाने की प्रवृत्ति के खलाफ आदिवासी लोग अपना आक्रोश इस तरह व्यक्त करते हैं- ''अब ई बाँध बन्द, काम बन्द। एसे कैसे चलेगा भाई। ई जोर जबरदस्ती है। प्रशासन हाथ पर हाथ रखकर थोड़े बैठ रहेगा।'' इसी प्रकार संजीव की कहानी 'अपराध' में स चन भ्रष्ट न्याय व्यवस्था पर अपना आक्रोश व्यक्त करता है- ''मुझे इस पूँजीवादी, प्रति क्रयावादी, न्याय-व्यवस्था में वश्वास नहीं है। आम जनता भी जिसे न्याय का मन्दिर कहती है, वह लुटेरों पण्डों और जूताचोरों से भरा पड़ा है।'' इस प्रकार आज कहानियों में अत्याचार से पी ड़त लोगों की आक्रोश भरी भाषा का प्रयोग नवाचारी कहानीकारों ने प्रयुक्त कया है।

भाषा में व्यंग्य का पुट लाने से उसकी अ भव्यक्ति सशक्त बन जाती है। व्यंग्य युक्त भाषा के माध्यम से कहानीकार अकथ्य को भी कह डालते हैं। अ भव्यक्ति के लए व्यंग्यात्मकता एक सशक्त ह थयार का काम करती है। हेमलता महिश्वर की कहानी 'कर का मनका डारी के' में परिवार परामर्श को लेकर बातचीत हो रही थी जहाँ पर ले खका पहुँचती है और कौसर से पूछती है तो वह जवाब देता है- ''उसने मुझसे अब जाकर पूछा, दी! आप कम्फर्टेबल तो हैं ना।'' ''अब मैं क्या बोलूँ? ओखली में सर खुद रखवा दिया और अब पूछ रही हो।'' मैंने भी लपककर कहा।'' कहानीकार संजीव की 'टीस' कहानी में शबु काका नामक आदिवासी संपेरा मन्दिर के पुजारी के प्रति व्यंग्यात्मक बातें कहता है। वह कहता है- ''मन्दिर का पुजारी पंजानन भ ाचार्य। जब वो त्रिपुट लगा के, पूजा के लए आया, जनाना लोग को घूरता तो लगा क गोखुर छाप वाला नाग फन फुला के घूर रहा है। मन्तर कट कटते बखत हम आदिवासी लोग को देखेगा तो फुफकारेगा- भागो साला लोग , जाके खीस्तान बन जाओ, इहाँ काहे आता! साब, देख लेना उसको, अगर साँप कापड़ाया (डँसा) तो साँपइ मर जाएगा, वो नहीं मरेगा।'' व्यंग्यात्मक भाषा के प्रयोग से पाठकां की रु च कहानी को पढ़ने में बढ़ जाती है।

आज के कहानीकार अपनी कहानियां में लोकगीतों के माध्यम से अकथ्य को भी कथ्य बनाकर कहने में सफल रहे हैं। इन गीतां में लोक-जीवन की व्यथा, सुख-दुख, प्रेम आदि अन्तर्निहित होते हैं। लोक गीत लोक-जीवन की आत्मा हैं। मेहरुन्निसा परवेज की कहानी 'जंगली हिरणी' में आदिवासी लड़की लच्छो का झूम-झूम कर गाना देखें-

''बाट चो आँवा ने मंजुर सोए से, मारी रोसोना
कुम, कुम, कुम, मेछा एएसे।

लच्छो की सुरीली आवाज हवा में गूँजने लगती है। तबले पर जोर की थाप पड़ते ही उसके पैर जोर-जोर से थरकने लगते हैं-

मेघा एउसे-मारी रोसोना
तुचो गोढ़ के कोन सुने से।।
कोन सुने से-मारी रोसोना
बलते बला सरते सरोबे।।''

'आरोहण' नामक कहानी में सजीवन पहाड़ी इलाकां में गाये जाने वाले लोकगीतों की ओर इशाना कया है-

''ऊँची-नीची झाँ ड़यों मा,
हे कुहेड़ी ना लाग तूँऽऽऽ!''

इस गीत में जीवन और मृत्यु से परे एक अमूर्त लोक की परिकल्पना की गयी है-

''ऊँची-नीची झाँ ड़यों मा
हे हिलाँस ना बस तूँsss!''

'रफीक भाई को समझाइए' शीर्षक कहानी में रणेन्द्र के एक शोक-संवेदना से भरे लोकगीत को देखें-

''इक गदाए-राह को नाहक न छोड़
जा फकीरों से मजाक अच्छा नहीं।''

अस्तु, लोकगीतां ने लोकजीवन से जुड़ी संवेदनाओं को स्वर प्रदान कया है। जिसे पढ़कर अथवा सुनकर मन वह्वल हो जाता है।

मुहावरे एवं लोकोक्तियाँ

नये दौर की कहानियों में मुहावरे एवं लोकोक्तियों की भरमार है। इन लोकोक्तियों एवं मुहावरों के प्रयोग से पाठक कहानी को पढ़कर लोकजीवन की गहराई में उतर जाते हैं। संजीव , उदय प्रकाश, ओमप्रकाश वाल्मीकी, मोहनदास नै मशराय जैसे कहानीकारों ने अपनी कहानियांे में लोकोक्तियों एवं मुहावरों का प्रयोग करके अपना रचना का अर्थवान एवं संश्लिष्ठ बनाते हैं।

कैलाश बनवासी ने अपनी कहानी 'बाजार में रामधन' में रूखा सूखा, न रहेगा बाँस न बजेगी बाँसुरी, सर तो जैसे भूत सवार है 36 जैसे लोकोक्तियों एवं मुहावरों का प्रयोग कया है। 'साहूकार की मछली ' कहानी में कोमल ने मूर्ख बनाने के लए 'उल्लू बनाना ' मुहावरे का प्रयोग कया है। ऐसी न जाने कतनी नवाचारी कहानियाँ हैं जिनमें मुहावरे एवं लोकोक्तियों का नमूना हम देख सकते हैं। इन मुहावरे एवं लोकोक्तियों से रचनाकार अकथ्य को भी कथ्य का रूप दे देते हैं।

(ग) बिम्ब

भाषा में यथार्थ का चत्रात्मक प्रस्तुतिकरण बिम्ब कहलाता है। नये दौर के कहानीकार मानव मन की आन्तरिक एवं बाह्य सौन्दर्य को उद्घाटित करने के लए या ऐसा कहें क उनके सुख-दुख जैसे मनोभावों को स्पष्ट करने के लए बिम्बों का प्रयोग करते हैं। इसके साथ ही रचनाकार परिस्थिति , परिवेश या कसी वस्तु के चत्रण के लए भी बिम्बों का प्रयोग करते हैं।

'कयामत के दिन उर्फ कब्र से बाहर ' शीर्षक कहानी में जया जादवानी बचपन के बिम्ब उकेरते हुए लखते हैं- ''बहुत साल पहले मेरा बचपन मरा नहीं था , मेरे दोनों भाई इसी तरह सीटियाँ बजाते हुए फुटबाल खेलने अपनी-अपनी साइ कलों पर घर से निकला करते थे। उनके पीछे उसी तरह भागने को लालायित मैं जब उसी तरह घर से सीटी बजाते हुए निकलती तो वे बड़ी क्रूरता से पीडे लौटते , दोनों तरफ से मेरी दोनों बाँहों को पकड़कर घसीटकर अन्दर कमरे में ले जाते और बाहर कर दरवाजा बन्द कर देते।'' नव उपनिवेशवाद का यथार्थ चत्रण करते हुए कहानीकार राजकुमार गौतम अपनी कहानी 'कब्र' में लखते हैं- ''सपने जो बाजार के शो-केसों में दमकते रहते हैं : कुछ इलेक्ट्रानिक्स सामान , कुछ नकदी, कुछ पुरुषत्व और भोग... बस।'' बिम्बों के माध्यम से शहरों का चत्रण करते हुए स्वयं प्रकाश अपनी कहानी 'कहाँ जाओगे बाबा में ' लखते हैं- ''आटोरिक्शा बाईं तरफ मुड़ गया। उस रास्ते में फैक्टरियाँ ही फैक्टरियाँ थी , इतने कारखाने, इतने बोर्ड, इतने होर्डंग, सड़क पर इतने वाहन, इतना शोर इतना प्रदूषण, इतना वकास की आत्मा की सारी प्रफुल्लता ट्रक के पहिये के नीचे आ गये कसी नाजुक फूल की तरह कुचल गई। '' स्वयं प्रकाश की उपर्युक्त कहानी में बिम्बों का प्रयोग रात और सुबह के लए कया गया है। इस प्रकार कहानीकार बिम्बों के माध्यम से गरीबों की पीड़ा , संत्रास आदि का चत्रण करता है।

स्पष्ट है क आज के नये कहानीकारों ने अ भव्यक्ति के लए युगीन भाषा का प्रयोग कया है जो आम जनमानस की संवेदना, सुख-दुःख, पीड़ा-संत्रास आदि अनुभूतियों का सम्प्रेषण सार्थक और संश्लिष्ट तरीके से करते हैं।

(घ) शैली

नये युग की हिन्दी कहानियाँ सांस्कृतिक दृष्टि से सामाजिक परिवर्तन ला रही हैं। इनमें टूटते जीवन मूल्य, राजनीतिक परिवर्तन, उपभोक्ता संस्कृति का प्रभाव , भ्रष्टाचार आदि को वस्तार दे देखा जा सकता है। नवाचारी कहानियों में आम जनमानस की संवेदना की अ भव्यक्ति भी देखी जा सकती है। परिवर्तित होते जीवन परिवेश और मनोभावों की अ भव्यक्ति के लए कहानीकारों ने कहानी के शल्प में भी परिवर्तन कया है। कहानी शल्प की व्याख्या करते हुए डॉ. नीरज शर्मा लखते हैं- '' शल्प का तात्पर्य है- बुनावट/बनावट। वस्तुतः कसी वस्तु या रचना के निर्माण में जो पद्धति/प्र क्रया अपनाई जाती है , उसे ही शल्प कहते हैं। ''44 स्पष्ट है क नये दौर की कहानियों में कहानीकारों ने नयी प्र व ध या प्र क्रया को अपनाया है। रचनाकार अपनी रचना के समय जिस व ध का प्रयोग करता है उसकी कलात्मकता को शल्प कहा जाता है।

1. वर्णनात्मकता

कहानीकार की रचना में वर्णनात्मकता होने पर उसमे प्रामा णकता , स्पष्टता एवं यथार्थ का प्रवाह तीव्र होता है। 'मैंगो सल' शीर्षक कहानी में उदय प्रकाश ग लयों का वर्णन करते हुए लखते हैं- ''जहाँगीरपुरी में एक-दूसरे के साथ सटकर खड़े बेसंध मकानों की पांत के बीच से संकरी सड़कें या ग लयाँ निकली हुई हैं। मुश्किल से ग्यारह-बाहर फुट चौड़ी। कहीं-कहीं तो यह चौड़ाई छह-आठ फुट से अ धक नहीं है। वहाँ आप सर्फ पैदल या फर साइ कल से इधर-उधर टकराने से बचते हुए घुस सकते हैं। ग र्मयों में यहाँ रहे वाले इन्हीं सँकरी ग लयों में बाहर खाट डालकर सोते हैं , क्यां क राजधानी की नगरपा लका बिजली और पानी की सबसे ज्यादा कटौती ऐसी ही बस्तियों में कया करती है। अफवाहें , यौन, दंगे, जादू-टोना, अपराध और बीमारियाँ सबसे ज्यादा ऐसी ही बस्तियों में फैलती हैं। इन ग लयों में पानी की निकासी के लए जो ना लयाँ बनायी गई हैं , वे ऊपर से खुली हैं।'' वर्णनात्मक शैली का प्रयोग करने से पाठकों पर अ धक प्रभाव पड़ता है।

'प्रायश्चित्त' नामक कहानी में डॉ. मंजु ज्योत्स्ना आदिवा सयों की शादी-ब्याह का वर्णन करते हुए लखती हैं- ''हफते भर हंगामा। ये जाति कू गोड़इत हैं। शादी में खर्च ही कतना! हल्दी रंग की साड़ी वह भी लाल पाड़ की कोरी साड़ी को हल्दी में रंग दिया, रेशमी लाल चूड़ी और सन्दूर, दुल्हे की हल्दी से रंगी धोती और गुलाबी रंग के रंगी कमीज! न दान , न दहेज। आम की पत्तियों का छाजन , जिसके चार खम्भे जिनमें बँधे हैं लाउडस्पीकर और हरेक में अलग-अलग फल्मी गीत बड़ी तेज आवाज में बज रहे हैं। यह उनके प्रगतिशील होने और सम्पन्न होने का प्रमाण था। इसके साथ ही नाच-गाना , अनवरत अथक। खुशी मनाने का निराला ढंग। ''46 इस कहानी की वर्णन पद्धति बहुत ही सफल एवं प्रवाहपूर्ण है।

2. कस्सगोई पद्धति

जब कसी रचनाकार द्वारा अपनी कहानी के कहने की शैली में परिवर्तन कया जाता है तो उस प्र क्रया को कस्सागोई कहा जाता है। कहानीकार जैसा देखता है , सोचता है उसका वर्णन वह हू-ब-हू उसी तरह करता है। रचना की यह पद्धति अ धक सहज एवं सम्प्रेषणीय होती है। 'मैंगो सल' कहानी में उदय प्रकाश लखते हैं- ''एक रात लगभग दो बजे शोभा की आँख अचानक खुल गई उसने देखा क सूरी धीरे-धीरे कराह रहा है। उसके माथे पर फर बहुत सारी पीड़ा की लकीरें थी। बार-बार बनती और मटती हुई लकीरें। बच्चा गहरी बेचैनी से अकेला चुपचाप जूझ रहा था। दर्द को सहता हुआ। दूसरा बच्चा होता तो जोरों से रोता। शोभा ने देखा क सूरी दोनों हाथां से बार-बार अपने सर को पकड़ने की को शश कर रहा था। '' तरुण की कहानी 'कालापानी' का

एक उदाहरण देखें- ''लदुरा मुंडा भी उन मजदूरों में शा मल हो गया था। उसके साथ दस साल का मांगु भी अण्डमान चला आया। यहाँ के जंगलों को देखकर माँगु बहुत खुश हुआ था। वह गलहरियों और च ड़यों का शकार करने लगा था। उसका बाप लदुरा अन्य लोगां के साथ पेड़ काटने का काम करने लगा। छोटानागपुर में मजदूरी के नाम पर मात्र दो आना ही दिहाड़ी मलती थी। यहाँ उसे चार आना हर रोज मलने लगी। '' कस्सागोई पद्धति पाठक को आगे कहानी पढ़ने के लए ववश कर देती है।

3. बयान शैली

बयान शैली में कहानीकार अपने अनुभव या भोगे हुए आम जनमानस की पीड़ा का रू-ब-रू प्रस्तुतिकरण करता है। कसी घटना का वर्णन जब रचनाकार करता है तो पाठक को ऐसा लगता है क वह उस घटना का स्वयं द्रष्टा है। स्वयं प्रकाश की कहानी 'कहाँ जाओगे बाबा' से इस पद्धति का एक उदाहरण द्रष्टव्य है- ''पन्द्रह दिन होते न होते मास्टर साहब का जी उचाट हो गया। पन्द्रह दिनों में उन्होंने गोकुल नगर ही नहीं, आस-पास का पूरा इलाका अच्छी तरह घूमकर देख लया। कहने को वहाँ सब था- स्कूल , सड़कें, गैस एजेंसी, शॉ पंग सेण्टर, अस्पताल, यातायात के साधन , मन्दिर, कम्युनिटर सेंटर... यहाँ तक क पास ही एक शानदार स्टे डयम भी बना हुआ था।'' पाठक के मन को वच लत कर देने वाली एक ऐसी घटना का वर्णन ओम प्रकाश वाल्मीकी ने अपनी कहानी 'शवयात्रा' में कया है, द्रष्टव्य है- ''कल्लन चाहता था क शाम होने से पहले ही दाह-संस्कार हो जाए। सलोनी के शप को देखकर सरोज बार-बार बेहोश हो रही थी। समस्या थी लक ड़यों की। दाह-संस्कार के लए लक ड़याँ उसके पास नहीं थीं। सुरजा और सन्तो लक ड़यों का इन्तजाम करने के लए निकल पड़े थे। उन्होंने चमारों कू दरवाजों पर जाकर गुहार लगाई थी। ले कन कोई भी मदद करने को तैयार नहीं था।'' बयान शैली का प्रयोग करके रचनाकार आम आदमी के पीड़ा को उसके सूक्ष्म मनोभावों के साथ प्रस्तुत करते हैं जिससे पाठक को लगता है क वह घटना को प्रत्यक्ष देख रहा है।

मथकीय शैली

मथकीय परिकल्पना के वस्तार से रचनाकार की रचना अ धक संश्लिष्ट और सशक्त बन जाती है। मथकीय शैली का प्रयोग हरिराम मीणा की कहानी 'ढाव' से देखें- ''पं डत अड़ गया यह कहता हुआ क- या काम पैलां करतो। अब तो गऊ दान पं डत कू ई देणो पड़ेगो। या इस लहयों के थारों बाप बैतरणी के ओल्यां दाह की दाह में ई अटक्यो पड़यो है। अर तू जाण ले बा की काई दसा हो री है। राद्य अर लोही की नंदी है बा। बड़ा मंगरमच्छ, काचुआ, स्यांप और न जाणे कस्या कस्या जीव-जिन्यावर च्यारूं मेरे खाबा कू कोनी करे। अब तू जाणे अर थारा ये पंच-पटेल। ''51 केदार प्रसाद मीणा की कहानी 'अवत-अवतड़ी' में मथकीय प्रयोग का अवलोकन करें- ''पाँच बच्चे तो खुद के खा गई दुनिया के खा गई वो अलग और ढोर-ढंगर की तो गनती ही नहीं, कतने खाए। फर भी इनसे कोई काचान का पेट भरे है। काचान के भूख लगी , खाने को नहीं मला तो क्या करते, डायन को खा गए फंद मटा जी।''

रणेन्द्र की कहानी 'वह बस धूल थी ' में मथकीय शैली का प्रयोग द्रष्टव्य है- ''ससुर खटिया पर लदवाकर पहुँचा गये थे। धमका भी गये थे क उसके हीरे जैसे बेटे को खा गई ई डायन! दुबारा दिखी तो उनसे बुरा कोई नहीं होगा।'' मथकीय शैली के प्रयोग से रचनाकार की कहानी को पढ़ते हुए पाठक अ धक प्रभा वत होता है।

5. फंतासी शैली

फंतासी के सम्बन्ध में डॉ. नीरज शर्मा कहते हैं- ''फैंटेसी निर्माण का सम्बन्ध सौन्दर्यानुभव से है अर्थात् जीवन अनुभव ही फैंटेसी का जन्मदाता है और अनुभव की शब्दबद्ध या चत्रित अ भव्यक्ति 'फैंटेसी है।'' नये युग का कहानीकार अपने जीवन अनुभवों को कल्पना के माध्यम से प्रस्तुत करने में सफल रहा है। फंतासी

में मानव के सम्भाव्य की सर्जन शक्ति वद्यमान है। उदय प्रकाश की कहानियों से एक-दो उदाहरण द्रष्टव्य हैं। कहानी 'तिरिछ' की बानगी देखें- ''उन लोगों का कहना था क बहुत से कीड़े-मकोड़े और जीव-जन्तु रात में चन्द्रमा की रोशनी में दोबारा जी उठते हैं। चाँदनी में जो ओस और शीत होती है उसमें अमृत होता है और कई बार ऐसा देखा गया है क जिस सांप को मरा हुआ समझकर रात में यों ही फेंक दिया जाता है , फर वह हमेशा बदला लेने की ताक में रहता है। '' 'मैंगो सल' का उदाहरण देखें- ''अपनी आँखें बन्द करके दिक और काल पर अपना सारा ध्यान केन्द्रित करें , गहरी साँस लेकर आकाशस्थित सूर्य को अपने फेफड़ों के भीतर स्थिर करें , क्यों क सूर्य ही दिक् और काल का समन्वित पण्ड है। अब अपने चत्त को प्रशांत हो जाने दें। निवतमान अद्यतन का वस्मरण करें और शाश्वत महाकाल का चन्तन करें , अद्यतन तो क्षण भंगुर है और लीला हैं अब अपने दाहिने हाथ के अंगूठे को दोनों भौंहों के बीच रखें और तर्जनी को मस्तक पर लगा दें। '' स्पष्ट है क फैंटेसी एक ऐसी कल्पना है जिसके आज या वर्तमान में होने की सम्भावना न हो अर्थात् यह एक अ वश्वसनीय वर्णन पर आधृत है।

आत्मकथात्मक शैली

आत्मकथात्मक शैली में 'मैं' ही सब कुछ होता है अर्थात् कहानीकार कहानी में 'मैं' के माध्यम से कथा वस्तार करता है। पीटर पॉल एक्का ने अपनी कहानी 'राजकुमारों के देश में' में 'मैं' शैली को अपनाया है। यथा- ''जाने कैसे मंगलू काका मेरे जीवन में आकर रच बस गया था। औरों के लए वह मंगल वैद्य था पर मेरे लए शुरू से ही मंगलू काका। '' कैलाश बनवासी ने 'लोहा और आग ... और वे ' में भी आत्मकथात्मक शैली का प्रयोग कया है।

निबन्धात्मक शैली

निबन्धात्मक शैली में रचनाकार अपनी कथा को कई उपशीर्षकों में वभक्त कर कथा को आगे बढ़ाता है। प्रत्येक उपशीर्षक अपने अन्तर की कहानी पूर्ण अस्तित्व के साथ रूपायित होती है। अ धकांशतः लम्बी कहानियों में इस शैली का प्रयोग कया जाता है। उदाहरणस्वरूप उदय प्रकाश की 'मैंगो सल' कहानी क्रमशः 'जहांगीरपुरी की गली नंबर सात ', 'शोभा भागकर लाई गई थी ', ' मयानी में शोभा ', 'पखेरुओं का घोंसला और अण्डे', 'अभंग', 'खुसरो दरगाह' और 'पहला जी वत बच्चा ', 'एक लगातार बड़ा होता सर ' आदि उपशीर्षकों में वभाजित करके लखी गयी है।

चत्रात्मक शैली

इस शैली में कहानीकार एक चत्र की तरह अपनी कहानी को कहता है। इस शैली में कहानी का परिवेश पाठक के मन बड़ी सरलता के साथ उतरता जाता है। प्रकृति का चत्रण करते हुए कोमल अपनी कहानी 'साहूकार की मछली' में मछली पकड़ने गये बुधुआ का चत्रण देखें- ''सूरज अब पहा ड़यों से कुछ ही हाथ ऊपर रहा होगा। हवा अब धीमे-धीमे बहने लगी थी। गोहूँ की पीली बा लयाँ सूरज की पीली रोशनी में हौले-हौले डोल रही थी , मानो गेहूँ के पौधे अपनी बा लयों को हिला- हिलाकर सूरज को वदा कर रहे हों। '' चत्रात्मक शैली द्वारा कहानी की सम्प्रेषणीयता बढ़ गयी है।

रिपोर्ताज शैली

इस शैली में कहानी रपट की भाँति लखी जाती है और यह अ धक प्रभावशाली भी होती है। इस शैली में केवल कहानी ही नहीं बल्कि सब कुछ रहते हैं। संजीव ने अपनी कहानी 'अपराध' में रिपोर्ताज शैली को अपनाया है। इसी कहानी से एक बानगी द्रष्टव्य है- ''अपराध और अपराधी की प्रकृति और प्रकार , व्यक्तिगत और परिवेशगत संस्कार और उद्दीपनाएँ , मनोवैज्ञानिक तथा समाजशास्त्रीय ववेचन और वश्लेषण करने हेतु मैं एक थाने से दूसरे थाने में फाइलों में बिखरी आँकड़ों की सांख्यिकी में भटक रहा था क एक दिन थाने के बाहर

श चन के पता राखल बाबू ने पकड़ लया। वे काफी बदहवास लग रहे थे। उन्होंने बताया क... अभी-अभी श चन को पकड़कर इसी थाने में लाया गया है।'' कहानीकार उदय प्रकाश ने भी अपनी कहानी 'तिरिछ' में इस शैली को अपनाया है।

नये दौर की हिन्दी कहानियों की भाषा एवं शल्पगत अनुशीलन से यह स्पष्ट होता है क आज के कहानीकारों ने नवाचार के लए शल्पगत सौन्दर्य अनुभूतियों या अनुभवों के द्वारा प्राप्त कये हैं। उनकी भाषा सीधी-सादी सहज एवं सरल है और लोक जीवन और आधुनिक जीवन से जुड़ी भाषा का प्रयोग वर्णनात्मक , बयान शैली और कस्सागोई जैसी शै लयों में प्रस्तुत करके मानव जीवन को समाज के सामने प्रस्तुत करने में सफलता प्राप्त की है। इन कहानीकारों की भाषा ओजपूर्ण , अर्थवान एवं संश्लिष्ट है। उनकी युगीन भाषा में सरलता का पुट होने के कारण वह जन साधारण के पढ़ने में सु वधाजनक है। आज के कहानीकारों की भाषा अ भव्यक्ति प्रतीक, बिम्ब, मुहावरों एवं लोकोक्तियों से सम्पृक्त होने की वशेषता रखती है।

(ङ) पाठ

''आज की कहानियाँ एकात्मक स्तर की नहीं होतीं। अर्थ निष्पत्ति की दृष्टि से उनके अनेक स्तर हो सकते हैं। चूँ क पाठ-प्र क्रया से अर्थ-निष्पत्ति का सीधा सम्बन्ध है , इस लए कथा के इन भन्न स्तरों के प्रति भी हमें सचेत होना चाहिए , जहाँ अर्थ निष्पन्न होता है। मनोरंजन के लए पढ़ना भी निश्चित रूप से एक निरर्थक क्रया नहीं है। जो लोग सर्फ मनोरंजन के लए पढ़ते हैं वे भी इसके अर्थ के प्रति सावधान रहते हैं , फलतः जहाँ कहानी उनका मनोरंजन नहीं कर पाती वहाँ वे उसके प्रति आलोचनात्मक रुख अख्तियार कर लेते हैं-चाहे वह आलोचनात्मक रुख एक ही पंक्ति में अ भव्यक्त हो जाये क कहानी अच्छी नहीं है। '' प्रत्येक कहानीकार यह चाहता है क उसकी कहानी का पाठ कसी भी स्तर पर हो रहा हो , वह अच्छी कही जाये। इसके लए उसे कठिन परिश्रम करना होता है। एक बार में ही कहानी लखकर प्रका शत करा देने वाले कहानीकार कालजयी नहीं होते हैं , बल्कि कालजयी वे कहानीकार होते हैं , जो कहानी लखते समय अपना सम्पूर्ण कला-कौशल लगा देते हैं। वस्तुतः ''कहानी की पाठ-प्र क्रया में सजगता , आत्मनिर्णय की सक्षमता और कला-संवेदना के प्रति क्रयात्मक तत्परता की आवश्यकता होती है।''

आज के कथाकार समकालीन हिन्दी कथा-परिदृश्य में अपनी कहानियों की अन्तर्पाठीयता के कारण हमेशा चर्चा में रहते हैं। उनकी कहानियों में जो चीज सर्वा धक महत्त्वपूर्ण है , वह है- उसकी भा षक वलक्षणता और उसका सघन , सतर्क, सौंदर्य-मूलक वन्यास। आज की लगभग प्रत्येक कहानी अपने आप में नये आख्यान के भा षक वन्यास का एक नया 'मॉडल' या उदाहरण प्रस्तुत करती है। ले कन ऐसा करते हुए वह कहानी के अन्य आयामों को खारिज नहीं करती , बल्कि गहरी अन्तर्दृष्टि , सचेत आलोचनात्मक ववेक के साथ गहरी सृजनात्मक संलग्नता और तपश्चर्या के साथ उन्हें अ भव्यक्त करने की चेष्टा करती है। वर्तमान समय की कहानियों में कथाकार का कौशल और उसकी सृजनात्मक सामर्थ्य कहानी के सम्पूर्ण होने के बाद उपलब्ध होने वाले पाठयकीय अनुभव की प्रतीक्षा नहीं करती , बल्कि कहानी के समूचे पाठ के दौरान हर पल , हर पद और हर वाक्य के साथ कथाकार की मेहनत और हिकमत दोनों का अवबोध कराती चलती है। इतनी संलग्नता , श्रम और धैर्य के साथ लखने वाला तथा पाठ की इतनी सघन बुनावट करने वाले कथाकार समकालीन कथा-परिदृश्य में अनेक हैं।

सहायक सूची :

1. हिन्दी नवलेखन– डॉ0 रामस्वरूप चतुर्वेदी
2. कहानी नई कहानी– डॉ0 नामवर सिंह
3. साठोत्तरी हिन्दी कहानी : उपलब्धि एवं सीमाएँ– डॉ0 सुरेन्द्र पाण्डेय
4. हिन्दी कहानी का इतिहास– डॉ0 गोपाल राय

ISSN : 2319-7137, Volume: 15/Issue: 01, January-June : 2022

शिक्षा द्वारा मानव विकास एवं संवर्द्धन

डॉ. लाल सिंह
असिस्टेंट प्रोफेसर,
विधि विभाग, श्री वार्ष्णेय कॉलेज, अलीगढ़

प्रस्तावनाः–

निःसन्देह शिक्षा ही हर एक समाज के आधारभूत उत्थान हेतु महत्वपूर्ण तत्वों में से मुख्य है। जो लोगों को स्वयं तथा औरों के संबंध में सोचने–समझने की क्षमता को बढ़ाने मे सहायक होता है। साथ ही उनके जीवन की गुणवत्ता में सुधार करती है शिक्षा ही एक ऐसा शस्त्र है जिससे लोगों की उत्पादकता और रचनात्मकता में वृद्धि होती है जिससे तकनीकी प्रगति को भी लाभ मिलता है साथ ही देश व समाज की आर्थिक और सामाजिक प्रगति प्राप्त करने में विशेष योगदान मिलता है। किसी भी देश में शिक्षा एक बुनियादी विकास के लिए अत्यंत ही महत्वपूर्ण व आवश्यक भूमिका निभाती है, इसी बुनियाद पर ही अधिकांशतः आर्थिक और सामाजिक विकास होता है जो वास्तव में आर्थिक और सामाजिक मजबूती देने में महत्वपूर्ण कारक है। शिक्षा के माध्यम से ही हम गरीबी से निजात दिला सकते हैं। शिक्षा द्वारा ही एक अच्छे व मजबूत समाज एवं राष्ट्र का निर्माण किया जा सकता है।

आर्थिक विकास में शिक्षा का योगदानः–

सामान्यतः एक व्यक्ति के लिए शिक्षा, कौशल और ज्ञान की प्राप्ति उसके अपने राष्ट्र की उत्पादकता के लिए अत्यंत ही महत्वपूर्ण निर्धारक हैं, लेकिन बीसवीं शताब्दी को ''मानव पूंजी का युग'' इस अर्थ में भी कह सकता है कि किसी देश के जीवन स्तर का प्राथमिक निर्धारक यह है कि वह कौशल और ज्ञान के विकास और उपयोग में कितनी अच्छी तरह सफल होता है, और स्वास्थ्य को आगे बढ़ाता है, जिसका सम्पूर्ण श्रेय केवल और केवल शिक्षा को ही जाता है। शिक्षा द्वारा ही नई तकनीक को अवशोषित करने के लिए लोगों की दक्षता और क्षमता को बढ़ाता है। इसके माध्यम से ही लोगों की आधुनिक और वैज्ञानिक विचारों तक पहुँच को बढ़ाया जा सकता है। इससे ही व्यक्तियों को ज्ञान, कौशल और दृष्टिकोण हासिल करने में मदद मिलती है जो उन्हें समाज में बदलाव और वैज्ञानिक प्रगति को समझने में सक्षम बनाती है। शिक्षा उपलब्ध अवसरों और श्रम की गतिशीलता के बारे में जागरूकता पैदा करती है जिस कारण ही यह उपलब्ध शिक्षित श्रम शक्ति किसी देश में उन्नत प्रौद्योगिकी के अनुकूलन की सुविधा प्रदान करती है। शिक्षा में निवेश मानव पूंजी के मुख्य स्रोतों में से एक है, जो आविष्कारों और नवाचारों की सुविधा प्रदान करता है, जो हर एक सदी के मनुष्य के लिए आवश्यक व महत्वपूर्ण है।

हमने पिछले कुछ दशकों में बुनियादी शिक्षा के लिए असाधारण विस्तार देखा है। कई देश अब माध्यमिक और उच्च शिक्षा तक पहुंच और वृद्धि के समीप हैं और साथ ही हर क्षेत्र में दी जाने वाली शिक्षा की गुणवत्ता में शानदार सुधार भी कर रहे हैं। समान्यतः छात्र अपनी बुनियादी शिक्षा जैसे–जैसे पूरी करती है, वैसे ही उच्च शिक्षा के लिए उनकी मांग बढ़ जाती है। पुरुषों के साथ–साथ महिलाओं को शिक्षित करना हर एक देश व समाज के लिए एक बेहतर निवेश होता है। जो कि किसी भी परिवार के लिए अच्छे स्वास्थ्य, पोषण, कम शिशु मृत्यु दर, और बच्चों की प्रारम्भिक शिक्षा सहित एक सकारात्मक पारिश्रमिक बनता है। सहस्राब्दी की शुरुआत में हमने जो प्रण किया था, अब उसे पूरा करना हमारी सर्वप्रथम जिम्मेदारी है। साथ ही यह भी सुनिश्चित करना है कि लड़के और लड़कियां हर जगह प्राथमिक स्कूली शिक्षा पूर्ण रूप से प्राप्त करें। सबसे बड़ी यह चुनौती है कि उनमें से कई जो ऐसे देशों में रहते हैं जो संघर्ष, आपदा और महामारी से पीड़ित हैं, उन तक पहुँचना कठिन है। आज के छात्रों को ''इक्कीसवीं सदी के कौशल'' की आवश्यकता है, जैसे महत्वपूर्ण सोच, समस्या समाधान, रचनात्मकता और डिजिटल साक्षरता। इसमे सभी उम्र के छात्रों को नई तकनीकों से परिचित होने और तेजी से बदलते कार्यस्थलों का सामना करने की आवश्यकता है। इस बदलाव से ही हम अपने लक्ष्यों को प्राप्त कर सकते हैं।

शिक्षा और उत्पादकताः–

सामान्यतः हर एक देश में उसकी शैक्षिक प्रक्रिया ही उस देश के विकास एवं उत्पादन और निर्यात की संरचना और वृद्धि के मुख्य मानक होती हैं और विदेशी प्रौद्योगिकी को प्रभावी ढंग से प्रभावित कर सम्बंध स्थापित करने की प्रणाली की क्षमता में एक महत्वपूर्ण घटक बनती हैं, जैसे कि स्वास्थ्य और पोषण, प्राथमिक और माध्यमिक शिक्षा, सभी ग्रामीण और शहरी श्रमिकों की व्यावसायिक उत्पादकता बढ़ाने सहित कौशल और प्रबंधकीय क्षमता के अधिग्रहण की सुविधा प्रदान करती है। बुनियादी शिक्षा, विज्ञान के विकास, प्रौद्योगिकी आयात के उपयुक्त चयन और घरेलू अनुकूलन और प्रौद्योगिकियों के विकास का समर्थन करती है। माध्यमिक शिक्षा भी प्रमुख संस्थानों, सरकार, कानून और वित्तीय प्रणाली के विकास में महत्वपूर्ण तत्वों का प्रतिनिधित्व करती है। सूक्ष्म स्तर पर, कई अध्ययनों से संकेत मिलता है कि आय में वृद्धि वर्षों से शिक्षा से जुड़ी हुई है, उच्च स्तर की शिक्षा के साथ वापसी की दर अलग–अलग होती है।[1] प्राथमिक शिक्षा पर प्रतिफल माध्यमिक और तृतीयक शिक्षा के प्रतिफल से अधिक होता है।[2]

हम देखते हैं कि शिक्षा का महत्वपूर्ण योगदान उद्योग क्षेत्र में तकनीकी क्षमता और तकनीकी परिवर्तन में अहम है। भारत में कपड़े और इंजीनियरिंग उद्योगों के सांख्यिकीय विश्लेषण, सिर्फ एक उदाहरण का हवाला देते हुए, यह दर्शाता है कि श्रमिकों और उद्यमियों के कौशल और शिक्षा के स्तर सकारात्मक रूप से फर्म के तकनीकी परिवर्तन से ही संबंधित थे।[3] आर्थिक सहयोग और विकास संगठन (Organization for Economic Co-operation and Development-OECD) नियमित रूप से देशों को अपनी शिक्षा और प्रशिक्षण प्रणालियों में सुधार करने की सिफारिश करता है। अर्थशास्त्री अक्सर इसे 'मानव पूंजी' में सुधार के रूप में देखते हैं। मानव पूंजी का एक नया उपाय दो

घटकों पर आधारित हैः स्कूली शिक्षा के वर्ष और स्कूली शिक्षा में वापसी की दर। इसकी नवीनता शिक्षा में वापसी की सीमांत दरों पर इसकी धारणाओं से आती है।

शिक्षा और आयः–

60 से अधिक वर्षों के लिए, विभिन्न अर्थशास्त्रियों ने बताया है कि कैसे एक बेहतर शिक्षा सीधे वेतन और सकल घरेलू उत्पाद में प्रमुख आर्थिक रिटर्न[4] की ओर ले जाकर महत्वपूर्ण भूमिका है। शिक्षा कई देशों की अर्थव्यवस्थाओं के साथ–साथ श्रम बाजारों और समग्र रोजगार के सामान्य स्वास्थ्य में भी महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। दरअसल, शिक्षा के बढ़ते मानकों के साथ रोजगार लॉक स्टेप में जाता है। जो यह सभी व्यक्तियों और बड़ी अर्थव्यवस्थाओं दोनों के लिए बेहतरीन पथ है। यद्यपि बेहतर शिक्षा से लेकर अधिक आय समानता तक एक सकारात्मक प्रतिक्रिया भी है, जो बदले में, विकास की उच्च दरों का पक्ष लेने की संभावना है। जैसे–जैसे शिक्षा का प्रसार अधिक व्यापक रूप से होगा, वैसे–वैसे कम आय वाले लोग आर्थिक अवसरों की तलाश करने में सक्षम हो जाएंगे। उदाहरण के लिए, 1980 के आसपास लैटिन अमेरिका कुछ देशों में देखा गया था कि स्कूली शिक्षा, आय असमानता और गरीबी के आधार पर पाया गया कि श्रमिकों की आय में भिन्नता का एक चौथाई स्कूली शिक्षा में भिन्नता के कारण था। इससे यह निष्कर्ष निकालता है कि 'स्पष्ट रूप से शिक्षा आय समानता पर सबसे मजबूत प्रभाव के साथ उभर कर आती है'।[5] एक अन्य अध्ययन ने सुझाव दिया कि कम से कम माध्यमिक शिक्षा में वृद्धि से निचले स्तर पर आय का हिस्सा व श्रोत बढ़ जाएगा।[6] शिक्षा प्रति व्यक्ति आय वृद्धि को हर व्यक्ति पर प्रभाव, यानी जनसंख्या वृद्धि के माध्यम से प्रभावित कर सकती है। उदाहरण के लिए, अस्सी के दशक के मध्य में चौदह अफ्रीकी देशों के एक अध्ययन ने लगभग सभी देशों में महिला स्कूली शिक्षा और प्रजनन क्षमता के बीच एक नकारात्मक सहसंबंध दिखाया, प्राथमिक शिक्षा का लगभग आधे देशों में नकारात्मक प्रभाव पड़ा और दूसरे आधे में कोई महत्वपूर्ण प्रभाव नहीं पड़ा। माध्यमिक शिक्षा ने हमेशा प्रजनन क्षमता को कम कर दिया।[7] कम प्रजनन क्षमता के मामले में तीन सफल देशों, केन्या, बोत्सवाना और जिम्बाब्वे में महिला स्कूली शिक्षा के उच्चतम स्तर के साथ–साथ सबसे कम बाल मृत्यु दर भी थी।[8]

मानव पूंजी और परिवारः शिक्षा और परिवारः–

हमें सबसे पहले यह जानना होगा कि मानव पूंजी कहाँ से आती है? इसके लिए शुरुआत परिवार से करनी होगी। यह एक अच्छे समाज और आर्थिक सफलता की नींव है। समय के साथ परिवारों में मतभेद बढ़ रहा है, लेकिन आधुनिक अर्थव्यवस्था में वे अभी भी बहुत महत्वपूर्ण हैं। मानव पूंजी को समझने के लिए, आपको परिवार में वापस जाना होगा, क्योंकि यह परिवार ही हैं जो अपने बच्चों के बारे में चिंतित हैं और अपने बच्चों की शिक्षा और मूल्यों को बढ़ावा देने के लिए उनके पास जो भी संसाधन हैं, उनको प्रयोग एवं उपभोग करने में झोंक देता हैं। परिवार किसी भी स्वतंत्र समाज में और यहां तक कि गैर–मुक्त समाजों में भी मूल्यों के प्रमुख

प्रवर्तक एवं रक्षक होते हैं। सांस्कृतिक पूंजी सिद्धांत इस बात पर जोर देता है कि पारिवारिक सांस्कृतिक संसाधन और पर्यावरण बच्चों की शैक्षिक आकांक्षाओं और प्रदर्शन को निर्धारित करते हैं। अल्प सांस्कृतिक पूंजी वाले परिवारों की तुलना में, समृद्ध सांस्कृतिक पूंजी वाले माता–पिता स्कूलों के नियमों के बारे में अधिक जागरूक होते हैं, और अधिक सांस्कृतिक संसाधनों का निवेश करते हैं, बच्चों की शैक्षिक आकांक्षा और रुचि को विकसित करने पर अधिक ध्यान देते हैं, स्कूली पाठ्यक्रम वाले बच्चों की शिक्षाविद भी मदद करते हैं, और उन्हें उत्कृष्ट प्रदर्शन करने में सक्षम बनाते हैं।[9] माता–पिता की शैक्षिक अपेक्षाओं का जूनियर छात्रों के शैक्षणिक प्रदर्शन पर महत्वपूर्ण प्रभाव पड़ता है। सामाजिक पूंजी सिद्धांत शिक्षा और बच्चों के सीखने के व्यवहार और उपलब्धि में माता–पिता की भागीदारी पर जोर देता है। उच्च सामाजिक आर्थिक स्थिति वाले माता–पिता आमतौर पर अपने बच्चों की सीखने की गतिविधियों में अधिक तीव्रता से भाग लेते हैं, शिक्षकों के साथ संचार पर अधिक ध्यान देते हैं, बच्चों की स्कूल में अनुपस्थिति और अन्य जोखिम भरे व्यवहारों का प्रबंधन करते हैं और साथ ही बच्चों के शैक्षणिक प्रदर्शन में सुधार करते हैं।[10] अनुभवजन्य अध्ययनों से पता चला है कि माता–पिता की शैक्षिक भागीदारी, जैसे कि बच्चों के साथ स्कूली चीजों पर चर्चा करना, उनके गृहकार्य की जाँच करना और स्कूल की गतिविधियों में भाग लेना, बच्चों के शैक्षणिक प्रदर्शन में सुधार करता है।[11]

सामान्यतः देखा जाता है कि परिवार कई तरह के फैसले लेते हैं। एक तो वो परिवार होते हैं जिनमे अधिक बच्चे होते हैं। दूसरे वो परिवार होते हैं जिनमे कम बच्चे होते हैं। जिन परिवारों में कम बच्चे होते हैं वहाँ प्रत्येक बच्चे के लिए अधिक–अधिक सुविधा प्रदान करने का प्रयास करते हैं। जैसे–जैसे देश विकसित होते हैं, उनमें ऐसी प्रवृत्ति बहुत दृढ़ता से बढ़ती है। प्रत्येक राष्ट्र जिसने विकसित रूप प्राप्त किया है, उसने ऐसा कुछ उल्लेखनीय रूप से कम समय में किया है। उदाहरण के लिए, ताइवान में जन्म दर संयुक्त राज्य अमेरिका से कम है। यही घटती जन्म दर हांगकांग, मैक्सिको और पोलैंड की भी विशेषता है। जहां अधिक संख्या में पुरुष और महिलाएं शिक्षित होते हैं वो उतना ही अपने स्वास्थ्य और अपने बच्चों के स्वास्थ्य व शिक्षा में अधिक से अधिक निवेश करते हैं। वास्तव में, शिक्षा किसी व्यक्ति के स्वास्थ्य और जीवन प्रत्याशा का सबसे महत्वपूर्ण व्यक्तिगत निर्धारक एवं माध्यम हो सकती है।[12]

वहीं जो लोग गरीब हैं वो शिक्षा हासिल करके ही न केवल अपनी आय और भोजन पर खर्च बढ़ाकर अपने बेहतर स्वास्थ विकल्प बनाने के लिए अपने भोजन सेवन में सुधार कर सकते है। विभिन्न राष्ट्रों के बारे में जानकारी से यह पाया है कि शिक्षित व्यक्ति स्वस्थ आहार का उपभोग करते हैं, भले ही भोजन पर खर्च की गई कुल राशि अधिक हो। बेशक शिक्षा और बेहतर स्वास्थ्य और जीवन प्रत्याशा के बीच संबंध में दोनों दिशाओं में कार्य–कारण शामिल है। अधिक स्वास्थ्य और कम मृत्यु दर के लिए भी शिक्षा और अन्य मानव पूंजी में बड़े निवेश को प्रेरित किया जाता है क्योंकि इन निवेशों पर वापसी की दर तब अधिक होती है जब अधिक समय में काम करने की अपेक्षित मात्रा होती है। शिक्षा ही वह अस्त्र है जिससे हम बेहतर स्वास्थ्य और जीवन प्राप्त कर सकते हैं।

शिक्षा और व्यापारः–

प्रायः ये देखा गया है कि कुछ देशों ने अपने सीखने और अपनी शिक्षा में खुलेपन और निवेश को सफलतापूर्वक जोड़ा एवं बढ़ाया है, जो एक चक्र बनाता है। खुलापन शिक्षा की मांग पैदा करता है, और यही शिक्षा देश के निर्यात क्षेत्र को और अधिक प्रतिस्पर्धी एवं प्रभावशाली बनाते हैं। ज्ञान संचय एक देश के व्यापार प्रदर्शन और प्रतिस्पर्धात्मकता[13] व्यापार को प्रभावित करता है, बदले में ज्ञान संचय को बढ़ाता है। विशेष रूप से आयात के माध्यम से।[14] किसी भी प्रकार के ज्ञान संचय को बनाए रखने के लिए, एक देश को बाहरी उन्मुख और महत्वपूर्ण निर्यातक होना चाहिए। यंग और केलर ने पाया कि केवल व्यापार ही विकास का जरिया नहीं हो सकता है। विश्व बैंक के एक अध्ययन में पाया गया कि 1965–87 के दौरान 60 विकासशील देशों के एक नमूने में आर्थिक विकास दर विशेष रूप से उच्च थी, जहां उच्च स्तर की शिक्षा और व्यापक आर्थिक स्थिरता और खुलेपन का संयोजन था।[15] व्यापार के खुलेपन का दीर्घकालिक विकास पर प्रभाव इस बात पर निर्भर करता है कि लोग व्यापार और विदेशी निवेश के माध्यम से उपलब्ध कराई गई सूचना और प्रौद्योगिकी को कितनी अच्छी तरह अवशोषित और उपयोग करने में सक्षम हैं। यह व्यापक रूप से स्वीकार किया जाता है कि मजबूत प्रतिस्पर्धा के माहौल के अनुकूल होने के लिए दुनिया में शिक्षा, सूचना, ज्ञान और कौशल की भूमिका पर जोर देने के लिए उन्नत अर्थव्यवस्थाओं को अपनी श्रम शक्ति की समग्र गुणवत्ता को लगातार उन्नत करने की आवश्यकता होती है। इसलिए चाहे वह व्यापार हो, आय हो या उत्पादकता का मामला हो शिक्षा ही ही सबसे अहम और महत्वपूर्ण माध्यम है।

शिक्षा के माध्यम से प्रदान किया गया ज्ञान और बौद्धिक संपदा भी सभी को मुफ्त में उपलब्ध होनी चाहिए। अधिक से अधिक देशों को कॉपीराइट मंजूरी प्राप्त करना और शिक्षकों और छात्रों के लिए आवश्यक सामग्री के लिए रॉयल्टी का भुगतान करना कठिन होता जा रहा है। ईआई(Educational International) अंतरराष्ट्रीय व्यापार और निवेश समझौतों की निगरानी करता है और शिक्षा में व्यापार के खतरों के बारे में जागरूकता बढ़ाने के लिए अपने सदस्य संगठनों के साथ काम करता है और द्विपक्षीय, बहुपक्षीय और क्षेत्रीय व्यापार और निवेश समझौतों के दायरे से शिक्षा सेवाओं को स्पष्ट रूप से बाहर करने के लिए राजनीतिक कार्रवाई पर जोर देता है। जिससे शिक्षा को ज्यादा से ज्यादा प्रोन्नत किया जा सके।

चुनौतियाँः पहुँच, गुणवत्ता और सुधार को गति देनाः–

हर एक राष्ट्र के लिए शिक्षा बहुत ही जरूरी है क्योंकि बच्चों के जीवन की संभावनाएं उनकी शिक्षा की गुणवत्ता से काफी प्रभावित होती हैं। शिक्षण संस्थानो का उद्देश्य बच्चों को उनके सम्पूर्ण विकास, स्वस्थ जीवन और अर्थव्यवस्था तथा समाज में योगदान के लिए आवश्यक ज्ञान, कौशल और पारस्परिक क्षमता प्रदान करना है। शिक्षण संस्थान सीखने के अनुभव प्रदान कर सकते हैं जो एक बच्चा घर पर नहीं प्राप्त कर सकता है, खासकर यदि वह एक वंचित वातावरण में रह रहा है।[16] यद्यपि उच्च गुणवत्ता वाली शिक्षा प्रदान करने वाली सरकारों के प्रयासों के बावजूद भी शैक्षिक परिणामों में असमानताएं शेष हैं। शिक्षा में समानता को कई अलग–अलग तरीकों से परिभाषित किया जा सकता है। ओईसीडी रिपोर्ट नो मोर फेल्योर में परिभाषित वैचारिक ढांचे पर निर्माण, शिक्षा में समानता को निष्पक्षता और समावेश दो आयामों के माध्यम से देखा जा सकता है।[17] समावेश के रूप में समानता का अर्थ यह सुनिश्चित करना है कि सभी छात्र कम से कम बुनियादी तथा न्यूनतम स्तर के कौशल को प्राप्त कर सकें। एक समान शिक्षा प्रणाली निष्पक्ष और समावेशी रूप से अपने छात्रों को उनकी सीखने की क्षमता तक पहुंचने में सहायता करती हैं। निष्पक्षता के रूप में समानता का तात्पर्य है कि व्यक्तिगत या सामाजिक–आर्थिक परिस्थितियाँ, जैसे कि लिंग, जातीय, मूल या पारिवारिक पृष्ठभूमि शैक्षिक सफलता में बाधा नहीं पहुंचाती हो। एक समान शिक्षा प्रणाली व्यापक सामाजिक और आर्थिक असमानताओं के प्रभाव का निवारण कर सकती है। सीखने के संदर्भ में, यह व्यक्तियों को उनकी पृष्ठभूमि की परवाह किए बिना शिक्षा और प्रशिक्षण का पूरा लाभ उठाने की अनुमति देता है।

शैक्षिक प्रदर्शन ड्रॉपआउट के लिए उच्चतम भविष्यवक्ता है, क्योंकि निम्न ग्रेड शैक्षिक प्रणाली के माध्यम से प्रगति के लिए कम तैयारी का संकेत हैं।[18] हालाँकि शैक्षिक परिणाम हिमखंड का दृश्य भाग हैं, क्योंकि कम प्रदर्शन और अंततः बाहर निकलने के कारण अन्य कारकों से जुड़े हुए हैं, जिन्हें पहचानना अधिक कठिन हो सकता है। शिक्षण संस्थानो में सफलता के लिए छात्रों का व्यवहार मायने रखता है। जो छात्र अकादमिक और सामाजिक दोनों मामलों में लगे हुए हैं तथा स्कूली शिक्षा को महत्व एवं वारीयता देते हैं, वे स्कूल में बने रहते हैं। ओईसीडी देशों में, पंद्रह साल के पच्चीस प्रतिशत छात्र स्कूल में सफलता को महत्व नहीं देते हैं।[19] जब वे नकारात्मक भावनाओं का अनुभव करते हैं तो छात्र अपना ध्यान सीखने से हटा देते हैं। नशीली दवाओं या शराब के दुरुपयोग और किशोर अपराध जैसे अतिरिक्त कार्यों में लिप्त हो जाते हैं।

निष्कर्षः–

भारत ही नहीं बल्कि सम्पूर्ण दुनिया में आर्थिक विकास के लिए शिक्षा बहुत ही अनिवार्य एवं आवश्यक है, क्योंकि अच्छी शिक्षा के बिना आर्थिक ही नहीं कोई भी विकास संभव नहीं है। निःसन्देह शिक्षा ही हर एक समाज के आधारभूत उत्थान हेतु महत्वपूर्ण तत्वों में से मुख्य है। जो लोगों को स्वयं तथा औरों के संबंध में सोचने–समझने की क्षमता को बढ़ाने मे सहायक होता है। एक संतुलित एवं बेहतर शिक्षा प्रणाली न केवल आर्थिक विकास को बढ़ावा देती है, बल्कि उत्पादकता को भी बढ़ावा देती है और देश के साथ–साथ प्रति व्यक्ति व्यक्तिगत आय भी अधिक उत्पन्न करती है। जिसका प्रभाव एक व्यक्ति के परिवार के साथ–साथ उस समाज एवं देश पर ब्रहद से लेकर सूक्ष्म स्तर पर भी दिखायी देता है।

संदर्भ ग्रंथः–

1. Behrman, Jere R. (1990), Human Resource Led Development, Review of Issues and Development, New Delhi, India: ARTEP/ILO.
2. Psacharopoulos, G. (1984), "The Contribution of Education to Economic Growth: International Comparisons", Cambridge, Ballinger Publishing Co
3. Deraniyagala, S. (1995), Technical Change and Efficiency in Sri Lanka`s Manufacturing Industry, D. Phil, Oxford.

4. "Psacharopoulos, George; Patrinos, Harry Anthony. 2018. Returns to Investment in Education : A Decennial Review of the Global Literature. Policy Research Working Paper;No. 8402. World Bank, Washington, DC. © World Bank. https://openknowledge.worldbank.org/handle/10986/29672 License: CC BY 3.0 IGO."

5. Psacharopoulos, G. (1994), "Returns to Investment in Education: Aglobal Update", World Development, 22(9).

6. Bourguignon, F. and C. Morrison (1990), "Income Distribution, Development and Foreign Trade: A Cross-sectional Analysis", European Economic Review, 34.

7. Birdsall, N. (1993), "Social Development in Economic Development", World Bank Policy research working Papers, WPS 1123, Washington DC.

8. Ainsworth, M.K. Beegle and A. Nyamete, (1995), The Impact of Female Schooling on Fertility and Contraceptive, LSMS Working Papers 110, Washington, DC: World Bank

9. Bourdieu, Pierre, and Jean-Claude Passeron. 1990. In *Reproduction in education, society and culture*, ed. Richard Nice, 2nd ed. Calif: Sage Publications.

10. Coleman, James S. 1988. Social capital in the creation of human capital. *American Journal of Sociology* 94: S95–S120.

11. S.L., L. Hao, and E. Gardner. 2005. The roles of parenting styles and social capital in the school performance of immigrant Asian and Hispanic adolescents. *Social Science Quarterly* 86 (4): 928–950.

12. Becker, Gary S. 1964. Human capital: a theoretical and empirical analysis, with special reference to education. Chicago: University of Chicago Press.

13. Grossman, Gene M. and Elhanan Helpman, (1989), Growth and Welfare in a Small Open Economy, NBER working paper 2970.

14. Ben-David, D. and M. Loewy, (1995), "Free Trade and Long Run Growth", CEPR working paper 1183.

15. Tilak, J.B., (1989), "Education and its Relation to Economic Growth, Poverty, and Income Distribution: Past Evidence and Further Analysis" World Bank Working Papers 46.

16. Heckman, J. (2008), "The case of Investing in Disadvantage Young Children", Big ideas for children: Investing in Our Nation's Future, First Focus, Washington, DC.

17. Field S., M. Kuczera and B. Pont (2007), No More Failures: Ten Steps to Equity in Education, OECD, Paris.

18. Lyche, C. (2010), "Taking on the Completion Challenge: A Literature Review on Policies to Prevent Dropout and Early School Leaving", OECD Education Working Paper No. 53, OECD, Paris.

19. OECD (2011a), Against the Odds, OECD, Paris.

ISSN : 2319-7137, Volume: 15/Issue: 01, January-June : 2022

शिक्षकों के शैक्षिक अभिप्रेरणा एवं कृत्य संतोष के मध्य सम्बन्ध का अध्ययन

शोध निर्देशक
प्रो0 एन. एल. मिश्र
अधिष्ठाता, कला संकाय
महात्मा गाँधी चित्रकूट ग्रामोदय विश्वविद्यालय,
चित्रकूट, जिला–सतना (म0प्र0)

शोधकर्ता
चन्द्र प्रकाश मणि त्रिपाठी
शोधछात्र (शिक्षाशास्त्र)
कला संकाय
लोक शिक्षा एवं जनसंचार विभाग
महात्मा गाँधी चित्रकूट ग्रामोदय
विश्वविद्यालय, चित्रकूट, जिला–सतना
(म0प्र0) पिन–485334

सारांश

प्रस्तुत समस्या कथन **''शिक्षकों के शैक्षिक अभिप्रेरणा एवं कृत्य संतोष के मध्य सम्बन्ध का अध्ययन'' करना है।** प्रस्तुत अध्ययन में निम्नलिखित उद्देश्यों का अध्ययन किया गया है– शिक्षकों के शैक्षिक अभिप्रेरणा एवं कृत्य संतोष के विमा के मध्य सम्बन्ध का अध्ययन करना है। प्रस्तुत अध्ययन में निम्नलिखित शून्य परिकल्पनाओं का परीक्षण के लिए शिक्षकों के शैक्षिक अभिप्रेरणा एवं कृत्य संतोष के विमा के मध्य सम्बन्ध नहीं है। प्रस्तुत अध्ययन में वर्णनात्मक अनुसंधान के अन्तर्गत सहसम्बन्धात्मक सर्वेक्षण विधि का प्रयोग किया गया है। जनसंख्या के रूप में प्रयागराज जनपद में स्थित पूर्व माध्यमिक, माध्यमिक एवं उच्च माध्यमिक स्तर पर अध्यापनरत् शिक्षकों को जनसंख्या माना गया है। न्यादर्श के रूप में प्रयागराज जनपद में स्थित पूर्व माध्यमिक, माध्यमिक एवं उच्च माध्यमिक स्तर पर अध्यापनरत् 100 शिक्षकों का चयन साधारण यादृच्छिक विधि से किया गया है। शिक्षकों के शैक्षिक अभिप्रेरणा मापनी का निर्माण एवं प्रमाणीकरण डा0 के0एस0 मिश्र एवं डा0 प्रतीक उपाध्याय द्वारा तथा शिक्षक कृत्य संतोष मापनी प्रो0 एस0 पी0 गुप्ता व जे0 पी0 श्रीवास्तव द्वारा निर्मित व मानकीकृत है। प्रस्तुत अध्ययन में आँकड़ों के विश्लेषण एवं गुणनफल आर्घूण सहसम्बन्ध गुणांक सांख्यिकी विधियों का प्रयोग किया गया है। अध्ययन के निष्कर्ष पाया कि शिक्षकों के शैक्षिक अभिप्रेरणा एवं कृत्य संतोष की विमाओं वेतन एवं अन्य लाभ, सहकर्मियों के मध्य अन्तर्वैयक्तिक सम्बन्ध, अध्यापक–प्राचार्य सम्बन्ध, उपलब्धि, सामुदायिक दृष्टिकोण, पर्यवेक्षण, पारिवारिक जीवन तथा पहचान एवं स्तर के मध्य धनात्मक सम्बन्ध है। शिक्षकों शिक्षकों के शैक्षिक अभिप्रेरणा एवं कृत्य संतोष की विमाओं व्यवसाय, अध्यापक–छात्र सम्बन्ध, शिक्षण संस्थान, कार्यस्थितियाँ, कार्यभार, योग्यता का उपयोग, गतिविधि, स्वतंत्रता, नीतियाँ एवं अभ्यास, बढ़ोत्तरी एवं विकास की संभावना, पुस्तकालय नीति और अभ्यास तथा सुरक्षा के मध्य सम्बन्ध नहीं है।

की–वर्ड– शिक्षक, शैक्षिक अभिप्रेरणा, कृत्य संतोष

प्रस्तावना

शिक्षा ही वह संस्कार है, जो व्यक्तियों को भिन्नता के आधार पर योग्य बनाता है। महात्मा गाँधी शिक्षा को बालक या प्रौढ़ के शरीर, मन और आत्मा में विद्यमान सर्वोत्तम गुणों के सर्वांगीण विकास का साधन मानते थे। वास्तव में योग्य, कुशल एवं प्रभावपूर्ण शिक्षक ही वह धुरी है जिसके चारों ओर सम्पूर्ण शिक्षण प्रक्रिया घूमती है। शिक्षक के सामान्य एवं कक्षागत क्रियाकलाप शिक्षक व्यवहार की ओर संकेत करते हैं और इन क्रियाकलापों पर शिक्षक की प्रभावशीलता आधारित होती है। इस सफलता के सन्दर्भ में शिक्षक के प्रति अन्य व्यक्तियों द्वारा प्रतिक्रियाएं प्रदर्शित की जाती हैं। ये प्रतिक्रियाएं शिक्षक की प्रभावशीलता को दर्शाती हैं। शिक्षक की प्रभावशीलता में उसकी शिक्षा तथा सामान्य व तत्कालीन ज्ञान, प्रेरित करने की योग्यता, शिक्षण कौशल, व्यवसाय से सम्बन्धित ज्ञान, पाठ्य सहगामी क्रियाओं का ज्ञान, कक्षा–कक्ष प्रबन्ध की योग्यता, समाज एवं विद्यालय के अन्य सदस्यों के साथ आपसी मेल–मिलाप का

स्वभाव, संवेगात्मक रूप से स्थिर, सलाह, निर्देशन की योग्यता, नैतिक रूप से कुशल तथा प्रभावशाली व्यक्तित्व को समाहित किया जाता है। इन सब क्रियाओं के प्रति विद्यालय के प्राचार्य, साथी समूह, स्वयं शिक्षक एवं विद्यार्थियों की प्रति क्रियाओं में अमुख– शिक्षकों की प्रभावशीलता के रूप में प्रेरित किया जाता है।

किसी भी देश की शिक्षा प्रणाली की सफलता अधिकांशतः उस देश के शिक्षकों की गुणवत्ता एवं प्रभावशीलता पर निर्भर करती है। शिक्षकों का उत्तरदायित्व कक्षा में पाठ्य या विषय–वस्तु का शिक्षण ही नहीं वरन् राष्ट्र की चिंतनधारा को बदलने की शक्ति, व्यवसाय, चुनाव, सामाजिक जागरूकता, समाज व देश का विकास पाठ्य सहगामी क्रियाएं नवीन तकनीकी की जानकारी देना भी उसका कर्तव्य है।

शिक्षा पद्धति की सफलता शिक्षकों की योग्यता पर निर्भर करती है। अच्छे एवं प्रभावपूर्ण शिक्षकों के अभाव में सर्वोत्तम शिक्षा पद्धति का भी असफल होना अवश्यम्भावी है लेकिन अच्छे प्रभावपूर्ण एवं योग्य शिक्षकों द्वारा शिक्षा पद्धति के दोषों को भी अधिकांशतः दूर किया जा सकता है। शिक्षक कर्तव्यनिष्ठ, विषय ज्ञान के साथ–साथ चरित्रवान, धैर्यवान, परिश्रमी प्रभावपूर्ण शिक्षण वाला तथा मैत्रीपूर्ण सम्बन्ध स्थापित करने वाला है तो उसे अपने व्यवसाय में संतुष्टि, सफलता व पूर्ण सम्मान मिलता है।

वर्तमान समय में शिक्षित बेरोजगारी बढ़ने तथा अन्य विकल्प न मिलने पर विवश होकर व्यक्ति अध्यापन व्यवसायिक करने लगे हैं। विवशतावश शिक्षक बन जाने पर भी उनके सामने कुछ ऐसे कारक उत्पन्न हो जाते हैं, जिससे उनकी शिक्षण प्रभावशीलता प्रभावित होती है। उनकी योग्यता क्षमतानुसार उचित पद, सेवा सुरक्षा, वेतन, व्यवसायिक दशाएं प्राप्त साधन–सुविधाएं, वातावरण, संगठन का अभाव, सहयोगियों, प्रधानाचार्य, प्रबन्धकों के साथ उचित मानवीय सम्बन्धों के अभाव आदि के कारण शिक्षक कुंठित रहते है। परिणामस्वरूप वह अपने शिक्षण व्यवसाय के साथ चाहकर भी न्याय नहीं कर पाते है। अतः उचित पर्यावरण एवं सहयोगात्मक व्यवहार न मिलने से शिक्षकों में अनेक मनोवैज्ञानिक समस्यायें उत्पन्न हो जाती है। ऐसी परिस्थितियों में शिक्षक प्रभावपूर्ण शिक्षण करने में सक्षम नहीं हो पाते है। वे अपने कर्तव्यों एवं उत्तरदायित्वों का पालन उचित प्रकार से नहीं कर सकेंगे साथ ही शिक्षक विद्यार्थियों को उनके परिवार, समाज व देश के प्रति दायित्वों की जानकारी प्रदान करने में सक्षम नहीं हो सकेंगे, जिसका प्रभाव पूरे शिक्षण एवं राष्ट्र पर पड़ता है। इसलिए एक कुशल एवं प्रभावपूर्ण शिक्षक के लिए अपने व्यवसाय के प्रति संतुष्टि का होना अति आवश्यक है।

जिन विद्यालयों का वातावरण अच्छा होता है उन विद्यालयों के शिक्षक भी व्यवसायिक–सन्तुष्टि का अनुभव करते हैं। ऐसे शिक्षक विद्यालय के वातावरण को सदैव अच्छा बनाये रखने का प्रयास करते हैं, क्योंकि उनके मनोबल समुन्नत रहते हैं। शिक्षकों को प्रधानाध्यापक से मानवीय व्यवहार की अनुभूति होती है, समय–समय पर प्रधानाध्यापक शिक्षकों को पृष्ठपोषण देते है, शिक्षकों की समस्याओं को जानकर निदान देने का प्रयास करते है, आवश्यकता पड़ने पर शिक्षकों हेतु विद्यालयी नियमों में लचीलापन भी रखते हैं। फलतः शिक्षक कक्षा में मन लगाकर शिक्षण करते हैं जिससे इनके द्वारा पढ़ाये गये छात्रों को अच्छी उपलब्धि मिलती है और शिक्षकों में व्यवसायिक–सन्तुष्टि बनी रहती है।

जिन विद्यालयों में शिक्षकों को विद्यालयी कार्यों में सहभाग के अवसर नहीं मिलते हैं विद्यालय के नियम व प्रशासन शिक्षकों की उन्नति के पक्ष में नहीं होते हैं, शिक्षकों का प्रधानाध्यापक व आपसी शिक्षकों के साथ अच्छा सहकारी सम्बन्ध नहीं होता है, शिक्षकों को व्यवसायिक सुरक्षा प्रदान नहीं की जाती है फलतः शिक्षक व्यवसायिक–सन्तुष्टि का अनुभव नहीं करते हैं।

व्यवसाय के किन पक्षों अथवा रीतियों से सन्तोष प्राप्त होता है यह मनोवैज्ञानिक विषय हैं एक व्यक्ति के लिये काम की अच्छी से अच्छी दशाएं, सामाजिक सम्मान एवं प्रतिष्ठा, उत्तम वेतन, मनोवांछित स्थान पर नियुक्ति होने के बावजूद उसे वह सन्तोष प्राप्त नहीं होता है जो किसी समान योग्यता रखने वाले किसी दूसरे व्यक्ति को कम सुविधाजनक अवस्थाओं और कम वेतन में भी प्राप्त हो जाता है। कहने का अभिप्राय यह है कि सन्तोष अथवा सन्तुष्टि एक आन्तरिक चीज है वाह्य नहीं। इसका सम्बन्ध मनुष्य के ह्रदय से होता है। ऐसे अनेक व्यक्ति होते है जो श्रेष्ठतम अवस्थाओं में भी असन्तुष्ट दिखाई देते हैं और इसके विपरीत अनेक ऐसे भी व्यक्ति होते हैं जो प्रतिकूल परिस्थितियों में

अपने व्यवसाय के प्रति सन्तुष्ट नजर आते हैं। लेकिन इसके बावजूद इस तथ्य को झुठलाया नहीं जा सकता है कि सन्तुष्टि अथवा सन्तोष की भावना के मूल में भी कुछ प्रवृत्ति मूलक और भौतिकवादी परिस्थितियाँ होती है। एक व्यक्ति किसी व्यवस्था को इतना अधिक पसन्द करता है कि वह अच्छी से अच्छी भौतिक सुविधाएं व सम्मान मिलने वाले किसी बड़े से बड़े पद को ठुकरा सकता है। इसके विपरीत कुछ लोग उसी व्यवसाय या व्यवसायिक को करना पसन्द करते है और उसी में सर्वाधिक तृप्ति अनुभव करते हैं जिसमें सर्वाधिक श्रेष्ठ आर्थिक एवं भौतिक सुविधाएँ मिलें। कहने का तात्पर्य यह है कि व्यवसाय से मिलने वाले सन्तोष के लिए सबसे पहली आवश्यकता प्रवृत्तिजन्य होती है, अर्थात् अपने स्वभाव, प्रवृत्ति रूचि और इच्छाओं के अनुरूप मिलने वाले व्यवसाय मे अधिक सन्तुष्टि की पहली शर्त है।

अध्ययनकर्त्ता ने अपने अध्ययन के लिए **प्रो0 एस0 पी0 गुप्ता** द्वारा निर्मित **"अध्यापक कृत्य संतोष मापनी"** का प्रयोग किया है। यह बीस क्षेत्रों में व्यावसायिक सन्तोष का मापन करती है। इन बीस क्षेत्रों के प्रत्येक क्षेत्र में कृत्य संतोष की परिभाषा इस प्रकार की गई है :–

1. **वेतन और अन्य लाभ :** शिक्षकों को शिक्षण कार्य के लिए मिलने वाले वेतन एवं अन्य स्रोतों से कुल अर्जित आय से कृत्य सन्तोष।
2. **सहकर्मी के साथ व्यक्तिगत अन्तर्वैयक्तिक सम्बन्ध :** विद्यालयों में शिक्षकों एवं अन्य कर्मचारियों के साथ उनके व्यक्तिगत एवं अन्तर्वैयक्तिक सम्बन्धों के प्रति सन्तुष्टि।
3. **अध्यापक–प्राचार्य सम्बन्ध :** विद्यालय के प्रधानाचार्य एवं शिक्षकों के साथ अन्तक्रिया सन्तुष्टि।
4. **व्यवसाय :** शिक्षकों का शिक्षण व्यवसाय के प्रति सन्तुष्टि।
5. **अध्यापक–विद्यार्थी सम्बन्ध :** शिक्षकों का विद्यार्थियों के मध्य अन्तर्क्रिया एवं सम्बन्ध के प्रति सन्तुष्टि।
6. **शिक्षण संस्था :** शिक्षकों का अपने संस्थान के प्रति सन्तुष्टि।
7. **कार्य परिस्थिति :** विद्यालय में शिक्षकों के भौतिक शिक्षण कार्यों एवं परिस्थितियों तथा उनमें उपलब्ध संसाधनों के प्रति सन्तुष्टि।
8. **कार्यभार :** विद्यालय में शिक्षकों को दिये गये कार्यों के प्रति सन्तुष्टि।
9. **योग्यता का उपयोग :** शिक्षकों को योग्यता के अनुसार कार्य के प्रति सन्तुष्टि।
10. **उपलब्धि :** शिक्षकों द्वारा विद्यालय में किये जाने वाले शिक्षण कार्यों से प्राप्त होने वाले उपलब्धि के प्रति सन्तुष्टि।
11. **क्रिया–कलाप :** शिक्षकों द्वारा किये जाने वाले शिक्षण कार्य के कर्त्तव्यों के प्रति जो कार्य वास्तविक रूप से किया जाता है, के प्रति सन्तोष।
12. **सामुदायिक पहलू :** विद्यालय में अन्य लोगों के द्वारा किये जाने वाले कार्यों के प्रति सन्तुष्टि।
13. **पर्यवेक्षण :** विद्यालय में पर्यवेक्षक सहायोग एवं उनके प्रति शिक्षकों की सन्तुष्टि।
14. **पारिवारिक जीवन :** शिक्षकों के पारिवारिक आवश्यकताओं के अनुरूप सन्तुष्टि।
15. **स्वतंत्रता :** शिक्षकों के शिक्षण कार्यों में कौशलों के विकास के उपलब्ध अवसर के प्रति सन्तुष्टि।
16. **नीतियाँ और अभ्यास :** विद्यालय में सरकारी एवं विद्यालयी नीतियों के प्रति शिक्षकों की सन्तुष्टि।
17. **उन्नति और विकास की सम्भावना :** शिक्षकों का विद्यालय में उन्नति एवं प्रोन्नति के प्रति सन्तुष्टि।

18. **पुस्तकालय योजना और अध्ययन की व्यवस्था :** विद्यालय में पुस्तकालय एवं शिक्षण कार्यों में निहित संसाधनों के प्रति सन्तुष्टि।

19. **सुरक्षा :** शिक्षकों का विद्यालय में बने रहने एवं स्थायी रहने के प्रति सन्तुष्टि।

20. **मान्यता व स्तर :** दी गयी जिम्मेदारी से प्राप्त प्रशंसनीय संतोष को देखते हुए उसके साथ संतोष।

अभिप्रेरणा एक ऐसी परिकल्पनात्मक प्रक्रिया है जो प्राणी के व्यवहार के निर्धारण व संचालन से सम्बन्ध रखती है। व्यवहार को अनुप्रेरित, सक्रिय, प्रारम्भ अथवा बनाए रखने वाले कारकों को अभिप्रेरणात्मक कारक कहा जाता है। अभिप्रेरणात्मक प्रक्रियाओं को इंगित करने के लिए प्रयुक्त किया जाता है। वास्तव में यह एक आन्तरिक शक्ति होती हो जो प्राणी को किसी विशिष्ट प्रकार के कार्य को करने के लिए प्रेरित करती हैं। अभिप्रेरणा को प्रत्यक्ष निरीक्षण के द्वारा देखा जाना सम्भव नहीं हो पाता हैं प्राणी के व्यवहार का अवलोकन करके उसकी अभिप्रेरणा को समझा जा सकता है। अभिप्रेरणा वास्तव में क्यों के प्रश्न का उत्तर देती है। व्यक्ति खाना क्यों खाता है? व्यक्ति दूसरों से क्यों लड़ता है? व्यक्ति उच्च पदों पर क्यों जाना चाहता है? जैसे प्रश्नों का उत्तर अभिप्रेरणा से सम्बन्धित है।

गिलफोर्ड के अनुसार, अभिप्रेरणा एक कोई भी विशेष आन्तरिक दशा या कारक है जो क्रिया को आरम्भ करने तथा बनाये रखने की प्रवृत्त होती है।

उपयुक्त परिभाषाओं का विश्लेषण करने पर शिक्षकों में अभिप्रेरणा के निम्नलिखित तथ्य स्पष्ट होते हैं– अभिप्रेरणा शिक्षकों के शिक्षण व्यवहार को जागृत या उत्तेजित करने के साथ–साथ व्यवहार का संचालन, शिक्षक के अन्दर शक्ति परिवर्तन, क्रियाशीलता का द्योतक, एवं शिक्षकों को निर्देशन प्रदान करती है।

अतः उपरोक्त के आधार पर कहा जा सकता है कि शैक्षिक अभिप्रेरणा शिक्षकों की आन्तरिक कारक या स्थिति अथवा तत्परता है जो कक्षा–कक्ष में विद्यार्थियों के अन्दर उत्प्रेरणा जाग्रत करती है तथा विद्यार्थियों के शिक्षण कार्यों में बढ़ावा देने में अपना विशेष योगदान प्रदान करता है।

दूसरे शब्दों में कहा जा सकता है कि शिक्षकों की शैक्षिक अभिप्रेरणा उनके आन्तरिक एवं बाह्य दशायें होती है जिससे वह शिक्षण कार्यों में अपने विशेष क्रियाओं द्वारा विद्यार्थियों को प्रेरित तथा क्रियाशील बनाती है।

अतः कहा जा सकता है कि शिक्षकों के कृत्य संतोष में उनके शैक्षिक अभिप्रेरणा का सम्बन्ध होना स्वाभाविक है। पूर्व में किये गये अध्ययनों में **इलीफेलेट (2016)** ने अध्ययन के निष्कर्ष में इंगित किया कि अध्यापकों के प्रदर्शन को प्रभावित करने वाले अन्य कारकों जैसे किताबों, प्रयोगशाला और पर्याप्त शिक्षक संख्या, जल, अध्यापकों की भोजन की गुणवत्ता, स्वास्थ्य सेवा, निर्णयन में अध्यापकों की भूमिका भी कार्य प्रदर्शन को प्रभावित करती है। **नवचुकवु, प्रिन्स (2016)** ने अध्ययन के निष्कर्ष में इंगित किया कि अध्यापकों की कार्य सन्तुष्टि की सुनिश्चितता अनेक अध्यापन प्रदर्शन को प्रभावित करता है क्योंकि एक अध्यापक के तौर पर आजकल शैक्षिक नीतियों, प्रशासन, वेतन, आवश्यक सुविधाओं, भौतिक पुरस्कार और प्रगति से असंतुष्ट है। **उठवाल, राहुल (2017)** ने अध्ययन में पया कि शिक्षक के लिए यह आवश्यक है कि वह कक्षा में उपस्थित विद्यार्थियों की आवश्यकताओं, प्रेरणाओं एवं मनोवृत्तियों की जानकारी रखें। शिक्षक विद्यार्थियों को समझने में जिस सीमा तक सफल होते हैं उसी समय तक उनका अध्यापन प्रभावी होता है तथा विद्यार्थी उनकी शिक्षा से लाभान्वित हो पाते हैं। **महावर, ज्योति एवं पारीक, अलका (2018)** ने अध्ययन में पाया कि सरकारी एवं गैर सरकारी विद्यालयों के विद्यार्थियों के अभिप्रेरित व्यवहार में सार्थक अन्तर है अर्थात् गैर सरकारी विद्यालयों के विद्यार्थियों में अभिप्रेरित व्यवहार सरकारी विद्यालयों के विद्यार्थियों की अपेक्षा उच्च पाया गया।

अतः पूर्व में प्राप्त अध्ययनों के आधार पर यह कहा जा सकता है कि शिक्षकों के कृत्य संतोष पर उनकी अभिप्रेरणा सम्बन्धित हैं।

समस्या कथन

"शिक्षकों के शैक्षिक अभिप्रेरणा एवं कृत्य संतोष के मध्य सम्बन्ध का अध्ययन"।

अध्ययन का उद्देश्य–

प्रस्तुत अध्ययन में निम्नलिखित उद्देश्यों का अध्ययन किया गया है–

1. शिक्षकों के शैक्षिक अभिप्रेरणा एवं कृत्य संतोष के मध्य सम्बन्ध का अध्ययन करना।
2. शिक्षकों के शैक्षिक अभिप्रेरणा एवं कृत्य संतोष के विमा के मध्य सम्बन्ध का अध्ययन करना।

परिकल्पनाएँ–

प्रस्तुत अध्ययन में निम्नलिखित शून्य परिकल्पनाओं का परीक्षण किया गया है–

1. शिक्षकों के शैक्षिक अभिप्रेरणा एवं कृत्य संतोष के मध्य सम्बन्ध नहीं है।
2. शिक्षकों के शैक्षिक अभिप्रेरणा एवं कृत्य संतोष के विमा के मध्य सम्बन्ध नहीं है।

शोध विधि–

प्रस्तुत अध्ययन में वर्णनात्मक अनुसंधान के अन्तर्गत सहसम्बन्धात्मक सर्वेक्षण विधि का प्रयोग किया गया है।

जनसंख्या

जनसंख्या के रूप में प्रयागराज जनपद में स्थित पूर्व माध्यमिक, माध्यमिक एवं उच्च माध्यमिक स्तर पर अध्यापनरत् शिक्षकों को जनसंख्या माना गया है।

न्यादर्श

न्यादर्श के रूप में प्रयागराज जनपद में स्थित पूर्व माध्यमिक, माध्यमिक एवं उच्च माध्यमिक स्तर पर अध्यापनरत् 100 शिक्षकों का चयन साधारण यादृच्छिक विधि से किया गया है।

उपकरण–

शिक्षकों के शैक्षिक अभिप्रेरणा मापनी का निर्माण एवं प्रमाणीकरण डा0 के0एस0 मिश्र एवं डा0 प्रतीक उपाध्याय द्वारा तथा शिक्षक कृत्य संतोष मापनी प्रो0 एस0 पी0 गुप्ता व जे0 पी0 श्रीवास्तव द्वारा निर्मित व मानकीकृत है।

सांख्यिकी विधियाँ

प्रस्तुत अध्ययन में आँकड़ों के विश्लेषण एवं गुणनफल आर्घूण सहसम्बन्ध गुणांक सांख्यिकी विधियों का प्रयोग किया गया है।

आँकड़ों का विश्लेषण एवं व्याख्या–

1. शिक्षकों के शैक्षिक अभिप्रेरणा एवं कृत्य संतोष के मध्य सम्बन्ध का अध्ययन करना।

H_{01} शिक्षकों के शैक्षिक अभिप्रेरणा एवं कृत्य संतोष के विमा के मध्य सम्बन्ध नहीं है।

सारणी सं0 01

शिक्षकों के शैक्षिक अभिप्रेरणा एवं कृत्य संतोष के विमा के मध्य सहसम्बन्ध गुणांक

क्रम	शैक्षिक अभिप्रेरणा एवं कृत्य संतोष के विमा	न्यादर्श	सह–सम्बन्ध गुणांक (r)
1.	वेतन एवं अन्य लाभ	100	0.3213*
2.	सहकर्मियों के मध्य अन्तर्वैयक्तिक सम्बन्ध	100	0.2123*
3.	अध्यापक–प्राचार्य सम्बन्ध	100	0.2284*
4.	व्यवसाय	100	0.1110
5.	अध्यापक–छात्र सम्बन्ध	100	0.1517
6.	शिक्षण संस्थान	100	0.0629
7.	कार्यस्थितियाँ	100	0.1581
8.	कार्यभार	100	0.1534
9.	योग्यता का उपयोग	100	0.0715
10.	उपलब्धि	100	0.2178*
11.	गतिविधि	100	0.1138
12.	सामुदायिक दृष्टिकोण	100	0.3638*
13.	पर्यवेक्षण	100	0.2732*
14.	पारिवारिक जीवन	100	0.3923*
15.	स्वतंत्रता	100	0.0908
16.	नीतियाँ एवं अभ्यास	100	0.0395
17.	बढ़ोत्तरी एवं विकास की सम्भावना	100	0.1846*
18.	पुस्तकालय नीति और अभ्यास	100	-0.0751
19.	सुरक्षा	100	0.0445
20.	पहचान एवं स्तर	100	0.5989*

*.05 स्तर पर सार्थक

सारणी संख्या 1 के अवलोकन से स्पष्ट है कि शिक्षकों के शैक्षिक अभिप्रेरणा एवं कृत्य संतोष की विमाओं वेतन एवं अन्य लाभ, सहकर्मियों के मध्य अन्तर्वैयक्तिक सम्बन्ध, अध्यापक–प्राचार्य सम्बन्ध, उपलब्धि, सामुदायिक दृष्टिकोण, पर्यवेक्षण, पारिवारिक जीवन तथा पहचान एवं स्तर के मध्य सह–सम्बन्ध गुणांक के मान क्रमशः 0.3213, 0.2123, 0.2284, 0.2178, 0.3638, 0.2732, 0.3923 एवं 0. 5989 हैं, जो .05 स्तर पर सार्थक हैं। अतः शिक्षकों के शैक्षिक अभिप्रेरणा में कमी या वृद्धि का उनके कृत्य संतोष की विमाओं वेतन एवं अन्य लाभ, सहकर्मियों के मध्य अन्तर्वैयक्तिक सम्बन्ध, अध्यापक–प्राचार्य सम्बन्ध, उपलब्धि, सामुदायिक दृष्टिकोण, पर्यवेक्षण, पारिवारिक जीवन तथा पहचान एवं स्तर में कमी या वृद्धि होगी।

सारणी के अवलोकन से यह स्पष्ट होता है कि शिक्षकों शिक्षकों के शैक्षिक अभिप्रेरणा एवं कृत्य संतोष की विमाओं व्यवसाय, अध्यापक–छात्र सम्बन्ध, शिक्षण संस्थान, कार्यस्थितियाँ, कार्यभार, योग्यता का उपयोग, गतिविधि, स्वतंत्रता, नीतियाँ एवं अभ्यास, बढ़ोत्तरी एवं विकास की संभावना, पुस्तकालय नीति और अभ्यास तथा सुरक्षा के मध्य सह–सम्बन्ध गुणांक का मान 0.1110, 0.1517, 0.0629, 0.1581, 0.1534, 0.0715, 0.1138, 0.0908, 0.0395, 0.1846, –0.0751 तथा 0.0445 है जो .05 स्तर पर सार्थक नहीं है। अतः शिक्षकों के शैक्षिक अभिप्रेरणा में कमी या वृद्धि का उनके कृत्य संतोष की विमाओं व्यवसाय, अध्यापक–छात्र सम्बन्ध, शिक्षण संस्थान, कार्यस्थितियाँ, कार्यभार, योग्यता का उपयोग,

गतिविधि, स्वतंत्रता, नीतियाँ एवं अभ्यास, बढ़ोत्तरी एवं विकास की संभावना, पुस्तकालय नीति और अभ्यास तथा सुरक्षा में कमी या वृद्धि नहीं पायी गयी।

निष्कर्ष–

प्रस्तुत अध्ययन में निम्नलिखित निष्कर्ष प्राप्त हुये–

- शिक्षकों के शैक्षिक अभिप्रेरणा एवं कृत्य संतोष की विमाओं वेतन एवं अन्य लाभ, सहकर्मियों के मध्य अन्तर्वैयक्तिक सम्बन्ध, अध्यापक–प्राचार्य सम्बन्ध, उपलब्धि, सामुदायिक दृष्टिकोण, पर्यवेक्षण, पारिवारिक जीवन तथा पहचान एवं स्तर के मध्य धनात्मक सम्बन्ध है।
- शिक्षकों शिक्षकों के शैक्षिक अभिप्रेरणा एवं कृत्य संतोष की विमाओं व्यवसाय, अध्यापक–छात्र सम्बन्ध, शिक्षण संस्थान, कार्यस्थितियाँ, कार्यभार, योग्यता का उपयोग, गतिविधि, स्वतंत्रता, नीतियाँ एवं अभ्यास, बढ़ोत्तरी एवं विकास की संभावना, पुस्तकालय नीति और अभ्यास तथा सुरक्षा के मध्य सम्बन्ध नहीं है।

सुझाव–

प्रस्तुत अध्ययन के निष्कर्ष के आधार पर यह सुझाव प्रस्तुत किया जा सकता है कि जिस प्रकार विद्यार्थियों की अभिप्रेरणा उनके शैक्षिक उपलब्धि में सकारात्मक प्रभाव डालती है उसी प्रकार शिक्षकों के शैक्षिक अभिप्रेरणा उनके कृत्य संतोष के साथ–साथ उनके शैक्षिक कार्यों में भी प्रभाव डालती है। अतः संस्थान द्वारा शिक्षकों को अभिप्रेरित किया जाना आवश्यक है साथ ही साथ शिक्षा आयोग एवं सरकार द्वारा ऐसी योजनाएँ एवं नीतियाँ समय–समय पर बनायी जानी चाहिए जिससे शिक्षक अभिप्रेरित होकर शिक्षण कार्यों को सुचारू एवं सुदृढ़ के साथ–साथ उच्च स्तरीय शिक्षण कार्य कर सकें जिसका लाभ बच्चे पा सके।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची :

- उठवाल, राहुल (2017). एक शिक्षक की प्रेरणा, उत्प्रेरक के रूप में चुनौतियाँ एवं समाधान, इण्टरनेशनल जर्नल ऑफ हिन्दी रिसर्च, वॉल्यूम–3, इश्शू–5, पृ0 06–08
- इलीफेलेट (2016). ए कम्प्रेटिव स्टडी ऑफ टीचर्स मोटिवेशन ऑन वर्क परफार्मेन्स इन सेलेक्टेड पब्लिक एण्ड प्राइवेट सेकेण्डरी स्कूल्स इन किलमंजारो रीजन, तंजानिया, इण्टरनेशनल जर्नल ऑफ एजुकेशन एण्ड रिसर्च, वॉ0 4, नं0 6, पृ0 583–600
- गुप्ता, एस0पी0 (2005). उच्चतर शिक्षा मनोविज्ञान, शारदा पुस्तक भवन, इलाहाबाद, पृ0 502
- गुप्ता, एस0पी0 (2005). आधुनिक मापन एवं मूल्यांकन, शारदा पुस्तक भवन, इलाहाबाद, पृ0 533
- गुप्ता, एस.पी. एवं गुप्ता, अलका (2009). शिक्षा मनोविज्ञान, तृतीय संस्करण, इलाहाबाद : शारदा पुस्तक भवन, पृ0 226
- नवचुकवु, प्रिन्स (2016). टीचर्स जॉब सैटिसफैक्शन एण्ड मोटिवेशन फॉर स्कूल इफ्टेक्टिवनेस : एन एसेसमेण्ट, https://www.researchgate.net/publication/289046365
- महावर, ज्योति एवं पारीक, अलका (2018). शिक्षकों की नेतृत्वशीलता का विद्यार्थियों के अभिप्रेरित व्यवहार पर पड़ने वाले प्रभाव का अध्ययन, इन्सपीरा–जर्नल ऑफ मार्डन मैनेजमेण्ट एण्ड इण्टरप्रीन्यूरशिप, वॉल्यूम–08, नं0 04, पृ0 552–554

ISSN : 2319-7137, Volume: 15/Issue: 01, January-June : 2022

उषा प्रियंवदा के उपन्यासों में भारतीय सामाजिक वैशिष्ट्य

डॉ0 प्रद्युम्न सिंह
असि0 प्रोफेसर हिन्दी
हंडिया पी0जी0 कॉलेज, हंडिया,
प्रयागराज

सिन्दू यादव
शोध छात्रा, हिन्दी
हंडिया पी0जी0 कॉलेज, हंडिया,
प्रयागराज

साहित्य और समाज का घनिष्ठ संबंध रहा है। जो समाज में घटित होता है, उसका सही चित्रण हम साहित्य में ही पाते हैं। साहित्य में समाज के हर घटक का चित्रण होता है।नारी समाज का एक महत्वपूर्ण घटक है,जिसके बिना साहित्य अधूरा है। बिना नारी चित्रण के, नारी महिमा मंडन के साहित्य अपूर्ण रहता है। नारी को साहित्य का झरना भी माना गया।जिसमें डूब कर ही साहित्यकार अपनी मंजिल को प्राप्त करता है। महादेवी वर्मा साहित्य और नारी के संबंध में लिखती है। ''नारी जागरण की दृष्टि से तो साहित्य के स्वत्व और व्यथा का समर्थ व्याख्याकार ही रहा है। कवियों के कान से भारत की जय ही नहीं गूंजी नारी की जय भी बनी हुई है तथा साहित्यकारों की आंखों में भारत माता की आस्था पर ही आंसू नहीं आए हैं।विवश नारी के बंधनों पर भी आए हैं।''[1]

भारतीय समाज का ताना–बाना मुख्यतः स्त्री और पुरुष के संबंधों पर ही चलता है। दोनों जीवन के दो पहिए माने जाते हैं। दोनों का समाज में समान महत्व होता है। एक से दूसरा कम या अधिक नहीं होता। जहाँ पुरुष पितृसत्तात्मक समाज का मुखिया है, वही नारी को देवी का अवतार माना जाता है।नारी की इज्जत की जाती है और उसे लक्ष्मी स्वरूपा माना जाता है। किसी भी शुभ कार्य में नर और नारी दोनों की अहम भूमिका होती है। दोनों के ही सानिध्य से मांगलिक कार्य संपन्न होते हैं।इसीलिए नारी को जीवनसंगिनी कहा जाता है।

उषा प्रियंवदा ने अपने उपन्यासों में भारतीय समाज का वास्तविक रेखांकन किया है। समाज में सबसे महत्वपूर्ण भूमिका नारी की माँ के रूप में होती है। इसके पश्चात पत्नी, प्रेयसी, बेटी, बहन, सहेली,चाची आदि रूपों में भी उसका चरित्र दिखाई पड़ता है। माँ यानी बच्चों के लिए ईश्वरीय रुप होती है। उसे हम देबी कहते हैं वह ममता, समता और वात्सल्य की प्रतिमूर्ति होती है। उषा जी के उपन्यासों में हमें माँ का एक अलग रूप दिखाई देता है, वह स्वार्थी भी है और कठोर भी है। 'पचपन खंभे लाल दीवारें' उपन्यास की मां हमें स्वार्थी रूप में दिखाई देती है। घर की जिम्मेदारी उठाने वाली बेटी सुषमा की अगर शादी हो गई तो घर कौन संभालेगा? यह वह अच्छी तरह जानती है और इसीलिए सुषमा की शादी की बात पर कहती हैं– ''तुम जानो कृष्णा, सुषमा की शादी तो अब हमारे बस की बात रही नहीं। इतना पढ़ लिख गई, अच्छी नौकरी है और अब तो, क्या कहने हैं,हॉस्टल में वार्डन भी बनने वाली है। बंगला और चपरासी अलग से मिलेगा, बताओ इसके जोड़ का लड़का मिलना तो मुश्किल ही है।तुम्हारे जीजा तो कहते हैं कि लड़की स्यानी है, जिससे मन मिले, उसी से कर ले। हम खुशी–खुशी शादी में शामिल हो जाएंगे।''[2]यहाँ एक माँ की पुत्री के प्रति जो ममता होती है, वह ममता सुषमा की मां ने दिखाई नहीं पड़ती। क्योंकि माँ का यह दूसरा रूप, स्वार्थ और लिप्सा का रूप है। जिसे पुत्री के भविष्य से ज्यादा अपने भविष्य की चिंता है। कारण स्पष्ट है कि उसे पता है कि पुत्री के विवाह के पश्चात वह और पुरुष की देखभाल करने वाला कोई नहीं होगा। माँ से ज्यादा चिंता उसकी मौसी कृष्णा को है, जो सुषमा को यह बताना चाहती है कि भाई बहन किसी के नहीं होते। सब अपने–अपने घर के होंगे। आज की दुनिया में कौन किसका होता है। यह भी व्यक्त नहीं कर सकते

इसलिए सुषमा तुम अपने बारे में सोचो। सुषमा चुप रही।अपने मन को समझा कर दुनिया की आँखों से छिपाकर जिस सत्य को बहुत दबा–ढक कर रखा था, मौसी उसे अप्रयोजन ही उभार रही थी और उस बात की अधिक चर्चा करने से अम्मा नाराज हो जाएगी। ऐसे अवसरों पर अम्मा प्रायः दोष सुषमा के ही सिर डालकर बरी हो जाती थी– अब मैं क्या करूँ?सयानी लड़की है, कोई बच्चा तो है नहीं जो समझाने–बुझाने से मान जाएगी। वह शादी करने को राजी ही नहीं होती तो मैं क्या करूँ?और मोहल्ले–पड़ोस वाले उनकी बात मान जाते। पर अम्मा भी जानती थी और सुषमा भी, इसीलिए ऐसे मौकों पर एक दूसरे से आँखें चुरा जाती थी। इस घर की मुख्य आय सुषमा का वेतन थी। अम्मा ने पहले तो न चाहा था कि लड़की घर के बाहर जाकर नौकरी करें, पर अब वह प्रसन्न थी। सुषमा हमेशा ही छोटे भाई बहनों के लिए बहुत करती थी और यह सोचकर अम्मा मन को समझा लेती थी कि उनकी लड़की नौकरी भले ही करें, वैसे सुखी है। सुषमा को अपनी माँ की यह दोहरी फिलासफी अब भी कभी–कभी खटकने लगती थी। घर में माँ का शासन ही चलता था, पिता अस्वस्थ रहते थे, पक्षाघात से पीड़ित। सुषमा माँ से अधिक पिता के निकट थी। माँ अब सुषमा की ओर से निश्चिंत थी, उनका सारा ध्यान अब छोटे बच्चों पर केंद्रित था। सुषमा प्रायः उपेक्षित–सा अनुभव करने लगती थी। वह चाहती थी कि उसके जीवन में आ गए बिखराव को कुछ तो समझने का प्रयत्न करें।''[3]

समाज में परिवार का जो महत्व होता है, उसमें पति–पत्नी की अपनी भूमिका होती है। पत्नी पति की अर्धांगिनी होती है। पत्नी का चरित्र कैसा होना चाहिए? वह पति के समक्ष किस प्रकार से अपने को प्रस्तुत करती है? उसका चित्र हम 'पचपन खंभे लाल दीवारें'उपन्यास में देख सकते हैं। जहाँ उपन्यास की मीरा एक आदर्श तथा पति से अधिक स्नेह करने वाली पत्नी के रूप में चित्रित है।वह कहती है– ''मेरी शादी को तेरह साल हो गए और तब भी जब तक शिशिर घर नहीं लौट आते, मैं जैसे प्राणहीन रहती हूँ, एक शून्य में सांसे लेती हुई।जब वह सामने का गेट खोल कर अंदर आते हैं, तो कभी–कभी दिल ऐसे धड़कता है, जैसे मैंने उन्हें जाना ही न हो।''[4]

'शेष यात्रा' उपन्यास की अनु पति को परमेश्वर समझने वाली पत्नी है। इस वाक्य से उसका पत्नीत्व हमारे सामने दिखाई पड़ता है। अनु के चारों तरफ सामान बिखरा है। ऊँची हील के जूते, पर्स, साड़ियाँ, लिपस्टिके और बीच में वह बैठी है और खूबसूरती से रंगे हुए अपने नाखूनों को सराह रही है। छोटी मामी यह सब देखें तो क्या कहें? डॉली दीदी तो जल भुनकर कोयला हो जाएं। रूप? कहाँ छिपा था अब तक यह रूप? किसी से कभी बताया क्यों नहीं? कभी कहा तक नहीं। प्रणव ने उसे ढूँढ निकाला है, प्रणव उसे मांज रहा है,वह कृतज्ञता से प्रणव के पैरों पर समर्पित हो गई है। प्रणव का मन काम में नहीं लगता, विशेष तौर से आजकल अस्पताल के काम में। घर लौट आता है और अनु को कुछ नहीं करने देता। शाम की चाय का वक्त निकल जाता है,शाम झुक आती है और प्रणव उसमें डूबा रहता है, जैसे कभी छकता ही नहीं।अनु के चेहरे पर बिंदी रंग मारती है। तो यह होता है प्यार। ऐसा होता है, पुरुष का साथ है।''[5]अनु अपने पति को अत्यधिक प्रेम करती है, लेकिन उसके विश्वासघात से वह टूट जाती है। जब बाद में वापस नए सिरे से जिंदगी शुरु करने के लिए अपनी सहेली के भाई से विवाह कर लेती है, तब अनु पति को परमेश्वर समझने की गलती नहीं करती और इसलिए कहती है कि, 'मैंने प्रण किया है कि कभी किसी पुरुष को रोटी ठोक कर नहीं खिलाऊंगी।'इसी उपन्यास में एक दूसरी पात्र विभा है। वह एक ऐसी पत्नी के रूप में चित्रित की गई है, जो किसी दूसरे पुरुष से संबंध रखकर पति का विश्वासघात करती है। और इस बात की, उसके अंदर कोई अपराधी भावना दिखाई नहीं देती, इसीलिए वह कहती है कि, ''अच्छे घर, मियां और बच्चों के बावजूद एक औरत को कुछ खाली–खाली लग सकता है।विभा ने कहा सभी उसकी ओर देखने लगे। हाँ,अकेलापन तो है। 'पर पराए मर्द के साथ मजे करना तो शराफत नहीं।'' कीरत ने कहा।

'तो अब हर रात नींद की गोली खाना, शराब पीना ठीक है?' विभा ने कीरत को देखते हुए कहा।

गोली खाने से शराब पीने से अपने पर ही पड़ती है न, दूसरे की बेचारी बीवी पर तो नहीं बीतती। अपने स्वार्थी प्यार के लिए किसी मासूम की जिंदगी क्यों बिगाड़ी जाए? कीरत ने तेजी से जवाब दिया।

''यह तो उन मियां–बीवी के बीच की बात है। एक आदमी प्रेमिका भी रख सकता है, बीवी भी।'विभा पीछे नहीं हटने वाली थी।''[6]

'अन्तर्वशी' उपन्यास की वाना शुरुआत में एक पतिव्रता के रूप में दिखाई पड़ती है। जिसमें उसका पत्नी स्वरुप झलकता है कि 'अपने संसार में कितनी सुखी, संतुष्ट हो।'पति को सर्वस्व मानने वाली, संपूर्ण जीवन को न्योछावर करने वाली वाना अंदर से संतुष्ट नहीं है। इसीलिए अपने पति के दोस्त राहुल से वह अंदर ही अंदर हृदय से प्रेम करती है। आगे चलकर आखिर में उसकी हो जाती है हमेशा के लिए। इसी उपन्यास की दूसरी पात्र अंजी पत्नी रूप में चित्रित की गई है। उसका पत्नी या नारी रूप भारतीय समाज के अनुकूल है; जहाँ पतिव्रता धर्म स्त्रियों का मुख्य धर्म है। इसीलिए पति के छोड़ने पर वह उसे भूल नहीं पाती। उसका पत्नी स्वरुप इस वाक्य में ही हमारे सामने आता है। "मेरा माथा घूम रहा है वाना। एक तो मेरी जिंदगी में सिर्फ़ असलम अहमद ही केन्द्र रहे। उनके अलावा न किसी को चाहा, न जाना। माफ कर दूँ उनको? वापस आ जाने दूँ ?गले के नीचे यह भी नहीं उतर रहा है।''[7]इस प्रकार उषा प्रियम्वदा के उपन्यासों में हम भारतीय समाज में स्त्री या पत्नी को विविध रुपों में देख सकते हैं।

बेटी के रूप भी इनके उपन्यासों में आदर्श बेटी, त्यागमई बेटी तथा विद्रोही रूप में बेटी का चित्र उपस्थित हुआ है। 'पचपन खंभे लाल दीवारें' में चित्रित बेटी, दूसरों के लिए जीने वाली बेटी, त्यागस्वरुपा रूप में हमारे सामने आती है। परिवार के लिए वह नौकरी करती है तथा अपने प्रेमी का त्याग भी करती है। जिसे हम निम्न वाक्य में उसके त्यागमई रूप को चित्रित पाते हैं। ''पर इन सबको भी तो मदद की जरूरत है मौसी!पिताजी को पेंशन मिलती ही कितनी हैं? उसमें तो दो वक्त दाल–रोटी भी न चले। मैं भी अगर न करूं तो किसके आगे हाथ फैलाएंगे? लड़कों को पढ़ाना है ही, सड़क पर तो आवारा घूमने नहीं दिया जाएगा, और फिर सुषमा के होठों पर मासूम मुस्कराहट आ गई। मैं जो करती हूँ, कर्तव्य समझकर नहीं मौसी, उनके प्यार में करती हूँ।मेरा तो मन होता है कि मेरे पास अगर और कुछ होता तो और भी करती। वह फिरआगे कहती है कि 'अगर मैं सबसे बड़ा लड़का होती तो क्या न करती? उसी तरह मैं अभी करती हूँ। इन लोगों के लिए कुछ करके मन में बड़ा संतोष–सा होता है।अपने लिए तो सभी करते हैं, छोटे भाई–बहनों को कुछ कर सकूं, उस योग्य भी तो पिताजी ने ही बनाया है।''[8]

भारतीय समाज में पुत्रियों की क्या भूमिका होती है? एक बहन अपने भाइयों के लिए किस प्रकार का आत्मीय भाव रखती है। भाइयों के प्रति उसमें त्याग की भावना किस प्रकार से होती है?उसे हम सुषमा के माध्यम से देख सकते हैं। 'सुषमा के दोनों भाई उसे लेने स्टेशन आए थे। सामान उतरवा कर चलने पर संजय ने पूछा, 'जीजी मेरे लिए जैकेट लाई हो?'

'लाई हूँ पगले? उतावला क्यों होता है ?सुषमा ने उसके बाल बिखराते हुए कहा।

घर पहुँच कर सभी उसका बक्स खुलने की प्रतीक्षा में इधर–उधर मंडराने लगे।

''अरे! उसे चौन भी लेने दोगे माँ ने डाटा! मुस्कुराती हुई सुषमा ने बक्स खोला। सबसे पहले निकली संजय की लेदर जैकेट, विनय के लिए सिली हुई कमीजे, निरूपमा के लिए ऊन, प्रतिमा के

सलवार–कमीजों के कपड़े और मैचिंग दुपट्टे, सबसे आखिर में पिताजी के लिए बढ़िया कंबल और मां के लिए साड़ी।''[9]

भारतीय समाज में कोई बेटी यदि कमाऊ हो तो बेटी की व्यक्तिगत आवश्यकता की चिंता परिवार के अन्य सदस्य नहीं करते। उन्हें वह कमाऊ पूत समझते हैं। और उनसे उनकी अपेक्षाएं बढ़ जाती हैं। कहने को तो वे बाहरी तौर पर यह कहते हैं कि तुम्हें ऐसा करने की क्या जरूरत थी ?तुम्हें इतना खर्च करने की क्या जरूरत थी? लेकिन अंदर से उनके मन में चाहत बनी रहती है कि, उन्हें भी कुछ–न–कुछ मिले। 'क्यों इतना रुपया खर्च करती हो? इतना महंगा कंबल लेने की क्या जरूरत थी? पिछले साल ही तो मेरी रजाई में नई रूई पड़ी है। कुछ देर बाद बोले, 'मैं तो तुम्हारे लिए कुछ न कर सका।' उनके स्वर के भीगेपन में सुषमा डूब कर रह गई। उसने खुले हुए पैरों को धोती से ढकते हुए मंद स्वर में कहा, ''इतना सब तो किया आपने पढ़ाया',लिखाया.... और स्वयं उसका कंठ भर आया और वह सिर झुका कर अपनी साड़ी पर छपे मोर और हाथियों की पंक्ति को देखने लगी। पर उस क्षण तक उसके मन में वे सारी शिकायतें जाग उठी थी जो उसे अपने पिता के प्रति थी।कृष्णा मौसी ने ठीक ही कहा था। यदि पिताजी चाहते तो क्या उसका विवाह नहीं कर सकते थे। लोग लाख प्रयत्न कर बेटी के ब्याह का सामान जुटाते हैं। क्या उसी के पिता अनोखे थे? बात असल यह थी कि उन्होंने यह चाहा ही नहीं कि सुषमा की शादी हो, उनके अंतर्मन में यह बात अवश्य होगी कि सुषमा ने से उन्हें सहारा मिलेगा।''[10]भारतीय समाज में बेटियाँ कितनी भी कठोर हो।उनकी परिवार में कितनी भी उपेक्षा की गई हो, लेकिन माता–पिता के प्रति उनके मन में किसी भी प्रकार की दुर्भावना नहीं होती। चाहे माता–पिता ने उनके साथ गलत कार्य किया हो। उनके साथ बेटों के समान व्यवहार न किया हो,उनके साथ पिता और माता का कर्तव्य न निभाया हो, फिर भी बेटियां न केवल बेटी का ही कर्तव्य निभाती हैंअपितु उससे आगे भी वे बेटों की भी भूमिका को स्वयं करते हुए नजर आती हैं। जैसा कि हम सुषमा को देखते हैं–''दीवार से टेक लगाए बैठी सुषमा ने लंबी पलके उठा कर पिता को देखा। उनके थके, हुए चेहरे को देखकर उसे लगा कि उसने उनके साथ अन्याय किया है।उन्होंने कभी न चाहा होगा कि उनकी बेटी अविवाहित रह जाए, पर उनकी अपनी विवशताएं होंगी। जिन्हें वह समझ न पाई होगी।मन ही मन न जाने वह कितना धुले होंगे। अपनी विवशताओं में उलझ कर रह गए होंगे और सुषमा को उस असामर्थ्य की कचोट का आभास भी न हुआ होगा।''[11]

भारतीय समाज में नारियों के प्रति पुरुष की मानसिकता क्या है?उसे अपने लघु उपन्यास 'रुकोगी नहीं राधिका' में उषा प्रियंवदा ने प्रस्तुत किया है।इसमें अधिकांश भारतीय पुरुषों की मानसिकता, नारी को भोग्या समझने की रही है। शारीरिक पवित्रता पर बड़ा जोर दिया जाता है।भारत की सामाजिक नैतिकता तो ऐसी है जो स्त्री मुक्ति में बाधक बनती है। इस उपन्यास के माध्यम से कथाकार ने राधिका को केंद्र में रखकर अपने कलात्मक कौशल द्वारा पुरुष प्रधान समाज की कलई खोली है। ''पुरुष प्रधान समाज व्यवस्था में नारी की एक ऐसी समर्थ गरिमामय व इच्छित प्रतिमा को निर्मित किया है जिससे शरीर का हवाला देकर खारिज नहीं किया जा सकता। नारी शरीर की पवित्रता को लेकर समाज में जो अनावश्यक हव्वा खड़ा कर दिया गया है, उसका निषेध यहाँ राधिका द्वारा मिलता है।''[12] कथाकार ने इस उपन्यास की बुनावट इस प्रकार से की है कि, भारतीय समाज का ताना–बाना जीवंत हो उठा है। राधिका के दादा अपने समय के ख्यातिलब्ध वकील थे। उन्होंने शहर से दूर एक कोठी में तवायफ को रख छोड़ा था। जिसका नाम मुमताज था। जिसे बाबा ताजो कह कर पुकारते थे।पापा की युवावस्था तक वह जीवित थी। माँ की मुँह दिखाई में उसने एक जड़ाऊ कंगनो की जोड़ी भेजी थी। पापा के शब्दों में कहे तो 'वह खूब सुंदर और गोरी हंसमुख थी'। बाबा ने जब एक नारी को भोग्या के रूप में रखा, तब राधिका के पापा क्यों न रखते? आखिर वे भी अपने पिता की आज्ञाकारी संतान थे। अपने युवावस्था में विधुर होने के बाद उन्होंने लंबे अरसे तक विवाह नहीं किया था, लेकिन विद्या के व्यक्तित्व के आकर्षण ने उन्हें पिघला दिया। अपने से बीस साल का अंतर होने के

बाद भी उन्होंने विद्या से शादी की। उसका सबसे पहले प्रभाव तो उनकी बेटी पर पड़ा,जो एक विदेशी युवक के साथ चली गई। राधिका के पिता मात्र एक लेखक बनकर ही संतुष्ट नहीं होने वाले थे। वह अपने जीवन में परिपूर्णता चाहते थे। वह अंदर से जवान थे, एक युवा शरीर का साथ चाहते थे। उनकी मनोनीता प्रौढ़ आयु की वात्सल्य से परिपूर्ण स्त्री होती तो शायद राधिका उसे स्वीकार भी कर लेती, लेकिन विद्या औसत स्त्रियों से अपेक्षाकृत लंबी थी। वह साड़ी बहुत सावधानी से बाँधती थी, जिससे कि उसके शरीर की सानुपातिकता और भी स्पष्ट हो जाए।यह बात रमा के सभी सखियों ने नोट की थी। आर्थिक रूप से स्वतंत्र होंगे महंगे कपड़े पहनती थी उसे अपने लिए कोई पुरुष पसंद नहीं आता था

मसूरी में जब विद्या अपनी छोटी बहन रमा और वृद्धा माँ के साथ रहती थी तब किताबों के आदान–प्रदान में उसका परिचय राधिका के पापा के साथ हुआ। भारतीय समाज में स्त्रियाँ सदैव स्थिरता चाहती हैं। पिता को पुत्री के प्रति कर्तव्य का निर्वहन करने वाली चाहती हैं और स्वयं पिता और पति के प्रति भी अपने कर्तव्यों का निर्वहन करती हैं। अगर उन्हें दूसरा विवाह करना पड़े तो भी यही चाहती हैं कि उनका पति समर्पित रहे, एक निष्ठ रहे। 'रुकोगी नहीं राधिका' में राधिका कहती है–''हो सकता है कि मैं अक्षय से विवाह कर लूँ। मेरे जीवन में प्ले–बॉय के लिए स्थान नहीं है। मैं संगी चाहती हूँ, जिसमें स्थिरता हो,औदार्य हो, जो मुझे मेरे सारे अवगुणों सहित स्वीकार कर ले। मेरे अतीत को झेल ले।''[13] उसके अतीत को झेलने वाला तो बस एक ही पुरुष था वह था मनीष।मनीष सुंदर युवतियों से घिरा रहता था। वह औरतों से जल्दी ऊब जाता था। उसने जब राधिका को डैन के घर देखा,तो उसे ऐसे लगा जैसे वह मेले में खो गई हो।एक भारतीय सुंदर स्त्री पर विदेशी का अधिकार वह सहन नहीं कर पाया। लेकिन उसे कनाडा जाना पड़ा; अन्यथा राधिका को तो वह विदेश में ही पाकर रहता। उसका मानना था– ''पर सुखी वैवाहिक जीवन के लिए आदर पर्याप्त नहीं है, उसी तरह जैसे कि केवल परस्पर शारीरिक आकर्षण भी नहीं।''[14]राधिका ने तो मनीष को एक पार्टीमैन के सदृश्य ही जाना है। उसके विशेष मुखोटे के पीछे के मनीष को उसने नहीं जाना। हाँ इतना अवश्य जाना! कि उसका स्पर्श उसे सुलगा देता था। उसके अंदर गर्मी पैदा कर देता था। पार्टियों में देर तक बैठे रहना प्रशंसकों से कोप करना, आँखों से किसी को आकर्षित करना, उसे अच्छी तरह आता था।शारीरिक पवित्रता के बारे में वह सदैव उदार था। इसीलिए वह राधिका से कहता है कि वह उसे उसके विगत के साथ भी स्वीकार करेगा।

भारतीय समाज में सामाजिक ताना–बाना नैतिक और आध्यात्मिक रूपों में गढ़ा गया होता है।किसी धर्म या समाज में भारतीय परिवेश को हम छोड़ नहीं सकते। कारण स्पष्ट है कि हमारी भारतीय जीवन शैली नैतिक और आध्यात्मिक जीवन शैली है। जहाँ पर हम परंपरा से एक दूसरे के साथ जुड़कर चलते हैं। परिवार में सब का अपना स्थान होता है। यहाँ न तो तलाक को स्थान मिलता है, न बहुपत्नीवाद या बहुपतित्ववाद को।यहाँ एक निष्ठ प्रेम और भारतीय मर्यादा तथा भारतीय संस्कृति के मर्यादा पुरुषोत्तम राम की तरह लोगों का जीवन है। 'रुकोगी नहीं राधिका' उपन्यास जीवनसाथी के चुनाव की प्रक्रिया का आधुनिक संकेत देता है।राधिका की तलाश केवल एक पुरुष या पति को पा लेने की नहीं थी, बल्कि एक खास पुरुष को पाने की थी ।एक ऐसा पुरुष जो स्त्री के व्यक्तिस्वतंत्रय को स्वीकार कर सके। उसने अपने से बीस वर्ष बड़े डेनियल को इसलिए पसंद किया ताकि, उसके जरिए वह शिकागो विश्वविद्यालय में प्रवेश पा सके। दोनों का मेल इसलिए नहीं हुआ। कारण वह इसमें अपना पिता ढूँढ रही थी और वह अपना खोया हुआ यौवन ढूँढ रहा था। स्वाभाविक है कि स्त्रियों में जो समर्पण का भाव है, जो पति के प्रति एक कर्तव्य का भाव है, वह इस उपन्यास में दिखाई पड़ता है।

भारतीय समाज में जो खोखलापन दिखाई पड़ता है। उस खोखलेपन को 'पचपन खंभे लाल दीवारें' उपन्यास में मिस शास्त्री की जिंदगी से जोड़कर देख सकते हैं। तप्त धरती की तरह मिस शास्त्री जिनकी निराशाओं ने उनका जीवन के प्रति पूरा दृष्टिकोण विकृत कर दिया।जिस वस्तु के लिए

वह तृषित रहती थी,शायद उसे हेय तथा निकृष्ट समझ उन्होंने इधर से अब मुँह मोड़ लिया था। ''मिस शास्त्री के धंसे हुए गाल, आँखों के कोनों पर मकड़ी के जालों–सी झुर्रियाँ उसकी आँखों में चुभ उठी थी। उसने जीवन का खोखलापन बहुत गहराई से अनुभव किया।''[15]मिस शास्त्री का अधिकांश समय जहाँ चुगलियाँ करने, लड़कियों की चिट्ठियाँ खोलकर पढ़ने में, और कौन किसके यहाँ आया, यह जानने में जाता था। अब इन सब से उन्होंने मुँह मोड़ लिया था। वह समस्त संचित स्नेह अपनी बिल्ली पर उड़ेल रही थी। जिससे यह झलक जाता है कि मिस शास्त्री ने कुछ संवेदनाएं शेष हैं ।यह वही स्त्री थी जिसने सुषमा के विरुद्ध षड्यंत्र रचा था।वार्डन पद से हटाने के लिए दो–तीन लड़कियों से चिट्ठियाँ लिखवाई थी। उसको इसी में आनंद मिलता था। अपने जीवन के खोखलेपन को भरने के लिए वह ऐसे ही क्रियाकलाप करती थी।

'भया कबीर उदास'में शरीर की पूर्णता अपूर्णता का प्रश्न किसी न किसी स्तर पर मन और जीवन की पूर्णता के प्रश्न से भी जोड़कर प्रस्तुत किया है। इस उपन्यास में शुरू से लेकर आखिर तक इसी सवाल से जूझती रही थी। क्या सौंदर्य के प्रचलित मानदंडों और समाज के रूढ़ दृष्टि के अनुसार एक अधूरे शरीर को उन सब इच्छाओं को पालने का अधिकार है। जो स्वस्थ और संपूर्ण देह वाले व्यक्तियों के लिए स्वाभाविक होती है। इस उपन्यास की नायिका विदेशी भूमि पर अपना सहज और अल्प आकांक्षी जीवन जी रही होती है। एकाएक उसे मालूम होता है,कि उसे स्तन कैंसर है और यह बीमारी अंततः उसके शरीर से उसके सबसे प्रिय अंग को छीन ले जाती है। परंतु मन तमाम चोटों के बावजूद कब अधूरा होता है, पर फिर–फिर पूरा होकर मनुष्य के जीवन से अपना हिस्सा मांगता है। अपना सुख मांगता है। इस उपन्यास में उषा प्रियम्वदा ने लिली एक उच्च कुल की पैंतीस–छत्तीस वर्षीय वर्जिन और अविवाहित युवती को केंद्र में रखकर की है। लिली के पिता उपकुलपति थे। माँ सौंदर्या एक कुशल ग्रहणी एवं कनखल ऋषिकेश के आश्रमों में धार्मिक कार्यों में संलग्न रहती थी। यह सारे लोग दिल्ली के डिफेंस कॉलोनी में रहते थे लिली को इतिहास विषय से रूचि है और इस विषय में वह पी–एच0डी0 करने के लिए निर्यात चली जाती है जहाँ अध्ययन व अध्यापन का कार्य करती है इसी बीच उसे स्थल में कुछ गानों को महसूस करती है और जब उसकी बायोप्सी करवाती है तब पता चलता है कि उसे स्तन कैंसर है।

भारतीय समाज और संस्कृति में हम अनेक प्रकार के विविधताओं के दर्शन करते हैं। धर्म, जाति, भाषा, प्रजाति आदि में व्याप्त विभिन्नताओं के द्वारा इसे हम सरलता से समझ सकते हैं। हमारी प्रथाएं वेशभूषा रहन–सहन परंपराएं कला व्यवहार के ढंग नैतिक मूल्य धर्म जाति आदि के विविध रूप ही हमारी सांस्कृतिक समृद्धि के आधार हैं। व्यक्ति का विश्वास जब टूट जाता है, तो वह व्यक्ति अंधविश्वास का सहारा ढूँढ लेता है।किसी अनपढ़ और गवार औरत की तरह हुआ है भी अलग–अलग भगवान की मन्नतें मांगती है। ''सती मैया, ओ साईं बाबा...मनसा देवी, तुम्हें चीर बांधूँगी, विंध्यवासिनी देवी तुम्हें चुनरी चढ़ाऊँगी, हे गंगा मैया, भरे जाड़ो तारों की छाँव में नहाऊँगी; मेरे प्रणव को मुझे लौटा दो!हनुमान जी, जिंदगी भर मंगल का व्रत करूँगी।लक्ष्मीनारायण में सोने का छत्र चढ़ाऊँगी। तिरुपति के स्वामी, तुम्हें.... फिर वह एकदम शक्तिहीन होकर पलंग पर गिर जाती है।''[16] उसका दिमाग खाली है। सुन्न। भाव शून्य। मुँह के ऊपर काली पुतलिया स्थिर, होठ गिरे हुए।रक्तहीन शरीर। वह कैसे जिएगी? समझ के परे था। यदि अस्पताल में न लाते तो शायद वह फाँसी लगाकर मर जाती। चीखने–चिल्लाने से उनकी जवान खूब सूज गई थी। उसके सूखे हलक में कांटे–से उग आए थे। वह पागलों के अस्पताल के अपने सहभोक्ताओं पर नजर दौड़ाती हैं। बावले, सिरफिरे, सनकी, शक्की, पियक्कड़, आत्महंता और परित्यक्त। वह अकेली पागल नहीं थी, कई थे। उनमें युवा, प्रौढ़ और बूढ़े भी थे। उन पर कोई भी मनुष्य हंसता नहीं था।न कोई उन पर पत्थर फेंकता था। पागल क्या होते हैं?इसे अनु बचपन से जानती है। उसने बचपन में एक पगली देखी थी, जो सड़कों पर नंगा घूमा करती है। यदा–कदा गर्भवती भी हो जाती है।

भारतीय समाज में धर्म एवं नैतिकता की प्रधानता है। धर्म व्यक्ति के जीवन के प्रत्येक पहलू को नियंत्रित करता है।विश्व के सभी प्रमुख धर्म भारत मे विद्यमान हैं। भारत में अनेक धर्म को मानने वाले लोग रहते हैं। एक समय तक भारत में एक साथ विश्व के कई धर्म फले–फूले हैं।एशिया के सर्वाधिक धर्मों की जननी भारत ही है।इनमें हिंदू धर्म, इस्लाम धर्म, सिख धर्म, बौद्ध धर्म,पारसी धर्म, जैन धर्म प्रमुख हैं। यहाँ हिंदू धर्म भी अनेक रूपों और संप्रदायों के रूप में सदियों से चला आ रहा है। बौद्ध और जैन भी अनेक संप्रदायों में विभक्त है। इन सब को अपने में समावेश करते हुए भी भारत की संस्कृति समृद्ध और गुरुतर होती गई है। उषा प्रियंवदा ने प्राकृतिक परिवेश का भी अंकन बडे अच्छे ढंग से किया है।

निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि उषा प्रियम्वदा के अपने कथा साहित्य में, उपन्यासों में भारतीय संस्कृति, भारतीय समाज, वहाँ के परिवेश, खान–पान रहन–सहन,वाणी–वेशभूषा लोगों के बाह्य और आंतरिक चरित्र, स्त्रियों की स्थिति,पुरुषों के सापेक्ष स्त्रियों की भूमिका, परिवार में स्त्रियों के प्रति पुरुषों का दृष्टिकोण, पति–पत्नी के संबंध इत्यादि को प्रस्तुत किया है।

संदर्भ ग्रन्थ :

1. डॉ0 भारती बाघ, उषा प्रियंवदा के कथा साहित्य में नारी, विद्या प्रकाशन, गुजैनी, कानपुर, संस्करण 2015, पृष्ठ 24
2. उषा प्रियंवदा, पचपन खंभे लाल दीवारें, पृष्ठ 13
3. उषा प्रियंवदा, पचपन खंभे लाल दीवारें, पृष्ठ 15,16
4. उषा प्रियंबदा, पचपन खंभे लाल दीवारें, पृष्ठ 82
5. उषा प्रियंवदा, शेष यात्रा, राजकमल प्रकाशन पेपरबैक्स, नई दिल्ली संस्करण 2017, पृष्ठ 22, 23
6. उषा प्रियंवदा, शेष यात्रा, पृष्ठ 25, 26
7. उषा प्रियंवदा, अंतर्वशी उपन्यास, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण 2018, पृष्ठ 187
8. उषा प्रियम्वदा, पचपन खंभे लाल दीवारें, पृष्ठ 15
9. उषा प्रियम्वदा, पचपन खंभे लाल दीवारें, पृष्ठ43, 44
10. उषा प्रियम्वदा, पचपन खंभे लाल दीवारें,पृष्ठ 44,45
11. वही, पृष्ठ 45
12. डॉ. सुभाष पवार, कथाकार उषा प्रियंवदा, पृष्ठ 203
13. रुकोगी नहीं राधिका, पृष्ठ 82
14. वही पृष्ठ, 87
15. उषा प्रियम्वदा, पचपन खंभे लाल दीवारें, राजकमल प्रकाशन प्राइवेट लिमिटेड नई दिल्ली संस्करण 2018, पृष्ठ78
16. उषा प्रियंवदा, शेष यात्रा, पृष्ठ 61

ISSN : 2319-7137, Volume: 15/Issue: 01, January-June : 2022

समकालीन हिंदी उपन्यास: राजनीतिक यथार्थ

प्रमोद कुमार पटेल
शोधार्थी
हिन्दी–वभाग, हिन्दी एवं भाषा वज्ञान वभाग
रानी दुर्गावती वश्व वद्यालय जबलपुर (म०प्र०)

साहित्य मूलतः युग -: सन्दर्भों की देन होता है उसमें अतीत के चित्रण और भविष्य के संकेत भी युग सन्दर्भ से जुड़कर ही आते हैं इसलिए यह कहना उचित होगा कि प्रत्येक रचना समकालीन होती है| युग – सन्दर्भ के साथ प्रव्रन्तियों में भी निरंतर परिवर्तन होता चला आया है इसलिए अपनी व्यापकता में प्रत्येक रचना समकालीन है| वास्तव में समकालीन का सतही अर्थ है अपने समय का समकालीन में वर्तमानवोध के साथ ही अतीत और भविष्य का विवेकात्मक बोध होता है यह विशिष्ट वर्तमान बोध ही समकालीन को अभिव्यक्ति देता है|

इस इतिहास बोध और भविष्यबोध को अपने वर्तमान में समेटकर समस्त युगबोध प्रस्तुत करना समकालीन का उद्देश्य होता है जैसा कि अशोक बाजपेयी ने लिखा है- बावजूद बहुत सारे बुनियादी अन्तरो के बीसवी शदी का भारतीय मनुष्य एकदम अद्‌वितीय और विविक्त है और इस लिए मनुष्यता के परंपरागत इतिहास से एकदम बहार और अपरिभाषेय है ऐसा मानना समकालीन साहित्य के मानवीय सन्दर्भ को अकारण सीमिति संकरा कर देना है|"1

विजेंद्र के अनुसार–" समकालीनता का अर्थ भौतिक रूप से जो घटित होरहा है मात्र उतना ही नहीं बल्कि जो कुछ क्षतिग्रस्त है उनकी पुनर्रचना की सृजनशील चेष्टाएँ और जीवन को समुन्नत तथा सुन्दर एवं मनोहारी बनाने की परिकल्पना ही उसी समकालीनता का एक महत्वपूर्ण पक्ष है|2

राजनितिक उपन्यास राजनितिक पर केन्द्रित उपन्यास है राजनितिक उपन्यास का कलेवर प्रायः राजनीती की विडंबनाओं, राजनीती की विकृत और क्रत्सित मनोवृत्तियों, चुनाव, भ्रष्ट राजनीती कुर्सी- प्राप्ति की होड़ एवं राजनीती जगत में व्याप्त नगन यथार्त वाद के विभिन्न पहलुओं से बुना जाता है| प्रायः सभी राजनीति उपन्यासों का वर्ण्य विषय चुनाव प्रसार जोड़ तोड़ की राजनीति चुनावी आवश्यक प्रलोभन की राजनीती गुंडागर्दी, आतंक की राजनीति प्प्रशाशन में हस्तक्षेप पुलिस तंत्र के दुरूपयोग पत्रकारिता जगत को को अपने पक्ष में मिलकर अनुकूल समाचार प्रकाशित करने की राजनीति इत्यादि के इर्द गिर्द मंडराता है निर्वाचन कालीन राजनीती जोड़ तोड़ की भ्रष्ट राजनीति शोषण पर आधारित राजनीति आदर्श राजनीति की विफलता इत्यादि का चित्रण राजनीतिक उपन्यासमें अंद्दत मुखरित होता है|

राजनीति में चाहे वह सत्ता पक्ष से सम्बंधित हो अथवा प्रतिपक्ष से सम्बंधित, प्रायः कुटिल राजनीतिस, राजनीति के हर दाव-पेंच में माहिर, सफ़ल गोटी बाजु घाट प्रतिघात में निपुण, खरीद-फरोख्त की राजनीति में माहिर, राजनीति के ऐसे खिलाडी के रूप में दीखायी देते है, जिनकी गिद्धि- दृष्टि किसी-किसी भांति मात्र सत्ता की कुर्सी को हथियाने की होती है ये औपन्यासिक पात्र एक ओर वक्तृत्व एवं भाषण कला में निपुण होते हैं तो दूसरी ओर जजनता के दुःख दर्द में कृत्रिम सहानुभूति और घडियाली आंसू बहाने वाले एक नम्बर के अवसर

वादी, स्वार्थी, हृदयहीन, निर्मम पात्र होते हैं| राजनीतिक उपन्यास में उपन्यासकार का उद्देश्य राजनीति जगत में व्याप्त भ्रष्टाचार को उजागर करना होता है| प्रकार राजनीतिक उपन्यास राजनीति जगत का एक सच्चा दर्पण होता है|

समकालीन राजनीति की मूल्यहीनता तथा मजदूर संगठनों के अंत अंतर्विरोधों को उजागर करने वाली प्रमुख सन्दर्भ 'आवाँ' (2000) (चित्र मुद्गल) में भी हैं कामगार अधाड़ी नामक मुंबई के मजदूर संगठन के माध्यम से अन्ना साहब जैस शीर्षस्थ नेता, विमला बेन, पवार शवाडे आदि के द्वारा राजनीतिक स्वार्थी के द्वारा आपसी सम्बंधो को किस प्रकारअपने- अपने हित के लिए पएक दूसरों का प्रयोग करते हैं यहाँ यह प्रमुख है| व्यक्ति का चरित्र टुच्चे स्वार्थी और अपनी वासनाओं में बहने लगता है तब महसूस होता है कि वास्तविक अर्थों में राजनीति हमारे देश की सारी बुराईयों की जड़ है यहाँ सत्ता केवल अपना स्थान बदलती है यहाँ स्थिति है की देश का अधिकांश मताधिकार जानता है कि वह चाण्डालों को चुनने के लिए विवश है| क्या किये ले रहा जानकर विकल्पहीनता उसे किसी पर भी विश्वाश नही करने देगी ... और खुलकर कहूँ तो चाण्डालों के वक्त चाण्डाल हुए बिना जंग नहीं जीती जा सकती लंगोटी बाबा का समय और था|"3 देश में व्याप्त कुटिल, स्वार्थी, पाखण्डी और भ्रष्ट राजनीति के प्रति क्षोभ पैदा करने वाली इस रचना में सत्ता और राजनीतिक सडांध की भयावह स्थतियों को दर्शाया गया है|

'विनोद चन्द्र पाण्डेय' का 'भ्रष्ट समय' ऐसा राजनीतिक उपन्यास है जिसका केंद्र दिल्ली है यहाँ अपराध और हिंसा की जड़ें कितनी गहरी हो चुकी है विदेशी कम्पनियों की कूटनीति भी किस हद तक हमारी राष्ट्रीय राजनीति को प्रभावित करती है इसका खुलासा किया है इस रचना में राष्ट्रीय राजनीती की घिनौनी तस्वीर हिंसा व अपराध को उद्घाटित किया है|

'यह खबर नहीं' (2000) में' कमल कुमार' ने अनेक चरित्रों कर्थाओं के माध्यम से भारतीय प्रजाताव्रि नक व्यवस्था की अमानवीयता तथा हर स्तर पर फैले भ्रष्टाचार को प्रस्तुत करने की कोशिश की है राजनीति निरंकुश हो चली है राजनेता भ्रष्ट और लुटेरे, सत्ता प्रतिष्ठा और सरकारी कार्यालय, सौदेबाजों के लिए आम बाजार है| तो जनहित में चलने वाली संस्थाएं सुविधाभोगी मायावियों का आरामगाह| ऐसी स्थिति में लोक-कल्याणकारी राज्य की संवैधानिक घोषणा तथा स्वतंत्रता, समानता के जो मायने उभरकर आते हैं वह इस अर्थतंत्र और गुंडातंत्र की की मिली जुली सरकार व बदली व बदली व्यवस्था को उपस्थित करता है| रचना में व्यवस्था की विद्रूपता के भीतर अनगिनत समस्याओं के साथ-साथ एक विवाहित की निरंतर यातना भरी जिन्दगी की जटिलताओं को तथा मानवीय होने का दम भरने वाले एक राजनीतिक परिवार की बेपनाह अमानवीयता और पाखण्ड को भी बेपर्दा किया गया है|

दूधनाथ सिंह का 'आखिरी कलाम' (2003) भारतीय जनतंत्र की खामियों को हमारी समक्ष प्रस्तुत करता है| जनतंत्र किस प्रकार फासिस्ट ताकतों द्वारा संचालित होने लगता है तथा साम्प्रदायिक राजनीति को प्रोत्साहित करता है तथा धर्म के विकृत हो रहे स्वरुप पर प्रहार करता है|

आखिरी कलाम' हिंदूवादी राजनीति के पप्रारम्भिक चरण को देश के लिए घटक बताते हुए जिस तरह उस दौर को दर्ज करता है| वह बड़ा ही जीवन्त यथार्त है किस तरह शुद्ध भारतीय स्वदेशी और भारतीय के आवरण में संघ देश के शीर्षक शैक्षणिक संस्थानों में प्रविष्ट हुआ और कैसे उसने सामाजिक संघर्षों की धार कुंद की तथा भारतीय राजनीतिक आजादी की लड़ाई के आरम्भिक चरण में ही दिशाहीनता का शिकार हो गयी|

'कितने पाकिस्तान' (2000) कमलेश्वर ने पाकिस्तान के रूपक में उस बर्बर मानसिकता, मनुष्यता, सांस्क्रतिकता और सहिष्णु समाज व्यवस्था के बदले हिंसा, विभाजन और मतान्धता को बेपर्दा किया गया है जो दुनिया को शांत व चैन से नहीं रहने देना चाहती| वैश्विक धरातल पर उत्पन्न सांस्क्रतिक संकट व कट्टरताओं और रंगभेदी फिरका परस्तों के खिलाफ एक चिर जड़ी बूटी के संधान की लगातार कोशिश की है| यह ऐसी राजनीति रचना है जिसमें विभिन्न सभ्यार्ताओं के बीच मानवीय सभ्यता के विमर्श को प्रस्तुत किया गया है 'समय' पर केन्द्रित यह सपना अनेक भ्रान्तियों का निराकरण करती है और स्थापित करती है कि दुनिया की दुनिया का कोई धर्म मनुष्यता का विरोधी नहीं होता| अंग्रेजी की कुटिल राजनीतिक और ईसाइयत कि घृणा पैदा करने वाली शक्तियों को परखा है| पाकिस्तान किसी धार्मिक द्वेष का परिणाम नहीं बल्कि कुस्सित राजनीतिक स्वार्थों का परिणाम है – 'इस्लाम की नजर में पाकिस्तान बनना ही गुनाह है क्योंकि इस्लाम नफरत नहीं सिखाता पर पाकिस्तान की बुनियाद नफरत पर रखी गयी है कोई मजहब किसी मुल्क की सरहदों में कैसे कैद किया जा सकता है| ''राजनितिक कुटिलता का ही परिणाम है की मनुष्य, धर्म, संप्रदाय संस्कृति राजनीतिक स्वार्थी के आधार पर बाँट देने वाली शक्तियों की असली तस्वीर को प्रस्तुत किया गया है|

निष्कर्शत: समकालीन नए सौन्दर्य अनुभव की तलाश है| यह अपने आप में तत्कालीन आवश्यकता है और दूरगामी प्रभात दोनों की मांग है| यहाँ तक की इस तलाश के साथ प्रासंगिकता का एक बहुत बड़ा सवाल भी जू जाता है|

आज की राजनीति मूल्यहीनता से प्रेषित तथा विघटित राजनीति है| देश के बहुमुखी राजनैतिक पतन ने अनैतिकता के सभी मानदण्डो क ध्वस्त कर दिया है| आज के नेताओं ने राष्ट्रीय विकास के लक्ष्य को भुला दिया है तथा निजी सुख सुविधाओं के संग्रह को ही राष्ट्रीय जीवन का अंग मान लिया है| आज चुनाव में जनसाधारण के वोट को अपने पक्ष में लेने के लिए पैसा पानी की तरह बहाया जा रहा है| आधुनिक युग में राजनीति के क्षेत्र में रिश्वतखोरी, घूसखोरी, धोखाधड़ी, चोरबाजारी, भ्रष्टाचार, बेईमानी जैसी प्रव्रत्तियों का दबदबा है|

सन्दर्भ- ग्रन्थ

1- **समकालीन कवि और काव्य**, **लेखक कल्याण चन्द्र**, **प्रकाशक- चिंतन प्रकाशन**, 1996 **पेज** 12,13.

2- **पहल** 37 **सम्पादक- ज्ञानरंजन**, **पेज** 31, **भगवन सिंह का लेख फ़िलहाल पेज** 10

3- **उपन्यास की समकालीनता**, **ज्योतिष जोशी**, **भारतीय ज्ञानपीठ**, 2007

4- **अर्धनारीश्वर**, **पृष्ठ** 177

Sports as a means to develop the social values among the youth

Shahanawaz Khan
Assistant Professor
Department of Physical Education
Shri Varsney College, Aligarh

Abstract

The study is an attempt to find out how physical education and sports play an important role in social and mental growth of youth. the research is empirical and conceptual in nature. it will try to find out how physical activities are vital in maintaining the mental health of young ones. it investigates the growth of moral and social values in individuals after practicing the team spirit of sports. the research will increase the social values through sports and physical education. in educational institutions in the life of students. the literature review shows that sports reduce the regionalism sexism extremisms and nationalism in youth and inculcate the true social values in them.

Keywords: *Physical Education, Sports, Social Values, Sportsmanship, Games, Communication.*

Introduction

Sports is a practice to be done for many reasons, it gives pleasure, improves our physical and mental health, moreover it is a means of our wellbeing. To achieve mental health and a fit body is the goal of sports. Government of India runs many programmes to promote sports. Physical education and sports become part of syllabi in colleges and universities. In spite of our personal benefits, sports are an organized activity with rules and mechanisms. Sports create positive values in humans. It moves us from passive entertainment to the recreative purposes. We play football instead of watching football matches on T.V. Sports is a means of therapy which fills a young one with enthusiasm and positivity. Through sports people acquire skills, values and they can participate in social activities for developing their cultural, social, educational and professional skills. sports make social bond so strong when the people meet each other during sports activity and it developed the nation of sportsman spirit. in them. It provides the platform to meet, communicate and respect others people of different backgrounds and countries.

Sports and physical education are the curriculum for the young generation

Sports promising not only entertainment but a career opportunity to the school and colleges students. Schools of national importance are giving strong emphasis to the physical development of children. Why sports should be an important part of the school and colleges curriculum for it develop is sportsmanship in them even if being defeated. It promotes improvements and adjustments. It inculcates self-discipline and self-confidence in them. young men become determine of his goal by playing with his team. Sports develop a sense of competition in them. It creates people for further life. All the positive points of sports help students to continue their studies with confidence and competitive skills. The day-to-day busy

schedule of students creates a negative impact on their health and mind. That is why sport is a necessity in the curriculum of school and colleges. participation in physical activity is correlated with academic advantages like improved concentration, memory, and classroom behavior. According to World Health Organization (2001), it includes development of physical abilities and physical conditioning; motivating the students to continue sports and physical activity; and providing recreation activities.

As time for physical education is generally limited within the school time schedule and curriculum, its content must be valuable and resourceful (Fox and Harris, 2003) [7]. Further Gonzalez *et al*. (2010) [9] believed that curricular physical education within any sport, not only talent development scheme but a high development in social values among youth. In the field of physical education and sport there are objectives with physiological functions, others with instructive-educational functions and last but not least, objectives with social functions. If we combine the functions, the profession, the education, the relaxation, the entertainment, the hygiene, the self-reliance, we reach the interpersonal relationships that are so important in the development of the youth.

Importance of games and sports events

The purpose of games and sports is very much is to give equal opportunities to the both male and female without the distinction. sports and games create social behaviors among the young ones and their coaches or physical education teachers focus on the whole development of young students with the sense of socialization. Today's generation is weak, surrounded with illness and health issues. The reason is the lack of physical activities. The organization of sports events will provide them with the opportunity of exercise which will strengthen the body and defensive system. These events will also provide the social environment for the individual development of young students and will inculcate social and moral values in them. Sports are seen as primary source for moulding the youth who will be the future of the nation. We mention Sport has as its basic feature the competition with the ability of sport to provoke positive social behaviors a predominantly competition character, but also a formative character, present both in performance sport and in sport for all (Barbu et al., 2019). The role of games and sports is very clear in terms of giving equal opportunities to both the sexes for preparing them to the different compositions of life. Without socialization neither the individual nor society could exist since both are dependent on these unique processes.

Sports and Games make the Wholistic development of a youth

Participation in games built a character, developed a sense of discipline, loyalty, respect, self-control, Athleticism. It provides the opportunity for individual advancement. It developed the sense of nationalism. sports help to socialize children. It reduces stress and anti-social activities among young students. It promotes universal values. Physical education and sports affect life and highlight social issues. Sports teach us teamwork, leadership, humanity and determination. Sports is the means to create an environment for the communities to come together and avoid their differences, inspire to respect each other and share their feelings.

The correspondence between the practice of physicaleducation and sport, in itsvarious forms andthe effect, their impact, spreads throughout the social life.We also use sport to shine a light on social issues, through its values, we can teach teamwork, leadership, humility, tenacity, and determination. At the grassroots or community level, sport can be seen to provide a useful way of creating an environment in which people can come together towork towards the same goal, show respect for others and share space and equipment.

Importance of Leisure programme

One of the most fundamental aspects of sports and physical education is that it is endowed with social functioning. sports are the source of personality development. the questions arises that why sports and culture are co-related? sports and culture contribute to the enrichment of human heritage. Sports and culture were born from the same sources, the leisure of time of recreation.it constantly develop our body and intellect. free time from works creates the opportunity to show the ability of sports skills and at the same time to promote cultural interest. arts as dance, theatre and cultural programme express the human feelings and emotions as sports express human feelings and relations. spending leisure time in sports and recreational activities improve our health and sports programme like cricket, Kabaddi, basketball and hockey, football is becoming social phenomenon.

Role of sports and physical education in building social values

Many research of sports has shown that social values developed through the practice of physical activity. it creates a healthy recreational atmosphere and promote physical and mental development. physical activity is an opportunity when individuals converge to improve their social skills, strengthen, cultural values and adopt to rules. Physical and mental well-being teaches importance of values and social skills. Sports not only improves individual but it also unites and inspire masses to do collective activities for building a good society. most of the vices in societies like drug abuse, religious extremism, regionalism, false nationalism, sexism happen due to the winning attitude at any cost. it is dark side of sports. but the positive side of sports is teamwork and high sprit. there is a great role of education institutions in imparting the values of true sportsmanship in individuals.

physical education is the medium for individual for gaining maturity. until children don't learn to play by rules, he cannot get better education with discipline. so, the beginning spirit should develop a child and should remain throughout his life. desire for self-sufficiency and the progressive society should inculcate in character through sports. sports promote the diversity and unity and equality and skills. sports promote awareness campaigning and aware people to protect environment and community response. the role of sports in promoting gender equality is also praiseworthy. sports also open the international platform for girls and women and acknowledged their contribution for nation.

Limitations of the study and suggestion for future research

The purpose of the study is to bring in light that there is a smaller number of participation of students in physical education and sports activities. In future research, academic institution should organize the various sports awareness programmes such as intramural sports, intercollegiate tournament, interschool competition, seminar and workshop in which students know the importance of physical activityprogrammes. Further physical education and sports participation should be compulsoryin the institutions. In further research should also include broader aspects of physical activity and assess the multidimensional nature of self-esteem.Further, this study is conceptual in nature; empirical study is suggested to build social values in youth.

Conclusion

Society and practice of sports and physical education is inseparable. The health education, moral values, culture and growth all are possible only if we apply sportsman sprit in all aspects of life. Many diseases like inferiority complex, mental disease can be cure with the

help of sports, so the physical health is important for any nation for itssocial,economic, political and cultural development.

References:-

1. Andrews JP, Andrews GJ. Life in a secure unit: the rehabilitation of young people through the use of sport. Social Science and Medicine 2003; 56:531-550.
2. Bailey R. Evaluating the Relationship between Physical Education, Sport and Social Inclusion. Education Review, 2005; 57(1):71-90.
3. Barton GV, Fordyce K, Kirby K. The Importance of the Development of Motor Skills to Children. Teaching Elementary Physical Education. 1999; 10(4):9-11.
4. Barbu, D., Stoica, D., Ciocănescu, D. (2019). How to design a model for approaching the methodical-scientific conception of training and competition in the football game. Journal of Sport and Kinetic Movement, 34 (2), pp. 49-55.
5. Collins M. Sport and social exclusion. London: Routledge, 2002
6. Danish SJ. Teaching life skills through sport. in: Gatz M, Messner MA, Ball-Rokeach SJ (Eds). Paradoxes of youth and sport (Albany, NY, State University of New York Press), 2002, 49-59.
7. Fox, K.R., & Harris, J. (2003). Promoting physical activity through schools. In: McKenna J, Riddoch C, eds. Perspectives on health and exercise. Basingstoke, New York.
8. Palgrave-Macmillan.Gonzalez, M.C., Regalado, M.N.M., Guerrero, J.T. (2010). Teaching and learning social values: Experience of resolution of conflictsin the classroom of physical educationacross the learning of social skills. Journal ofHuman Sport and Exercise, 5 (3), 497-506.
9. Jackson G. A Family Guide to Fitness and Exercise. London: Salamnder Books Limited. The National Association for Sport and Physical Education (NASPE, 2001). An association of the American alliance for health, physical education, recreation and dance, 1985.
10. World Health Organization. Evaluation in Health Promotion: Principles and Perspective, 2001.
11. https://efdeportes.com/efd199/social-values-and-sports.htm

ISSN : 2319-7137, Volume: 15/Issue: 01, January-June : 2022

आधुनिक काल में महिला शिक्षा की स्थिति

डॉ0 सुनीता गुप्ता
अध्यक्ष (शिक्षा–संकाय)
राजा श्रीकृष्ण दत्त स्नातकोत्तर महाविद्यालय,
जौनपुर (उ0प्र0)

सारांश

महिला शिक्षा समाज का आधार है। **समाज द्वारा पुरुष को शिक्षित करने का लाभ केवल पुरुष को होता है जबकि महिला शिक्षा का स्पष्ट लाभ परिवार, समाज एवं सम्पूर्ण राष्ट्र को होता है चूँकि महिला ही माता के रूप में बच्चे की प्रथम अध्यापिका बनती है।** यद्यपि कुछ समय तक महिला शिक्षा के समर्थक कम विरोधी अधिक थे किन्तु आज समय एवं परिस्थितियों ने महिला शिक्षा को अनिवार्य बना दिया है। आज क्या कारण है कि, भूमण्डलीकरण के बावजूद भारत में कार्यशील महिलाओं की कम संख्या का होना महिलाओं की अशिक्षा एवं अज्ञानता की द्योतक है। जिसके कारण महिलाएँ अपने सामाजिक एवं आर्थिक अधिकारों के प्रति जागरूक नहीं है। यदि महिला आर्थिक दृष्टिकोण से आत्म–निर्भर है तो वह राजनीतिक, पारिवारिक, सामाजिक स्वतंत्रता एवं अधिकार प्राप्त कर सकती हैं। जहाँ तक **महिला साक्षरता का प्रश्न है जहाँ पर 1951 में मात्र 7.3 प्रतिशत महिलायें शिक्षित थीं वहीं आज 65.46 प्रतिशत महिलायें शिक्षित हैं।** भारत सरकार का नारा है कि, **''एक स्त्री को शिक्षित करना पूरे परिवार को शिक्षित करना''** निश्चित रूप से क्रान्तिकारी सिद्ध हुआ।

की–वर्ड– **आधुनिक, महिला, शिक्षा**

किसी भी देश की प्रगति एवं आर्थिक विकास में वहाँ की महिलाओं का अधिकाधिक योगदान होता है। जिस देश की महिलाएँ शिक्षित होती हैं वे अपना पूर्ण एवं प्रभावशाली योगदान राष्ट्र की प्रगति में देने में सफल होती है। प्रस्तुत अध्ययन के अन्तर्गत प्राचीन, मध्य एवं आधुनिक शिक्षण व्यवस्था में नारी शिक्षा का तुलनात्मक अध्ययन किया गया है।

वैदिक काल से लेकर आज तक हमारे लिए शिक्षा का अर्थ वह प्रकाश स्रोत है जो जीवन के विभिन्न क्षेत्रों में हमारा मार्गदर्शन करता है। इतिहास बताता है कि भारतीय प्राचीन काल में वैभवशाली व गौरवमय देशों में रहा है यहाँ की शिक्षा व्यवस्था सभ्यता एवं संस्कृति की द्वितीयक है। इसकी नींव आध्यात्मिकता पर आधारित रही है। कल लोग यहाँ की शिक्षा, सभ्यता, तथा संस्कृति से अत्यधिक प्रभावित होकर आते थे, और आज यह कैसी विडम्बना है की हम अपने अस्तित्व को ही खो बैठे हैं। आज हम पहले विदेशी बाद में भारतीय होते जा रहे हैं। अपनी शिक्षा व्यवस्था, परिस्थिति, आवश्यकताओं तथा सामाजिक दशा की अवहेलना करके बिना विचार विदेशी शिक्षा व्यवस्था प्रभावित होते जा रहे है। आज हमारे देश के छात्र–छात्राएँ दूसरे देश में अध्ययन करने को अपना सौभाग्य मानने लगे हैं, जबकि हमारे यहाँ प्राचीन समय में विश्व के कोने–कोने से छात्र अध्ययन करने आते थे।

स्त्रियों को प्राचीन काल से भी शिक्षा का अधिकार था, परन्तु आज स्थिति बहुत अधिक संतोषजनक नहीं है। भारतीय साहित्य तथा संस्कृति के इतिहास में स्त्रियों को आध्यात्मिक स्वरूप विकृत नहीं हुआ है। आज भी स्त्रियाँ गृहस्वामिनी और अर्द्धांगिनी के रूप में ही मुख्य रूप से दिखाई देती है। ऋग्वैदिक काल में स्त्रियों की वैयतिक मर्यादा सुरक्षित थी। स्त्रियों को लौकिक एवं पारलौकिक दोनों ही क्षेत्रों में कल्याणकारी रूप में देखा जाता था। स्त्रियों की महत्ता को वैदिक साहित्य में मुक्त कंठ से वर्णित किया गया है। वैदिक वाङ्मय में लक्ष्मी, शक्ति, दुर्गा की श्रेणी में अदिति इन्द्राणी, उषा, इला,

भारती श्रद्धा आदि को स्थान दिया गया है तााि ये देवियाँ उनके तत्त्वों की अधिष्ठात्री देवी कही गयी है। इसमें सर्वशक्तिशाली अदिति की संतान आकाश, माता–पिता और समस्त देवता है।

भारतीय मानस वैदिक काल में या आधुनिक काल में अनेक रूपों में समान है। महात्मा गाँधी का विचार था कि पारिवारिक गाड़ी के संचालन में स्त्री–पुरुष पहिये के समान हैं। अतः पारस्परिक समझ और उत्तरदायित्वों के निर्वाह हेतु दोनों को शिक्षित होना चाहिए। एक पहिये के विपरीत स्थिति में रहने के कारण दाम्पत्य रूपी गाड़ी का संचालन असुविधा जनक हो जाता है। गाँधीजी नारी शिक्षा को अत्यधिक महत्त्वपूर्ण मानते थे तथा आरम्भ से ही उन्होंने स्त्रियों की शिक्षा का विधान किया। सर्वप्रथम शिक्षा माता से ही आरम्भ होती है। मनोवैज्ञानिकों का मानना है कि बच्चा माता के गर्भ से ही शिक्षा ग्रहण करना आरम्भ कर देता है।

अतः हम समझ सकते है कि कन्या का शिक्षित होना कितना आवश्यक है। हम समाज में एक पुरुष को शिक्षित करके केवल एक व्यक्ति विशेष को करते हैं, किन्तु एक स्त्री को शिक्षित करने का अभिप्राय है सम्पूर्ण परिवार और आने वाली पीढ़ियों को शिक्षित करना। अतः आज भारत में नारी शिक्षा की बहुत आवश्यकता है।

परिवार, समाज और राष्ट्र के निर्माण में इतना अधिक महत्त्वपूर्ण स्थान होने के बाद भी आधुनिक भारत की असंख्य स्त्रियाँ अशिक्षित हैं उन्हें अक्षर ज्ञान भी नहीं है। शहरों में कुछ व्यवस्था हुई भी परन्तु गाँव में दशा बहुत ही विचारणीय है। भारतीय आर्थिक ढाँचा कुछ ऐसा है कि एक ही परिवार के कुछ लोग सभी सुख–सुविधाओं का भोग कर रहा है और वहीं कुछ लोग दाने–दाने को तरस रहे है।

यह असमानता भी नारी शिक्षा का बहुत बाधक सिद्ध होती है। आज अपना पेट भरने के लिए सभी ग्रामीणों को अपनी बालिकाओं को खेती में मजदूरी करने अथवा कोई और कार्य करने में लगाना पड़ रहा है। अपनी प्राथमिक जरूरतों के कारण परिवार का हर सदस्य मेहनत मजदूरी करने को बाध्य है। सरकार भी नारी शिक्षा के लिए व्यवस्था कर पाने में असमर्थ है। बालिकाओं की शिक्षा के लिए जो प्रयास किये गए है वे प्रशंसनीय है पर पूर्ण नहीं। आज भी नारी शिक्षा हेतु कई प्रयास किये जा रहे हैं लेकिन लोगों की मानसिकता स्त्रियों के प्रति परिवर्तित नहीं हो रही है जिससे स्त्रियों को अपना अधिकार प्राप्त करने में इतनी कठिनाइयों का सामना करना पड़ रहा है। स्त्रियों पर पारिवारिक अत्याचार, घर से निकलने पर असुरक्षा का एहसास जैसे तत्वों के कारण आज स्त्रियों की स्थिति और भी बिगड़ती जा रही है।

सरकार ने स्त्री शिक्षा को प्रोत्साहित करने के लिए अनेक कार्यक्रम तथा योजनाएँ चलाई हैं, परन्तु फिर भी अपेक्षित विकास एवं सफलता हासिल नहीं हो सकी। आज भी देश की अनेक बालिकाएँ ऐसी हैं, जो अपने पूरे जीवनकाल में स्कूल का मुँह नहीं देख पातीं। जो बालिकाएँ किसी तरह स्कूल तक पहुँच भी जाती हैं, वे आगे की पढ़ाई जारी नहीं रख पातीं और बहुत कम महिलाएँ कॉलेज या विश्वविद्यालय तक पहुँच पाती हैं। इसका मुख्य कारण भारत समाज की महिलाओं के प्रति दोयम दर्जे की मानसिकता में छिपा है क्योंकि भारतीय समाज आज भी कन्या को पराया धन मानता है और उसे बोझ समझते हुए उसके प्रति विवाह तक ही अपनी जिम्मेदारी समझता है। इसके अतिरिक्त बालिकाओं को घर के कामकाज में भी हाथ बटाना पढ़ता है, जबकि बालकों पर ऐसा कोई बोझ नहीं डाला जाता।

यदि बालिका शिक्षा के प्रति उनके माता–पिता जागरूक नहीं हैं, तो फिर महिला विकास एवं स्त्री शिक्षा की बात करने का कोई औचित्य नहीं है। यह दुःखद सत्य है कि महिलाएँ ही अपने परिवारों की बालिकाओं की शिक्षा–दीक्षा में सबसे बड़ी रोड़ा बनती हैं। वे परिवार के पुरुषों से अक्सर यह कहती मिल जाएंगी कि लड़की को ज्यादा पढ़ा लिखाकर करना क्या है? आखिर इसे जाना तो पराए घर ही है। इसलिए इसे घर के कामकाज सीखाना चाहिए। यह मानसिकता ही स्त्री शिक्षा की दिशा में सबसे बड़ा अवरोधक है। किसी भी देश का सर्वांगीण विकास तभी सम्भव है, जब उस देश की पूरी आबादी शिक्षित, जागरूक एवं सचेत हो। हमें यह कदापि नहीं भूलना चाहिए कि हम अपने देश की आधी आबादी को अशिक्षित एवं बेकार बनाए रखकर कभी भी देश का सर्वांगीण विकास नहीं कर सकते।

निष्कर्ष–

नारी के बिना पुरुष समाज की कल्पना भी नहीं की जा सकती है। किसी भी स्वस्थ एवं विकसित समाज के निर्माण मे महिला एवं पुरुष दोनों की समान भागीदारी व सहभागिता होती है। यह नैसर्गिक सिद्धान्त तथा पर्यावरण की संतुलन की दृष्टि से भी नितान्त अनिवार्य हैं। स्त्री और पुरुष जीवन रूपी गाड़ी के दो पहिए हैं। जो एक–दूसरे के बिना जीवन में आगे नहीं बढ़ सकते। इन दोनों से ही जीवन चलता है। माँ हमारे शरीर में आत्मा आध्यात्मिक स्वरूप है जबकि सम्पूर्ण शरीर पिता का साक्षात् भौतिक स्वरूप है। स्त्री और पुरुष एक–दूसरे के पूरक है। स्त्री या पुरुष के बिना जीवन असम्भव हैं।

जैसा कि कहा गया है कि एक माँ बच्चे के लिए प्रथम शिक्षिका होती है तथा शिक्षाविद् ने कहा है कि एक माँ शिक्षित होगी तभी सभ्य समाज का निर्माण हो सकता है। महिलाओं के शिक्षा के लिए वैदिक काल से साक्ष्य मिलते है लेकिन मध्यकाल में महिलाओं की शिक्षा के लिए अन्धकार काल कहा गया लेकिन स्वतंत्रता पश्चात् एवं पूर्व अनेक समाजशास्त्रियों एवं महान् शिक्षाविद् प्रयास करते रहे एवं महिला शिक्षा के लिए लड़ाई लड़ी। स्वतंत्रता के पश्चात् भारतीय नारियों की स्थिति में क्रान्तिकारी परिवर्तन हुए। भारतीय नारियों को भारतीय संविधान एवं संसद द्वारा कुछ विद्वानों ने कई बन्धनों से मुक्ति दे दी। जिससे नारियों के प्रति सामाजिक दृष्टिकोण में काफी बदलाव आया।

महिलाओं की साक्षरता दर पुरुषों से काफी कम है। अतः महिला शिक्षा के उन्नयन के लिए विशेष तथा अतिरिक्त उपाय किये जाने चाहिए स्त्रियों को शिक्षा उपलब्ध कराने के लिए केन्द्र एवं राज्य सरकारों ने अनेक प्रयास किये हैं तथा कई योजनाओं को संचालित किया जा रहा है। बालिकाओं के लिए अलग से स्कूल खोले गये बालिका शिक्षा को प्रोत्साहित करने के लिए कई योजनाएँ चलायी गयी तथा समाज में स्त्री शिक्षा के लिये जागरूकता फैलाने के उद्देश्य से प्रचार प्रसार किया गया। बालिकाओं को स्कूल में निःशुल्क प्रवेश, निःशुल्क किताब, निःशुल्क प्रवेश एवं छात्रवृत्तियां प्रदान की गयी। 1951 की साक्षरता दर 16.7% थी तो पुरुषों की साक्षरता प्रतिशत 25% थी और महिलाओं की 7.9% थी। वहीं 2011 में साक्षरता दर बढ़कर कुल 74.04% हो गई और पुरुषों की साक्षरता दर 82. 14% और महिलाओं की साक्षरता दर 65.46% हो गई।

अतः वर्तमान समय में महिलाओं को शिक्षित करने के लिए केन्द्र सरकार एवं राज्य सरकार तथा गैर सरकारी संस्थाओं द्वारा काफी प्रयास किया जा रहा है जिससे एक सभ्य समाज का निर्माण किया जा सकें।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची :

- जूरी, दास (2019). प्रेजेन्ट स्टेट्स ऑफ वूमैन एजुकेशन इन इण्डिया, अदल्या जर्नल, वॉ0 8, इश्शू–8, पृ0 631–639
- धूत, यू.एम. एण्ड राठौर, एस.एस. (2011). एवरनेस ऑफ एजुकेशनल राइट्स एमंग बी.एड. स्टूडेन्ट्स : ए स्टडी, इण्डियन स्ट्रीम रिसर्च जर्नल, वॉ0 1, इश्शू–5
- नैयर, निशा (2010). वूमैन्स एजुकेशन इन इण्डिया : ए सेचुऐशनल एनालसिस, वॉ0 1, इश्शू–4, पृ0 100–114
- मीरल, के.पी. एण्ड जुमना, एम.के. (2015). इम्पावरिंग वूमैन थॉट एजुकेशन, इण्टरनेशनल जर्नल ऑफ ह्युमिनिट्रिज एण्ड सोशल साइंस इनवेशन, वॉ0 4, इश्शू–10, पृ0 58–61
- एंडिगा, यिलिकल मुचे (2021). द थ्री डायमेशनल रोल ऑफ एजुकेशन फॉर वूमैन इम्पावरमेण्ट, जर्नल ऑफ सोशल साइंसेस, वॉ0 17, पृ0 32–38

- चौधरी, प्रीति एण्ड दीवान, शिफा (2021). एवरनेस ऑफ वूमैन राइट्स एमंग ट्रेनिज ऑफ टीचर एजुकेशन इंस्टीट्यूशन्स ऑफ भरूच डिस्ट्रिक, इण्टरनेशनल जर्नल ऑफ एडवांस्ड एजुकेशनल रिसर्च, वॉ0 6, इश्शू–4, पृ0 34–37
- सरकार, मौशमी एण्ड घोस, संजोय (2020). वूमैन एजुकेशन : ए डेवेलपमेण्ट जर्नी फ्रॉम सोसाइटी ऑफ नेशन, ए मल्टीडिस्पिलनरी ऑन लाइन जर्नल ऑफ नेताजी सुभाष ओपेन यूनिवर्सिटी, वॉ0 3, नं0 1
- श्रम, एम.एल. एण्ड यादव, अर्चना (2021). रोल ऑफ एजुकेशन इन वूमैन इम्पावरमेण्ट एण्ड डेवेलपमेण्ट चैलेन्जेस एण्ड इम्पैक्ट, इण्टरनेशनल जर्नल ऑफ एडवांस्ड रिसर्च इन कॉर्मस, मैनेजमेण्ट एण्ड सोाल साइंस, वॉ0 4, नं0 1, पृ0 88–92
- मट्टू, मो0 इकबाल (2019). वूमैन्स एजुकेशन एण्ड डेवेलपमेण्ट, इन्साइड जर्नल ऑफ एप्लाइड रिसर्च इन एजुकेशन, वॉ0 24, नं0 1, पृ0 307–310
- माग्रेट, प्रमिला पी. (2017). वूमैन एजुकेशन इन इण्डिया, इण्टनेशनल जर्नल ऑफ डेवेलपमेण्ट रिसर्च, वॉ0 7, इश्शू–12, पृ0 17846–17848

ISSN : 2319-7137, Volume: 15/Issue: 01, January-June : 2022

संवेगात्मक बुद्धि के सन्दर्भ में माध्यमिक स्तर के विद्यार्थियों की शैक्षिक उपलब्धि का अध्ययन

शोध निर्देशक
डॉ0 प्रवीन कुमार सिंह
असिस्टेन्ट प्रोफेसर
शिक्षक शिक्षा विभाग (बी0एड0)
सल्तनत बहादुर पी0जी0 कालेज,
बदलापुर, जौनपुर (उ0प्र0)

शोधकर्त्ता
अतुल कुमार सिंह
एम0ए0, एम0एड्0, नेट (शिक्षाशास्त्र)
वीर बहादुर सिंह पूर्वान्चल
विश्वविद्यालय,
जौनपुर (उ0प्र0)

सारांश

प्रस्तुत समस्या कथन– ***संवेगात्मक बुद्धि के सन्दर्भ में माध्यमिक स्तर के विद्यार्थियों की शैक्षिक उपलब्धि का अध्ययन*** करना है। अध्ययन में सहसम्बन्धात्मक सर्वेक्षण विधि का प्रयोग किया गया है। अध्ययन हेतु जनसंख्या में प्रयागराज जनपद में उत्तर प्रदेश माध्यमिक शिक्षा परिषद द्वारा सम्बद्ध माध्यमिक विद्यालयों में कक्षा–11 के विद्यार्थियों को सम्मिलित किया गया है। प्रस्तुत अध्ययन हेतु न्यादर्श का चयन प्रयागराज जनपद के माध्यमिक विद्यालयों में से किया है। इन विद्यालयों के 10+2 स्तर के समस्त छात्र समष्टि है तथा अध्ययन के लिए चयनित विद्यार्थी न्यादर्श है। प्रस्तुत अध्ययन में प्रयागराज जनपद के 20 उत्तर प्रदेश माध्यमिक शिक्षा परिषद से सम्बद्ध माध्यमिक विद्यालयों का चयन कर माध्यमिक विद्यालयों में से कुल 400 विद्यार्थियों (छात्र एवं छात्राओं) का चयन यादृच्छिक विधि से किया गया है। उपकरण के रूप में शैक्षिक उपलब्धि के लिए विद्यार्थियों की हाईस्कूल परीक्षा में प्राप्त प्राप्तांकों को तथा संवेगात्मक बुद्धि को मापने के लिए डॉ0 अरूण कुमार सिंह एवं डॉ0 श्रुति नारायण द्वारा निर्मित ''संवेगात्मक बुद्धि मापनी'' का प्रयोग किया गया है। आँकड़ों के विश्लेषण हेतु एनोवा (प्रसरण विधि) एवं टी–अनुपात सांख्यिकी विधियों का प्रयोग किया गया है। अध्ययन के निष्कर्ष में पाया गया कि– उच्च संवेगात्मक बुद्धि वाले विद्यार्थियों की शैक्षिक उपलब्धि मध्यम एवं निम्न संवेगात्मक बुद्धि वाले विद्यार्थियों की तुलना में अधिक है जबकि निम्न एवं मध्यम संवेगात्मक बुद्धि वाले विद्यार्थियों की शैक्षिक उपलब्धि एक–समान है अर्थात् माध्यमिक स्तर के विद्यार्थियों की शैक्षिक उपलब्धि पर उनके संवेगात्मक बुद्धि का सकारात्मक प्रभाव है।

मुख्य–शब्द– संवेगात्मक बुद्धि, माध्यमिक, छात्र–छात्राएँ, शैक्षिक उपलब्धि, प्रभाव

प्रस्तावना–

शिक्षा मनोविज्ञान के क्षेत्र में विगत कुछ समय से विद्वानों के द्वारा ''संवेगात्मक बुद्धि'' नामक एक नूतन सम्प्रत्यय की प्रचुरता के साथ चर्चा की जा रही है। मनोवैज्ञानिकों के द्वारा किसी घटना के प्रति जीव की प्रतिक्रियाओं को संवेग कहा जाता है। प्रेम, खुशी, स्नेह, प्यार, आश्चर्य, मित्रता जैसे सकारात्मक संवेग व्यक्ति को सामाजिक दृष्टि से वांछनीय क्रियायें करने के लिए प्रेरित करते हैं जबकि क्रोध, भय, दुख, घृणा, कामवासना जैसे नकारात्मक संवेग व्यक्ति को सामाजिक दृष्टि से अवांछनीय प्रतिक्रयायें करने की ओर अग्रसर करते हैं।

संवेगात्मक बुद्धि से तात्पर्य व्यक्ति विशेष की उस समग्र क्षमता से है जो उसे उसकी विचार प्रक्रिया का उपयोग करते हुए अपने तथा दूसरे के संवेगों को जानने समझने तथा उसका सर्वोत्तम प्रबन्धन करने में उसकी सहायता करती है। यह बुद्धि सामान्य बुद्धि (I.Q.) से स्वतंत्र है। अर्थात्

संवेगात्मक बुद्धि स्वयं के संवेगों को, दूसरे के संवेगों को तथा समूह के संवेगों को चिन्हित करना, मूल्यांकन करना तथा नियन्त्रित करने की योग्यता है।

संवेगात्मक बुद्धि के अनेकों मॉडल एवं परिभाषाओं में से Ability तथा Trait Model की वृहद रूप से स्वीकृति प्राप्त है। Ability EI का मापन अधिकांश रूप से निष्पादन परीक्षणों के द्वारा किया जाता है तथा उसका घनिष्ठ सम्बन्ध परम्परागत बुद्धि से है। (बुद्धि जिसमें मुख्य रूप से संज्ञानात्मक शक्तियाँ शामिल है) जबकि Trait EI का मापन सामान्य रूप से स्वयं की बनायी गई प्रश्नावली का उपयोग करके किया जाता है तथा इसका घनिष्ठ सम्बन्ध व्यक्ति के व्यक्तित्व से होता है।

संवेगात्मक बुद्धि नामक पद का प्रतिपादन सर्वप्रथम **मेयर एवं सेलोवे (1997)** ने किया। उनके अनुसार संवेगात्मक बुद्धि में तर्क निहित है परन्तु यह संज्ञानात्मक बुद्धि नहीं कही जा सकती है। **सेलोवे तथा मेयर (1997)** के अनुसार, ''चिन्तन को सुगम बनाने हेतु संवेगों के प्रत्यक्षन, अवबोध, प्रबंधन व प्रयोग की योग्यता संवेगात्मक बुद्धि है।'' संवेगात्मक बुद्धि सामाजिक बुद्धि का एक सम्मुचय होता है, जिसमें स्वयं तथा अन्यों की भावनाओं और संवेगों को नियंत्रित करने, पृथक् करने और सूचना के अनुसार व्यक्ति के चिन्तन और क्रियाओं को निर्देशित करने की क्षमता निहित होती है। संवेगात्मक बुद्धि में संवेगों के प्रत्यक्षीकरण करने, संवेगों के प्रति पहुँच बनाने एवं उसे उत्पन्न करने की क्षमता शामिल होती है जिससे कि चिन्तन में सहायता हो सके, संवेग को समझा जा सके तथा उसे चिन्तनशील तरीके से नियमित किया जा सके।

बार–ऑन (2005) का विचार है कि संवेगात्मक–सामाजिक बुद्धि स्वयं को समझने, अपने सबल एवं दुर्बल पक्ष को जानने तथा अपनी भावनाओं व चिन्तन को गैर–हानिप्रद रूप में व्यक्त करने की अन्तः वैयक्तिक योग्यता पर आधारित है। अन्तर्वैयक्तिक स्तर पर संवेगात्मक व सामाजिक दृष्टि से बुद्धिमान होने में दूसरे के संवेगों, भावनाओं व आवश्यकताओं से परिचित होने तथा सहयोगात्मक, निर्माणकारी और परस्पर सन्तोषजनक सम्बन्ध स्थापित करने व उन्हें कायम रखने की योग्यता निहित है।

श्री शर्मा ने संवेग को आन्तरिक शक्ति के रूप में स्वीकार किया है। ये हमारे भावों को अचानक तीव्र होने तथा विवेक प्रक्रिया के नियंत्रण से मुक्त व्यवहार के परिलक्षित होने की स्थिति को स्पष्ट व्यक्त करते हैं। संवेग के अत्यन्त जटिल परिस्थिति होती है। इसमें कुछ अंग की प्रतिक्रियाएँ जैसे हृदय की गति में परिवर्तन, साँस लेने छोड़ने की गति में परिवर्तन, रक्तचाप की असामान्य स्थिति आदि होती है। इसके साथ कुछ बाहरी अंगों जैसे हाथ, मुख, आँख, पैर, शारीरिक हाव–भाव आदि में कुछ न कुछ परिवर्तन हो जाते हैं। संवेगात्मक बालक को देखकर लक्षण पहचानना कठिन नहीं है। संवेग के सम्बन्ध में **पी0टी0 यंग** ने लिखा है– *''संवेग मनोवैज्ञानिक कारणों से उत्पन्न व्यक्ति का तीव्र उपद्रव है, जिसके अन्तर्गत व्यवहार, चेतन अनुभव तथा अंतरंग क्रियायें सम्मिलित रहती हैं।''* संवेगात्मक स्थितियाँ मनोवैज्ञानिक होती है। इससे माध्यमिक स्तर के विद्यार्थियों पर सकारात्मक एवं नकारात्मक दोनों प्रभाव पड़ता है।

छात्र–छात्राओं ने किस सीमा तक अपनी संवेगात्मक विकास किया है, सही उसकी उपलब्धि का सूचक होता है। यदि किसी परिवार की आर्थिक स्थिति अच्छी है, भौगोलिक दशायें उपयुक्त हैं, जनसंचार साधनों की सुविधा उपलब्ध है, बच्चों के लिए पाठ्यक्रम एवं शिक्षण विधियाँ उपयुक्त हैं, विद्यालय एवं घर का वातावरण उपयुक्त है, तो उन बच्चों की शैक्षिक उपलब्धि तथा संवेगात्मक बुद्धि उच्च होगी और यदि उनकी सामाजिक–आर्थिक स्थिति, परिवार का वातावरण उपयुक्त नहीं है प्रेरणा का अभाव है, विविध क्षेत्रों में समायोजन नहीं है या फिर माता–पिता का प्रोत्साहन प्राप्त नहीं होता है, तो उन बच्चों की शैक्षिक उपलब्धि के साथ–साथ उनके संवेगात्मक बुद्धि को प्रभावित करेगा।

समस्या कथन–

संवेगात्मक बुद्धि के सन्दर्भ में माध्यमिक स्तर के विद्यार्थियों की शैक्षिक उपलब्धि का अध्ययन।

अध्ययन का उद्देश्य–

प्रस्तुत अध्ययन में निम्नलिखित उद्देश्यों का अध्ययन किया गया है–

1. माध्यमिक स्तर के विद्यार्थियों की शैक्षिक उपलब्धि पर संवेगात्मक बुद्धि के प्रभाव का अध्ययन करना।
2. माध्यमिक स्तर के छात्रों की शैक्षिक उपलब्धि पर संवेगात्मक बुद्धि के प्रभाव का अध्ययन करना।
3. माध्यमिक स्तर के छात्राओं की शैक्षिक उपलब्धि पर संवेगात्मक बुद्धि के प्रभाव का अध्ययन करना।

अध्ययन की परिकल्पनाएँ–

प्रस्तुत अध्ययन में निम्नलिखित शून्य परिकल्पनाओं का परीक्षण किया गया है–

1. माध्यमिक स्तर के निम्न, मध्यम एवं उच्च संवेगात्मक बुद्धि वाले विद्यार्थियों की शैक्षिक उपलब्धि में कोई सार्थक अन्तर नहीं है।
2. माध्यमिक स्तर के निम्न, मध्यम एवं उच्च संवेगात्मक बुद्धि वाले छात्रों की शैक्षिक उपलब्धि में कोई सार्थक अन्तर नहीं है।
3. माध्यमिक स्तर के निम्न, मध्यम एवं उच्च संवेगात्मक बुद्धि वाली छात्राओं की शैक्षिक उपलब्धि में कोई सार्थक अन्तर नहीं है।

शोध–विधि–

वर्णनात्मक अनुसंधान के उपर्युक्त प्रकारों में से सहसम्बन्धात्मक सर्वेक्षण विधि को अध्ययनकर्त्ता ने अपनी समस्या के अध्ययनार्थ उपयुक्त पाया। अतः अध्ययन में सहसम्बन्धात्मक सर्वेक्षण विधि का प्रयोग किया गया है।

जनसंख्या–

अध्ययन हेतु जनसंख्या में प्रयागराज जनपद में उत्तर प्रदेश माध्यमिक शिक्षा परिषद द्वारा सम्बद्ध माध्यमिक विद्यालयों में कक्षा–11 के विद्यार्थियों को सम्मिलित किया गया है।

न्यादर्श–

प्रस्तुत अध्ययन हेतु न्यादर्श का चयन प्रयागराज जनपद के माध्यमिक विद्यालयों में से किया है। इन विद्यालयों के 10+2 स्तर के समस्त छात्र समष्टि है तथा अध्ययन के लिए चयनित विद्यार्थी न्यादर्श है।

न्यादर्श चयन विधि–

प्रस्तुत अध्ययन में न्यादर्श के चुनाव हेतु यादृच्छिक प्रतिदर्शन विधि का प्रयोग किया गया है।

प्रस्तुत अध्ययन में प्रयागराज जनपद के 20 उत्तर प्रदेश माध्यमिक शिक्षा परिषद से सम्बद्ध माध्यमिक विद्यालयों का चयन कर माध्यमिक विद्यालयों में से कुल 400 विद्यार्थियों (छात्र एवं छात्राओं) का चयन यादृच्छिक विधि से किया गया है।

प्रयुक्त उपकरण–

शैक्षिक उपलब्धि

शैक्षिक उपलब्धि के लिए विद्यार्थियों की हाईस्कूल परीक्षा में प्राप्त प्राप्तांकों को सम्मिलित किया गया है।

संवेगात्मक बुद्धि मापनी

संवेगात्मक बुद्धि को मापने के लिए डॉ0 अरूण कुमार सिंह एवं डॉ0 श्रुति नारायण द्वारा निर्मित ''संवेगात्मक बुद्धि मापनी'' का प्रयोग किया गया है।

सांख्यिकी विधियाँ–

आँकड़ों के विश्लेषण हेतु एनोवा (प्रसरण विधि) एवं टी–अनुपात सांख्यिकी विधियों का प्रयोग किया गया है।

आँकड़ों का विश्लेषण एवं व्याख्या–

सारणी सं0 1

माध्यमिक स्तर के निम्न, मध्यम एवं उच्च संवेगात्मक बुद्धि वाले विद्यार्थियों की शैक्षिक उपलब्धि में अन्तर का एफ–मान

Source	df	SS	MS	F	Table Value
Between Groups	2	94252.97	47126.49	23.39*	.01(2,397)=4.66
Within Groups	397	799760.99	2014.51		
Total	**399**	**894013.96**	**49141.00**		

0.01 पर सार्थक

एफ–अनुपात = 23.39 जो कि स्वतंत्रांश = (2, 397) पर एफ–अनुपात के क्रान्तिक मान 4.66 से अधिक है, 0.01 पर सार्थक तथा शून्य परिकल्पना ($H_{01.5}$) अस्वीकृत। परिणामतः निम्न, मध्यम एवं उच्च संवेगात्मक बुद्धि के सन्दर्भ में विद्यार्थियों की शैक्षिक उपलब्धि में भिन्नता है।

सारणी सं0 1.1

माध्यमिक स्तर के निम्न, मध्यम एवं उच्च संवेगात्मक बुद्धि वाले विद्यार्थियों की शैक्षिक उपलब्धि के मध्यमानों के बीच टी–अनुपात में अन्तर

S.No.	Level	N	M	S_D	D	t-value
1	Low	144	355.66	5.97	15.01	2.51
	Moderate	93	370.67			
2	Low	144	355.66	5.13	35.81	6.98*
	High	163	391.47			
3	Moderate	93	370.67	5.83	20.80	3.57*
	High	163	391.47			

माध्यमिक स्तर के निम्न, मध्यम एवं उच्च संवेगात्मक बुद्धि वाले विद्यार्थियों की शैक्षिक उपलब्धि का मध्यमान क्रमशः 355.66, 370.67 एवं 391.47 तथा तीनों के मध्य टी–मान क्रमशः 2.51, 6.98 एवं 3. 57 है। सार्थक युग्म तुलना में उच्च संवेगात्मक बुद्धि वाले विद्यार्थियों की शैक्षिक उपलब्धि मध्यम एवं निम्न संवेगात्मक बुद्धि वाले विद्यार्थियों की तुलना में अधिक है जबकि निम्न एवं मध्यम संवेगात्मक बुद्धि वाले विद्यार्थियों की शैक्षिक उपलब्धि एक–समान है।

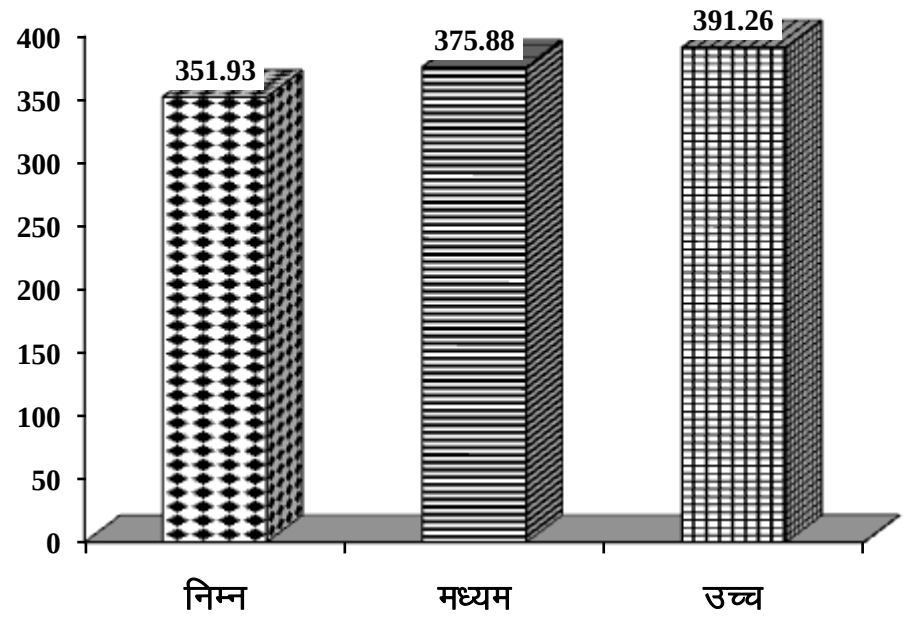

सारणी सं0 2

माध्यमिक स्तर के निम्न, मध्यम एवं उच्च संवेगात्मक बुद्धि वाले छात्रों की शैक्षिक उपलब्धि में अन्तर का एफ–मान

Source	df	SS	MS	F	Table Value
Between Groups	2	38672.81	19336.41	8.82*	.01(2,197)=4.71
Within Groups	197	431969.19	2192.74		
Total	**199**	**470642.00**	**21529.14**		

0.01 पर सार्थक

एफ–अनुपात = 8.82 जो कि स्वतंत्रांश = (2, 197) पर एफ–अनुपात के क्रान्तिक मान 4.71 से अधिक है, 0.01 पर सार्थक तथा शून्य परिकल्पना ($H_{02.5}$) अस्वीकृत। परिणामतः निम्न, मध्यम एवं उच्च संवेगात्मक बुद्धि के सन्दर्भ में छात्रों की शैक्षिक उपलब्धि में भिन्नता है।

सारणी सं0 2.1

माध्यमिक स्तर के निम्न, मध्यम एवं उच्च संवेगात्मक बुद्धि वाले छात्रों की शैक्षिक उपलब्धि के मध्यमानों के बीच टी–अनुपात में अन्तर

S.No.	Level	N	M	S_D	D	t-value
1	Low	62	349.44	8.06	20.86	2.59
	Moderate	74	370.30			
2	Low	62	349.44	8.34	34.83	4.17*
	High	64	384.27			
3	Moderate	74	370.30	7.99	13.97	1.75
	High	64	384.27			

माध्यमिक स्तर के निम्न, मध्यम एवं उच्च संवेगात्मक बुद्धि वाले छात्रों की शैक्षिक उपलब्धि का मध्यमान क्रमशः 349.44, 370.30 एवं 384.27 तथा तीनों के मध्य टी–मान क्रमशः 2.59, 4.17 एवं 1.75 है। सार्थक युग्म तुलना में उच्च संवेगात्मक बुद्धि वाले छात्रों की शैक्षिक उपलब्धि निम्न संवेगात्मक बुद्धि वाले छात्रों की तुलना में अधिक है जबकि निम्न एवं मध्यम तथा उच्च एवं मध्यम संवेगात्मक बुद्धि वाले छात्रों की शैक्षिक उपलब्धि एक–समान है।

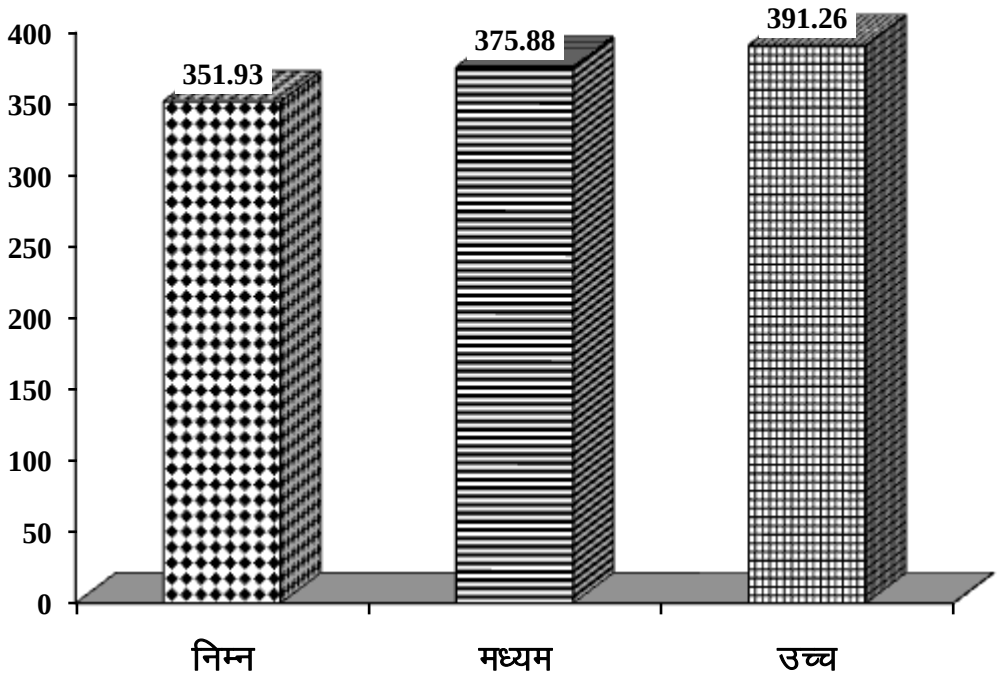

सारणी सं0 3

माध्यमिक स्तर के निम्न, मध्यम एवं उच्च संवेगात्मक बुद्धि वाली छात्राओं की शैक्षिक उपलब्धि में अन्तर का एफ–मान

Source	df	SS	MS	F	Table Value
Between Groups	2	80113.91	40056.96	23.81*	.01(2,197)=4.71
Within Groups	197	331421.61	1682.34		
Total	**199**	**411535.52**	**41739.30**		

0.01 पर सार्थक

एफ–अनुपात = 23.81 जो कि स्वतंत्रांश = (2, 197) पर एफ–अनुपात के क्रान्तिक मान 4.71 से अधिक है, 0.01 पर सार्थक तथा शून्य परिकल्पना ($H_{03.5}$) अस्वीकृत। परिणामतः निम्न, मध्यम एवं उच्च संवेगात्मक बुद्धि के सन्दर्भ में छात्राओं की शैक्षिक उपलब्धि में भिन्नता है।

सारणी सं0 4.15.1

माध्यमिक स्तर के निम्न, मध्यम एवं उच्च संवेगात्मक बुद्धि वाली छात्राओं की शैक्षिक उपलब्धि के मध्यमानों के बीच टी–अनुपात में अन्तर

S.No.	Level	N	M	S_D	D	t-value
1	Low	68	356.69	6.83	21.76	3.19*
	Moderate	77	378.45			
2	Low	68	356.69	7.44	51.31	6.90*
	High	55	408.00			
3	Moderate	77	378.45	7.24	29.55	4.08*
	High	55	408.00			

माध्यमिक स्तर के निम्न, मध्यम एवं उच्च संवेगात्मक बुद्धि वाली छात्राओं की शैक्षिक उपलब्धि का मध्यमान क्रमशः 356.69, 378.45 एवं 408.00 तथा तीनों के मध्य टी–मान क्रमशः 3.19, 6.90 एवं 4. 08 है। सार्थक युग्म तुलना में उच्च संवेगात्मक बुद्धि वाली छात्राओं की शैक्षिक उपलब्धि मध्यम एवं निम्न संवेगात्मक बुद्धि वाली छात्राओं की तुलना में अधिक है जबकि निम्न एवं मध्यम संवेगात्मक बुद्धि वाली छात्राओं की शैक्षिक उपलब्धि भिन्न है।

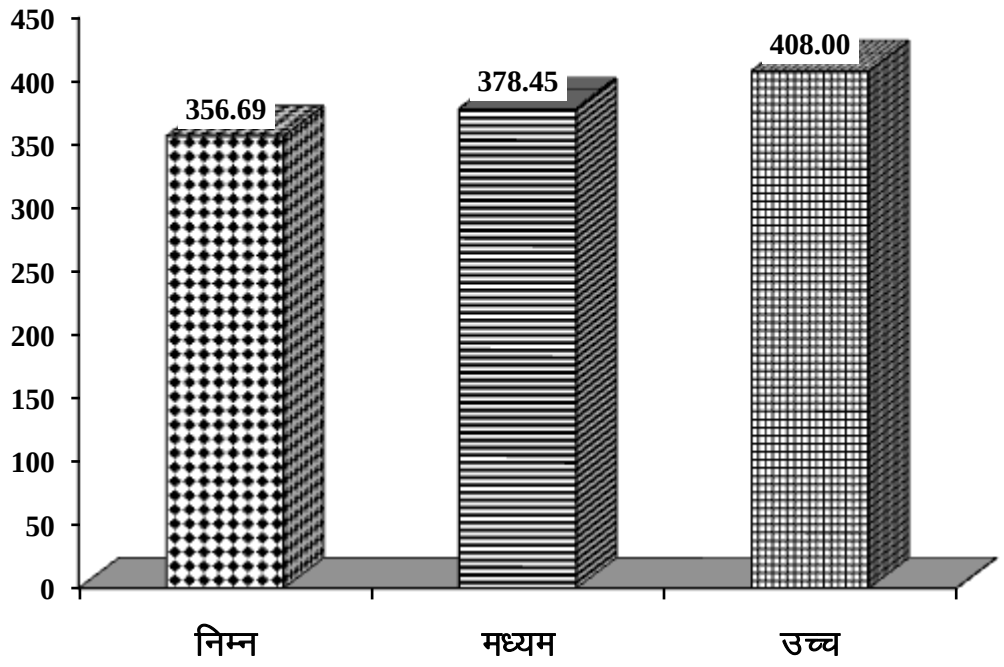

निष्कर्ष एवं सुझाव–

अध्ययन में आँकड़ों के विश्लेषण के पश्चात् निम्नलिखित निष्कर्ष प्राप्त हुये–

- उच्च संवेगात्मक बुद्धि वाले विद्यार्थियों की शैक्षिक उपलब्धि मध्यम एवं निम्न संवेगात्मक बुद्धि वाले विद्यार्थियों की तुलना में अधिक है जबकि निम्न एवं मध्यम संवेगात्मक बुद्धि वाले

विद्यार्थियों की शैक्षिक उपलब्धि एक–समान है अर्थात् माध्यमिक स्तर के विद्यार्थियों की शैक्षिक उपलब्धि पर उनके संवेगात्मक बुद्धि का सकारात्मक प्रभाव है।

- उच्च संवेगात्मक बुद्धि वाले छात्रों की शैक्षिक उपलब्धि निम्न संवेगात्मक बुद्धि वाले छात्रों की तुलना में अधिक है जबकि निम्न एवं मध्यम तथा उच्च एवं मध्यम संवेगात्मक बुद्धि वाले छात्रों की शैक्षिक उपलब्धि एक–समान है अर्थात् माध्यमिक स्तर के छात्रों की शैक्षिक उपलब्धि पर उनके संवेगात्मक बुद्धि का सकारात्मक प्रभाव है।

- उच्च संवेगात्मक बुद्धि वाली छात्राओं की शैक्षिक उपलब्धि मध्यम एवं निम्न संवेगात्मक बुद्धि वाली छात्राओं की तुलना में अधिक है जबकि निम्न एवं मध्यम संवेगात्मक बुद्धि वाली छात्राओं की शैक्षिक उपलब्धि भिन्न है अर्थात् माध्यमिक स्तर के छात्राओं की शैक्षिक उपलब्धि पर उनके संवेगात्मक बुद्धि का सकारात्मक प्रभाव है।

अध्ययन के पश्चात् जो निष्कर्ष प्राप्त हुये उनकी सार्थकता पूर्व के अध्ययनों के आधार पर सिद्ध होती है जिसमें ***सिंह (2007), पाण्डेय, अनुजा (2008), मूलरी, पी0 (2009), चामुण्डेश्वरी, एस0 (2013), खलेदियन, मोहम्मद एवं अन्य (2013), कोलचैना, अरूणा (2014), दास एवं घोस (2014), एस0 रमेश एवं अन्य (2016), राय, डोना एवं खनाल, युगल किशोर (2017)*** के परिणाम सामान्य विद्यार्थियों की सम्प्राप्ति उनकी संवेगात्मक बुद्धि से सकारात्मक रूप से सम्बन्धित है। ***ग्रेस (2012)*** के परिणाम संवेगात्मक बुद्धि के छः विमा एवं शैक्षिक उपलब्धि के मध्य सार्थक एवं धनात्मक सहसम्बन्ध पाया गया।

संवेगों का सही उपयोग व प्रभावी ढंग से प्रबन्धन व नियंत्रण करने की योग्यता को संवेगात्मक बुद्धि कहा जाता है। किसी सुसमायोजित, सुखी तथा सफल व्यक्ति के जीवन में सामान्य बुद्धि के स्थान पर संवेगात्मक बुद्धि अधिक महत्त्वपूर्ण तथा सार्थक सिद्ध होती है। बालकों में संवेगात्मक बुद्धि प्रस्फुटन, प्रवर्तन तथा विकास के कार्य में उनके परिजनों, साथियों, शिक्षकों, पास–पड़ोस, विद्यालय तथा जनसंचार के साधनों के द्वारा तरह–तरह से महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा की जा सकती है।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची :

- एरोक्या, मरयचेलवी, राजन संगीता (2013). द रिलेशनशिप बिटवीन इमोश्नल इन्टेलिजेन्स एण्ड द एकेडमिक परफारमेन्स अमगं फाइनल इयर अण्डर ग्रेजुएट्स, *यूनिर्वसल जर्नल ऑफ साइकोलोजी*, 1 (2). (41–45)।

- कुमारी, निधि (2021). उच्च माध्यमिक स्तर के विद्यार्थियों के मानसिक स्वास्थ्य, समायोजन, संवेगात्मक बुद्धि का उनके शैक्षिक उपलब्धि पर पड़ने वाले प्रभाव का अध्ययन, शोध प्रबन्ध (शिक्षाशास्त्र). नेहरू ग्राम भारती (मानित वि0वि0). प्रयागराज।

- ग्रेस (2012). रिलेटिंग इमोशनल इंटेलिजेन्स टू ऐकेडमिक एचिवमेन्ट एमंग यूनिवर्सिटी स्टूडेन्ट्स इन बारबडोस वेस्टंडीज, 4(2). पृ0 43–54

- पाण्डेय, अनुजा (2008). +2 स्तर पर विद्यार्थियों की संवेगात्मक बुद्धि एवं शैक्षिक उपलब्धि में सम्बन्ध का अध्ययन, लघु शोध प्रबन्ध, इलाहाबाद विश्वविद्यालय, इलाहाबाद।

- मेयर, जे0डी0 एवं सैलोवे, पी0 (1997). व्हाट इज इमोशनल इंटेलिजेन्स? साइटेड इन पी0 सैलोवे ऐण्ड डी0 स्लूएटर, *इमोशनल डेवलपमेन्ट ऐण्ड इमोशनल इंटेलिजेन्स : इम्पिकेशन्स फॉर एजूकेटर।* न्यूयार्क : बेसिक बुक्स।

- बार–ऑन, आर0 (2000). इमोशनल ऐण्ड सोशल इंटेलिजेन्स : इनसाइट्स फ्राम द इमोशनल क्योशेन्ट इन्वेन्ट्री। आर0 बार–ऑन एवं जे0डी0ए0 पार्कर (सम्पा0). *हैण्डबुक ऑफ इमोशनल इंटेलिजेंस* / सेनफ्रांसिस्को : जेसी ब्रास।

- रमेश, एस0, थावराज सैम्युअल, राजकुमार डी0 (2016). इम्पैक्ट ऑफ इमोशनल इन्टेलिजेन्स ऑफ एकेडमिक अचिवमेण्ट ऑफ कॉलेज स्टूडेन्ट्स–ए रिव्यू, *इण्टरनेशनल जर्नल ऑफ बिजनेस मैनेजमेण्ट एण्ड रिसर्च*, 6(2). पृ0 25–30

- रजिया, बी. एवं अहमद, नबी (2017). इमोशनल इन्टेलिजेन्स एण्ड सोशियो– इकोनॉमिक स्टे्टस एज द डिटरमेण्टे्स ऑफ एकेडमिक एचिवमेण्ट एमंग एडोलसेन्ट्स, *इण्टरनेशनल जर्नल ऑफ एजुकेशन एण्ड साइकोलॉजिकल रिसर्च*, वॉल्यूम–6, इश्शू–2, पृ0 137–142

- राय, डोना एवं खनाल, युगल किशोर (2017). इमोशनल इन्टेलिजेन्स एण्ड इमोशनल मैचुरटी एण्ड देयर रिलेशन विथ एकेडमिक एचिवमेण्ट ऑफ कॉलेज स्टूडेन्ट्स इन सिक्किम, *इण्टरनेशनल जर्नल ऑफ एजुकेशन एण्ड साइकोलॉजी रिसर्च*, वॉल्यूम–6, इश्शू–2, पृ0 1–3

- रेनू (2021). बी0एड्0 स्तर पर अध्ययनरत् विद्यार्थियों के शैक्षिक उपलब्धि एवं आकांक्षा स्तर पर उनके संवेगात्मक बुद्धि के प्रभाव का अध्ययन, शोध प्रबन्ध (शिक्षाशास्त्र). नेहरू ग्राम भारती (मा0वि0). प्रयागराज।

- रिचर्ड एवं सुमाथी (2015). ए स्टडी ऑफ इमोशनल एडजेस्टमेण्ट एण्ड एकेडमिक एचिवमेण्ट एमंग सेलेक्टेड हाईस्कूल स्टूडेन्ट्स इन कोयम्बटुर डिस्ट्रिक, *शनलैक्स इण्टरनेशनल जर्नल ऑफ एजूकेशन*, वॉल्यूम–3, नं0 3, पृ0 50–54

- त्रिपाठी, सुनील मणि एवं सिंह, जय (2017). जौनपुर जिले के माध्यमिक स्तर पर अध्ययनरत् छात्रों का शालेय संवेगात्मक वातावरण का उनके शैक्षणिक उपलब्धि पर होने वाले प्रभाव का अध्ययन, *इण्टरनेशनल जर्नल ऑफ एडवांसड एजूकेशनल रिसर्च*, वॉल्यूम–2, इश्शू–1, पृ0 38–42

ISSN : 2319-7137, Volume: 15/Issue: 01, January-June : 2022

तुलसी काव्य धारा में नारी चिन्तन

डॉ0 अरुण कुमार मिश्र
असि0 प्रोफेसर, हिन्दी
एम0डी0पी0जी0 कॉलेज, प्रतापगढ़

गोस्वामी तुलसीदास रामकाव्य धारा के उन्नायक कवि के रूप में स्वीकार किये जा सकते हैं। रामकाव्य परम्परा का प्राचीनतम उपलब्ध ग्रन्थ बाल्मीकि रामायण को माना जाता है। यद्यपि रामकथा पर पूर्व में भी कुछ काव्य लिखे जाने के प्रमाण हैं किन्तु वर्तमान समय में वे सभी लगभग अप्राप्य हैं। रामकाव्य के रूप में आदिकवि वाल्मीकि के साथ–साथ गोस्वामी तुलसीदास जी ने भी अपनी अलौकिक रचना द्वारा समाज को कृतकृत्य किया है। सन्त तुलसी की सम्यक् दृष्टि को उनकी अमूल्य निधि रामचरितमानस में अनुभूत किया जा सकता है। वाल्मीकि कृत रामायण संस्कृत भाषा में लिखा गया है। हिन्दी भाषा में लिखित रामकथा तो वस्तुतः तुलसी कृत रामचरितमानस को ही माना जाता है। ऐसी स्थिति में सन्त तुलसी ही रामकाव्य परम्परा में प्रतिनिधि कवि कहे जा सकते हैं। अपने मूलरूप में रामकथा भारतीय जीवन के नैतिक–सामाजिक मूल्यों को समेटे हुए है। तुलसीदास ने रामकथा को भारतीय संस्कृति की मूल चेतना के रूप में ग्रहण करते हुए राम को दिव्य, अवतारवादी, भक्तवत्सल तथा लीला पुरुषोत्तम के रूप में मर्यादा पुरुषोत्तम घोषित किया है। तुलसी के काव्य में राम के दीनबन्धु तथा करुणासिन्धु रूप का वर्णन है जो सगुण तथा निर्गुण दोनों रूपों में अपने भक्तों का कल्याण करते हैं। तुलसी के काव्य में आस्था, विश्वास तथा पूर्ण भक्तिभाव का समावेश है। रामचन्द्र शुक्ल के शब्दों में– ''यद्यपि स्वामी रामानन्द की शिष्य परम्परा के द्वारा देश के बड़े भाग में रामभक्ति की पुष्टि निरन्तर होती आ रही थी, पर हिन्दी साहित्य के क्षेत्र में रामभक्ति का परमोज्ज्वल प्रकाश विक्रम की 17वीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध में गोस्वामी तुलसीदास की वाणी द्वारा स्फुरित हुआ। उनकी सर्वतोन्मुखी प्रतिभा ने भाषा काव्य की सारी प्रचलित पद्धतियों के बीच अपना चमत्कार दिखाया। सारांश यह है कि रामभक्ति का वह परम विशुद्ध साहित्यिक संदर्भ हिन्दी भक्त शिरोमणि द्वारा संघटित हुआ जिससे हिन्दी साहित्य की प्रौढ़ता के युग का आरम्भ हुआ।''[1]

तुलसी के काव्य में मर्यादाओं की पराकाष्ठा को दृष्टिगत किया जा सकता है। तुलसी ने शृंगार वर्णन में भी अद्भुत मर्यादा भाव को उकेरकर अपने काव्य में नैतिक सौन्दर्य बिखेर दिया है। श्रीराम और जानकी के विवाह के समय का दृश्य वर्णित करते हुए सन्त तुलसी कवितावली में लिखते हैं–

दूलह श्री रघुनाथ बने, दुलही सिय सुन्दर मन्दिर मॉहीं।
गावत गीत सबै मिलि सुन्दरि, वेद तुआ जुरि विप्र पढ़ाहीं।।
राम को रूप निहारति जानकि, कंगन के नग की परिछाही।
याते सबै सुधि भूलि गईं, कर टेकि रही पल टारति नाहीं।।

सन्त तुलसी की नारी–दृष्टि बहुत ही विलक्षण हैं। इसलिए नारी प्रसंगों को बहुत मर्यादित रहकर ही उनका चित्रण किया है। शृंगार का इतना मर्यादित चित्र हिन्दी काव्य विधा में कदाचित ही दृष्टिगोचर होता है। तुलसी काव्य में भाव प्रसंगों की अद्भुत मार्मिकता विद्यमान है। उनकी भाव दक्षता इतनी उच्चकोटि की है कि भावों का संचार सहज ही प्रस्फुटित होने लगता है। उनके भाव विचारों के केन्द्र में प्रेम, करुणा, सहानुभूति तथा भक्तवत्सलता के तत्वदृष्टिगत किये जा सकते है। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल के शब्दों में–

''गोस्वामी जी को मनुष्य के अन्तः प्रकृति की जितनी परख थी, उतनी हिन्दी के किसी और कवि की नहीं। कैसे अवसर पर मनुष्य के हृदय में स्वभावतः कैसे भाव उठते हैं, इसकी वे बहुत सटीक कल्पना करते थे।''[2]

तुलसी काव्यधारा के समस्त सोपानों पर विमर्श कर पाना तो किसी भी लेखक अथवा साहित्यकार के लिए दुर्लभ है, तथापि प्रस्तुत लेख में गोस्वामी तुलसीदास जी की नारी जाति के प्रतिभावों का दर्शन करने का एक प्रयास किया गया है। सन्त तुलसी के हृदय में यद्यपि नारी जाति के प्रति सदैव सम्मान की भावना विद्यमान रहती है, किन्तु यत्र–तत्र प्रसंग और कृत्य के वशीभूत नारियों के कुछ व्यवहार तुलसी को आहत भी करते हैं। इसलिए ऐसे स्थानों पर सन्त तुलसी ने मर्यादा को महत्व दिया है तथा उस स्थान पर उन्होंने स्त्रियों की स्वभावगत विशेषता को आधार बनाकर उनके व्यवहार की निन्दा भी की है। नारी जाति के चरित्रगत वैशिष्ट्य की दृष्टि से ही तुलसी ने उनका समादर तथा निन्दा की है। उन्होंने अपने काव्यों में नारी के विषय में वही धारणा प्रस्तुत की जो परम्परागत रूप में चली आ रही थी। रामकाव्य में सन्त तुलसी ने नारियों की कई प्रकार की श्रेणियाँ निर्धारित की थी। पहली वे जो मर्यादित रहकर अपना जीवन व्यवहार करती थी तथा परम पवित्र थीं। दूसरी वे जो मर्यादा को तार–तार कर दिया। ऐसी नारियाँ तुलसी की दृष्टि में निन्दनीय थीं। पवित्रसम प्रख्यायित नारियों में माता अरुन्धती, माता अहिल्या, कौशल्या, कैकेयी, सुमित्रा, सीता, उर्मिला, माण्डवी, श्रुतिकीर्ति, सुनयना, मयना, अनुसुइया तथा मन्दोदरी का उल्लेख किया जा सकता है। जबकि ताड़का, सूर्पणखा आदि जैसी नारियों को महज मर्यादा हनन की दृष्टि से तुलसीदास जी निन्दित मानते हैं। एक सन्त की सम्यक् दृष्टि मर्यादा को ही पवित्र तथा उत्तम मानती है। मर्यादा विहीन आचरण किसी नारी तो क्या, किसी भी प्राणी को उत्तम नहीं बना सकती।

यत्र–तत्र जहाँ कहीं भी नारी की अपावनता का उल्लेख है, वहाँ पर तुलसी ने सिर्फ सम्बन्धित पात्र के विचारों को भाषाबद्ध किया है। वे तुलसी के निजी या व्यक्तिगत दृष्टि नहीं कहे जा सकते। माता अनुसूइया के विचारों को लिपिबद्ध करते हुए सन्त तुलसी ने लिखा है–

सहज अपावनि नारि, पति सेवत शुभ गति लहइ।

जसु गावत श्रुति चारि, अजहुँ तुलसिका हरिहि प्रिय।। –अरण्यकाण्ड

उपरोक्त पंक्तियों में नारी को जन्म से ही अपवित्र घोषित किया गया है। किन्तु पति सेवा करते हुए उसे शुभगति का अधिकारी कहा गया। पतिव्रत आचरण के कारण ही आज भी तुलसी जी भगवान को अत्यन्त प्रिय हैं। यहाँ यह स्पष्ट कर देना आवश्यक है कि नारी के प्रति यह दृष्टिकोण सन्त तुलसी का नहीं है, अपितु यह माता अनुसूइया का है। माता अनुसूइया स्वयं एक पतिव्रता स्त्री हैं तथा उन्होंने अपने जीवन के अनुभूत तथ्यों को ही सीता जी के समक्ष प्रस्तुत किया है। माता अनुसूइया एक मर्यादित व पवित्र आचरण की अधिष्ठात्री होने के कारण ही सीता जी को मर्यादा की शिक्षा प्रदान कर रही हैं। इसलिए इसे तुलसी की दृष्टि समझना सर्वथा गलत है।

रामचरितमानस में स्त्री के प्रति कठोर दृष्टिकोण का भी दिग्दर्शन किया जा सकता है। स्त्री को पति धर्म का पालन अनिवार्य बताया गया है चाहे पति कैसा भी हो। इस तथ्य की पुष्टि हेतु सीता–अनुसूइया संवाद को देखा जा सकता है–

अनुसूइया के पद गहि सीता। मिली बहोरि सुशील बिनीता।।

रिषि पतनी मन सुख अधिकाई। आशिष देइ निकट बैठाई।।

दिब्यवसन भूषन पहिराये। जे नित नूतन अमल सुहाये।।

कह रिषबधू सरस मृदुबानी। नारि धर्म कछु ब्याज बखानी।।

मातु पिता भ्राता हितकारी। मित प्रद सब सुन राजकुमारी।।

अमित दानि भर्ता वैदेही। अधम सो नारि जो सेव न तेही।।

धीरज धर्म मित्र अरु नारी। आपदकाल परिखिअहिं चारी।।

वृद्ध रागवश जड़ धन हीना। अंध बधिर क्रोधी अति दीना।।

ऐसेहुं पति कर किम अपमाना। नारि पाव जमपुर दुःख नाना।।

एकइ धर्म एक ब्रत नेमा। कॉय बचन मन पति पद प्रेमा।।

उपरोक्त पंक्तियों में यदि तार्किक चिन्तन किया जाय तो हम कह सकते हैं कि यद्यपि नारी के प्रति कुछ कठोर भाव परिलक्षित होते हैं किन्तु यह कठोरता महज मर्यादा जनित हैं। इस तरह का उपदेश तो कोई मर्यादित और पतिधर्म में निपुण नारी ही कर सकती थी। अमर्यादित नारियों से इस प्रकार की धार्मिकता तथा सद्चरित्रता की अपेक्षा करना भी असम्भव है।

नारी के प्रति कठोर व्यवहार को प्रदर्शित करता हुआ एक और प्रसंग समुद्र बंधन के समय का है। जब भगवान राम के अनुनय विनय को समुद्र द्वारा कोई महत्व न दिये जाने के कारण राम ने सर संधान करना चाहा तो समुद्र ने प्रकट होकर उनसे क्षमा याचना की तथा निम्न बातें कहीं–

प्रभु भल कीन्हि मोंहि सिख दीन्हीं। मरजादा पुनि तुम्हारी कीन्हीं।।

ढोल गँवार शूद्र पशु नारी। सकल ताड़ना के अधिकारी।।

प्रस्तुत प्रसंग में उपरोक्त बातें समुद्र की हैं न कि सन्तु तुलसी की। उन्होंने यथास्थिति का महज वर्णन किया है। समुद्र ने इन समस्त वस्तुओं को उनके स्वभाव के आधार पर वर्णित किया है। यह नारी के प्रति तुलसी के उद्गार नहीं कहे जा सकते क्योंकि एक अन्य स्थान पर तुलसी ने अपने भावों को व्यक्त किया–

कत विधि सृजी नारि जगमाँही। पराधीन सपनेहुँ सुख नाहीं।।

इस प्रकार यह तथ्य सामने आता है कि तुलसी के मन में नारी जाति के प्रति सहानुभूति का भाव है। नारी की पीड़ा का जैसा अनुभव तुलसी ने किया वैसा बहुत कम ही कवि कर सके। इसलिए यह कहना है कि तुलसी नारी को प्रताड़ित किये जाने के पक्षधर है तथा नारी विरोधी मानसिकता से परिपूर्ण हैं, अपने आपमें अस्वीकारणीय तथ्य कहा जायेगा। तुलसी पर यह आरोप लगाने वाले यह भूल जाते हैं कि तुलसी ने, सीता, पार्वती, अनुसूइया जैसी नारियों के उज्ज्वल चरित्र की परिकल्पना करते हुए नारी को सती, पतिव्रता एवं त्यागमयी रूप में प्रस्तुत कर उन्हें गरिमा एवं भव्यता प्रदान की है। इस विषय में निमन पंक्तियाँ ध्यातव्य है–

''धन्य भूमि सो जहँ सुरसरी। धन्य नारि पतिव्रत अनुसरी।''

अर्थात् वह भूमि धन्य है जहाँ माँ गंगा हैं तथा वह नारी धन्य है जो पतिव्रत धर्म का आचरण करती हैं। शिव सती संवाद के अन्तर्गत माता सती द्वारा भगवान राम की परीक्षा लिये जाने पर भगवान शिव द्वारा सती के त्याग प्रसंग में तुलसी न सिर्फ नारी के स्वभाव के कारण हुए प्रभाव को रेखांकित किया है न कि सती को गलत कहा है। उसी स्त्रीगत स्वभाव ने ही सती को झूठ बोलने को प्रेरित किया।

सती कपट जानेउ सुरस्वामी। सबदरसी सब अन्तरजामी।।

सुमिरत जाहि मिटई अग्याना। सोइ सरवग्य राम भगवाना।।

सती कीन्ह चह तहहुँ दुराऊ। देखहु नारि स्वभाव प्रभाऊ।।

इसी स्त्री स्वभाव के वशीभूत होकर सती ने भगवान शिव से भी झूठ बोला। भगवान शिव द्वारा परीक्षा लेने की बात पूँछे जाने पर माता सती ने कहा–

''कछु न परीक्षा लीन्हि गोसाई। कीन्हिं प्रनाम तुम्हारिहि नाई।।''

इस प्रकार संत तुलसी ने नारीगत ऐसे स्वभाव की निन्दा की है जो अपने पति की बात को भी संदेह से देखती है। ऐसे स्वभाव का प्रभाव सती जैसी जगज्जननी पराम्बा के ऊपर भी पड़ सकता है तो सामान्य स्त्रियों की कौन कहे ? राम वन गमन प्रसंग में कैकेयी ने मंथरा दासी का कुटिलपन देखकर उसे धिक्कारा था। इस बात को माता कैकेयी द्वारा ही सन्त तुलसी ने कहलवाया न कि अपने मन्तव्य को।

काने खोरे कूबरे, कुटिल कुचाली जानि।

तिय विशेखि पुनि चेरि कहि, भरत मातु मुसुकानि।।

कुछ विद्वान 'मानस' को पुरुषवादी सोच का प्रतीक मानते हैं और यह आरोप लगाते हैं कि पुरुष होने के कारण तुलसी ने स्त्रियों के प्रति रूखा व्यवहार प्रदर्शित किया है। किन्तु इस प्रसंग में कैकेयी मन्थरा को उलाहना देती है न कि मानस का कोई पुरुष पात्र।

नारी के विषय में विवेचन नारद मोह के प्रसंग में प्राप्त होता है। जब महर्षि नारद काम को जीतने की घोषणा करते हैं तो भगवान नारायण उन्हें अपनी माया से विचलित कर दिये। ऐसी परिस्थिति में ऋषि नारद विवाह करने के लिए आतुर हो उठे। उन्होंने भगवान नारायण से अपने लिए सुन्दर स्वरूप की याचना की। किन्तु भगवान ने उनका परमहित समझकर उन्हें विवाह से वंचित कर दिया। इस पर नारद जी ने क्रोधित होकर भगवान नारायण को शाप दे दिया जिसे उन्होंने सहर्ष अंगीकार कर लिया। भगवान नारायण द्वारा अपनी मायाशक्ति का कर्षण कर लेने पर नारद जी को वास्तविकता का ज्ञान हुआ और वे पश्चाताप करने लगे। वनगमन के समय वन मार्ग में नारद ने भगवान से पूँछा कि प्रभो आपने उस समय मुझे विवाह क्यों नहीं करने दिया ? इस पर भगवान ने उत्तर दिया–

काम क्रोध लोभादि मद प्रबल मोह कै धारि।

तिन्ह मँह अत दारुन दुःखद, मायारूपी नारि।।

सुनु मुनि कह पुरान श्रुति सन्ता। मोह विपिन कहुँ नारि बसन्ता।।

जप तप नेम जलाश्रय झारी। होई ग्रीष्म सोषइ सब नारी।।

काम क्रोध मद मत्सर भेका। इन्हहिं हरषप्रद वर्षा एका।।

दुर्बासना कुमुद समुदाई। तिन्ह कँह सरद सदा सुखदाई।।

धर्म सकल सरसीरुह बृन्दा। होइ हिम तिन्हहिं दहइ सुख मन्दा।।

पुनि ममता जवास बहुताई। पलुहइ नारि सिसिर रितु पाई।।

पाप उलूक निकर सुखकारी। नारि निबिड़ रजनी अँधियारी।।

बुधि बल सील सत्य सब मीना। बनसी सम त्रिय कहहिं प्रबीना।।

अवगुन मूल शूलप्रद, प्रमदा सब दुःख खानि।

ताते कीन्ह निवारन मुनि मैं यह जिय जानि।।

अर्थात्– संसार में काम क्रोध लोभ और मद मनुष्य के मोह के प्रमुख कारण हैं। किन्तु माया रूपा नारी तो अत्यन्त दुःख रूप है। पुराण तथा श्रुतियों में नारी को मोह रूपी वन के लिए बसन्त ऋतु के समान कहा गया है। इस प्रकार नारी मोह को बढ़ाने वाली होती है। जप तप नियम रूपी जलाशय को ग्रीष्म ऋतु के समान सोख लेती है। काम, क्रोध, मद आदि रूपी मेढ़कों के लिए नारी वर्षा ऋतु के समान होती है। सभी तरह के धर्म कर्म रूपी कमल के समूह के लिए हिमरितु बनकर उनको नष्ट कर देती है तथा ममता मोह रूपी जवास के बन को नारी शिशिर ऋतु बनकर हरा भरा कर देती है। पाप रूपी उल्लुओं के समूह के लिए घनी अँधेरी रात बनकर उनकी वृद्धि करती है। बुद्धि, बल, शील तथा सत्य रूपी मछलियों के लिए यह बंसी (मछली पकड़ने का साधन) बन जाती है। हे मुनिवर युवती स्त्री

सभी अवगुणों की मूल, पीड़ादायक तथा सभी दुःखों की खान है। इसीलिए मैंने आपको विवाह करने से रोका था।

उपरोक्त पंक्तियों में तुलसी के ये विचार अनायास ही प्रकट नहीं हुए हैं बल्कि इसमें नारी के पूर्व में हुए क्रिया प्रसंगों का अनुभव भी शामिल है। इतिहास साक्षी है कि बड़े–बड़े ऋषियों महर्षियों की तप साधना में कुछ नारियों ने अपना कामस्वरूप दिखाकर व्यवधान डाला था। विश्वामित्र और मेनका का उदाहरण ध्यातव्य है। जब स्त्री ने अपना काम रूप संसार के सम्मुख प्रदर्शित किया तो तुलसी भी उससे प्रभावित हुए बिना नहीं रह पाये और उसका दार्शनिक विवेचन प्रस्तुत किये। इसलिए तुलसी के काव्य में ऐसी नारियों को ही धर्म–कर्म साधना में बाधा डालने के कारण उन्हें दोषयुक्त कहा गया है। इस प्रकार तुलसी ने नारी स्वभाव की दार्शनिक व्याख्या प्रस्तुत की है। तुलसी की नारी सम्बन्धी भावना दार्शनिक मतवाद पर आधारित है जिसमें उन्होंने शंकराचार्य के समान माया का अविद्यारूप वर्णित किया तथा नारी को मायारूपी कहा है।

रावण–मन्दोरी संवाद में भी नारी के एक अलग स्वरूप का वर्णन प्राप्त होता है। मन्दोदरी के बार–बार माता सीता को राम को लौटाने के अनुनय–विनय को रावण मन्दोदरी की कायरता तथा भय के रूप में ग्रहण करता है। रावण कहता है–

नारि स्वभाव सत्य कवि कहहीं। अवगुण आठ सदा उर रहहीं।।

साहस अनृत चपलता माया। भय अविवेक अशौच अदाया।।

अर्थात् नारी के स्वभाव के प्रति कवि लोग सत्य ही कहते हैं कि स्त्रियों के स्वभाव में आठ गुण विद्यमान होते हैं। जिससे साहस, झूठ, भय, चपलता, माया, अविवेक, अशौच तथा दयाविहीनता शामिल है। यहाँ ये विचार उस रावण के हैं जिसने पराम्बा माता जानकी का हरण किया। इसलिए इस प्रसंग में यह रावण की दृष्टि है न कि सन्त तुलसी की।

राम वनवास के समय भरत जी अपनी माता कैकेयी से रामवन गमन तथा दशरथ मरण प्रसंग सुनकर उसे धिक्कारते हुए कहते हैं–

धीरज धरि भरि लेंहि उसासा। पापिनि सबहिं भाँति कुल नासा।

विधिहुँ न नारि हृदय गति जानी। सकल कपट अध अवगुन खानी।।

अर्थात् भरत जी धैर्य धारण करके धीमी साँस लेते हुए कहते हैं कि हे पापिनी! तुमने सब प्रकार से कुल का नाश कर दिया। विधाता भी स्त्रियों के हृदय की बात नहीं जान सकता क्योंकि स्त्रियाँ सभी प्रकार के कपट, पाप तथा अवगुणों की खान होती हैं। भरत के ये उद्‌गार अपनी स्वयं की माता के प्रति हैं जो उन्होंने लौकिक रूप से श्रीराम को वनवास देकर किया था। यहाँ भरत जैसे सन्त ने अपनी माता द्वारा किये गये अक्षम्य अपराध के लिए माता कैकेयी को धिक्कारते हुए सिर्फ उसके नारी स्वभाव की भर्त्सना की है। अतः इसे भी स्त्रियों के प्रति तुलसी की दृष्टि नहीं कहा जा सकता। कैकेयी भरत की माता थी। क्या कोई सदाचारी पुत्र स्वयं अपनी माता के प्रति ऐसे कठोर शब्द कह सकता है ? किन्तु फिर भी अनुचित कार्य किये जाने पर भरत ने उन्हें धिक्कारा।

धिग कैकेयी अमंगल मूला। भइसि प्रान प्रियतम प्रतिकूला।।

कुटिल कठोर कुबुद्धि अभागी। भइ रघुबंश बेनु बन आगी।।

तुलसी की नारी निन्दा करने का कोई भाव नहीं है। उनके ग्रन्थों में नारी के प्रति जो कठोर शब्द प्रयुक्त हुए हैं वे तुलसी के मन्तव्य न होकर परिस्थिति जन्य भाव विचार हैं जिन्हें सम्बन्धित पात्रों की अभिव्यक्ति के रूप में देखा जाना चाहिए।

एक अन्य प्रसंग में राजा दशरथ तथा राम के प्रति कैकेयी के दुर्व्यवहार से दुःखी होकर अयोध्या निवासी भी कैकेयी के बहाने समस्त नारी जाति की निन्दा करते प्रतीत होते हैं–

सत्य कहहिं कवि नारि सुभाऊ। सब बिधि अगहु अगाध दुराऊ।।

निज प्रतिबिम्ब बरुक गहि जाई। जानि न जाइ नारि गति भाई।।

अर्थात्– विद्वानों ने नारी स्वभाव के बारे में ठीक ही कहा है कि उनका कपट भाव सभी तरह अगम तथा अथाह होता है। अपनी स्वयं की परछाईं तो कदाचित पकड़ी भी जा सकती है, किन्तु नारी के हृदय की गति कभी नहीं जानी जा सकती। यहाँ भी नारियों के स्वभावगत विशेषताओं का ही वर्णन है। यदि यह स्वभावगत न होता तो कदाचित कैकेयी ऐसा व्यवहार कभी न करती।

तुलसी काव्य में तुलसी ने जहाँ एक ओर शुभ चरित्र वाली नारियों का महिमामंडन किया है वहीं दूसरी तरफ अनुचित आचरण प्रदर्शित करने वाली नारियों की निन्दा भी की है। दुष्ट नारियों में ताड़का तथा सूर्पनखा उल्लेखनीय है। महर्षि विश्वामित्र की यज्ञ रक्षा के लिए जाते हुए श्रीराम तथा लक्ष्मण को देखकर ताड़का क्रोध से परिपूर्ण होकर श्रीराम पर आक्रमण करती है और श्रीराम उसका बध करते है। यद्यपि स्त्री बध शास्त्र सम्मत नहीं है तथापि केवल दुष्ट आचरण के कारण ही श्रीराम को ताड़का का बध करना पड़ा।

चले जात मुनि दीन्हि देखाई। सुनि ताड़का क्रोध करि धाई।।

एकहिं बान प्राण हरि लीन्हा। दीन जानि तेहि निज पद दीन्हा।।

एक अन्य प्रसंग में सूर्पनखा नामक राक्षसी जो कि लंकाधिपति रावण की प्यारी बहन है, राम के पास विवाह का प्रस्ताव लेकर आती है। ऐसी अधम स्त्रियों के प्रति फिर भी राम का व्यवहार मर्यादा से आवृत्त है। राम द्वारा विवाह प्रस्ताव नकार देने पर सूर्पणखा क्रोधित होकर आक्रमण करती है, जिस पर राम के संकेत पर लक्ष्मण ने उसके नाक व कान को काट दिया।

सूर्पणखा रावण की बहिनी। दुष्ट हृदय दारुन जस अहिनी।।

पंचवटी सो गई एक बारा। देखि विकल भइ युगल कुमारा।।

भ्राता पिता पुत्र उरगारी। पुरुष मनोहर निरखत नारी।।

होइ विकल सक मनहिं न रोकी। जिमि रबिमनि द्रव रविहि विलोकी।।

रुचिर रूप धरि प्रभु पहिं जाई। बोली बचन बहुत मुसुकाई।।

तुम सम पुरुष न मो सम नारी। यह संजोग विधि रचेउ विचारी।।

मम अनुरूप पुरुष जग माँही। देखेउ खोजि लोक तिहुँ नाही।।

ताते अब लगि रहँउ कुमारी। मनु माना कछु तुम्हहिं निहारी।।

उपरोक्त प्रसंग में काम वासना से पीड़ित होकर सूर्पणखा अनुचित मार्ग का अवलम्बन करती है। इसलिए सन्त तुलसी की दृष्टि में निन्दनीय है। इस प्रकार हम यह कह सकते हैं कि तुलसी की दृष्टि में महज ऐसी ही नारियाँ जो सन्मार्ग पर आश्रित नहीं है, वहीं त्याज्य व निन्दित हैं।

यदि हम तुलसी के वास्तविक नारी दृष्टि की विवेचना करे तो तुलसी की नारी में समस्त सद्गुण विद्यमान हैं। उन्होंने नारी को जिस सम्मान की दृष्टि से देखा, ऐसा कदाचित ही कहीं दृष्टिगोचर होता है। वाल्मीकि ऋषि से अपने रहने के लिए स्थान पूँछने पर महर्षि ने उन्हें रहने के लिए स्थान बताते हुए कहा–

जननी सम जानहिं पर नारी। धनु पराव विष ते विष भारी।।

तुम्हहिं छाँड़ि गति दूसर नाहीं। राम बसहु तिन्ह के मन माँहीं।।

अर्थात् जो परायी स्त्री को माता के समान तथा पराये धन को विष से भी भारी विष मानते हैं और जिनके लिए आपको छोड़कर किसी दूसरेका आश्रय नहीं है, आप उनके मन में निवास कीजिए।

इस प्रकार तुलसी की दृष्टि में कोई भी नारी माता के समान होती है। इसलिए सन्त तुलसी की नारी दृष्टि वही है जो महर्षि वाल्मीकि की है।

तुलसी नारी के मन्तव्य को आदर देने की दृष्टि रखते हैं। बालि–वध प्रसंग में अपनी पत्नी द्वारा समझाये जाने के बावजूद बालि ने राम से युद्ध किया तथा उनके हाँथों पराजित हुआ। बालि को धिक्कारते हुए श्रीराम कहते हैं–

मूढ़ तोहि अतिसय अभिमाना। नारि सिखावन करेसि न काना।।

इससे स्पष्ट होता है कि बालि ने अपनी पत्नी की बात न मानकर पतन को प्राप्त हुआ। इसलिए तुलसी की दृष्टि में नारी वन्दनीय है। तुलसी की दृष्टि में नारी अस्मिता बहुत महत्वपूर्ण है। श्रृंगार वर्णन में भी तुलसी ने नारी मर्यादा का सर्वथा ध्यान रखा है। भगवान शिव–पार्वती विवाह प्रसंग में तुलसी लिखते हैं–

जगत मातु पितु सम्भु भवानी। तेहि सिंगार न कहउँ बखानी।।

हर गिरिजा विहार नित नयऊ। यहि विधि कछुक काल चलि गयऊ।।

तुलसी ने नारी को परम पवित्रतम प्रख्यापित किया है। राजा दशरथ की रानियों का वर्णन करते हुए तुलसी लिखते हैं–

कौसल्यादि नारि प्रिय, सब आचरन पुनीत।

पति अनुकूल प्रेम दृढ़, हरि पद कमल विनीत।।

स्वयंप्रभा के प्रसंग में एक तपोनिष्ठ नारी का वर्णन प्राप्त होता है जो एक उत्तम उपवन में सरोवर के समीप तपपुंज रूप में विद्यमान है।

दीख जाइ उपवन वर, सर विगसित बहु कंज।

मंदिर एक रुचिर तहँ, बैठ नारि तप पुंज।।

भक्त शिरोमणि शबरी भी भाव विह्वल भक्त के रूप में नवधा भक्ति की अधिकारिणी बनी। पति परित्यक्ता ऋषि पत्नी अहल्या भी भक्ति के प्रभाव से आदरणीया हैं। माता अनुसूइया जानकी जी को पतिव्रत धर्म का उपदेश देने के कारण बन्दनीया हैं।

निष्कर्षतः यह कहा जा सकता है कि तुलसी की लेखनी से वर्णित नारियों के गरिमावान, भव्य एवं दिव्य धार्मिक स्वरूप नारी के प्रति तुलसी की पवित्र दृष्टि के उद्घोषक हैं। पतिव्रत धर्म में निपुण, शील, सदाचार, भक्ति तथा मर्यादा से परिपूर्ण धार्मिक स्वरूप में नारी सदैव आदरणीय है; चाहे वह जैसी भी है। तुलसी की दृष्टि एक विद्वान सन्त की दृष्टि है और सन्त किसी भी तथ्य को निर्लेप तथा निरपेक्ष भाव से ही दृष्टिगत करता है।

सीय राम मय सब जग जानी। करउँ प्रनाम जोरि जुग पानी।।

जो आलोचक तुलसी को नारी विरोधी मानसिकता का मानते हैं, उनके तर्क सर्वथा अनुचित तथा अग्राह्य हैं। तुलसी काव्य धारा में नारी चाहे माता के रूप में हो, पत्नी के रूप में हो अथवा भगिनी के रूप में, सर्वथा वन्दनीय है। तुलसी राम साधक कवि है। किसी नारी के प्रति मर्यादा पुरुषोत्तम श्रीराम की जो दृष्टि है, वही सन्त तुलसी की भी है। इसलिए तुलसी को नारी–विरोधी नहीं कहा जा सकता। तुलसी की दृष्टि में नारी माता के रूप में जगत का पालन करती है, पत्नी के रूप में पति का अवलम्बन बनती है तथा सम्पूर्ण संसार की बीजस्वरूपा शक्ति भी है। तुलसी ने नारी में आदिशक्ति के स्वरूप का दर्शन भी किया है।

आदिशक्ति जेहिं जग उपजाया। सो अवतरिहि मोर यह माया।

तुलसी ने सीता जी को जगज्जननी मानकर उनके चरणों की वन्दना की है।

जनकसुता जग जननि जानकी। अतिशय प्रिय करुना निधान की।

तेहिं के जुग पद कमल मनावौं। जासु कृपा निरमल मति पावौं।।

इस प्रकार इन तर्कों से सहज ही सिद्ध होता है कि तुलसी की दृष्टि में नारी अत्यन्त ही पूजनीया है।

संदर्भ सूची :

1. रामचन्द्र शुक्ल, हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृ0 120
2. तुलसीदास कवितावली
3. रामचन्द्र शुक्ल, गोस्वामी तुलसीदास, पृ0 89
4. तुलसीदास, रामचरितमानस, अरण्यकाण्ड
5. वही
6. तुलसीदास, रामचरितमानस, सुन्दरकाण्ड
7. तुलसीदास, रामचरितमानस, बालकाण्ड
8. वही
9. वही
10. वही
11. तुलसीदास, रामचरितमानस, अयोध्याकाण्ड
12. तुलसीदास, रामचरितमानस, अरण्यकाण्ड
13. तुलसीदास, रामचरितमानस, लंकाकाण्ड
14. तुलसीदास, रामचरितमानस, अयोध्याकाण्ड
15. वही
16. वही
17. तुलसीदास, रामचरितमानस, बालकाण्ड
18. तुलसीदास, रामचरितमानस, अरण्यकाण्ड
19. तुलसीदास, रामचरितमानस, अयोध्याकाण्ड
20. तुलसीदास, रामचरितमानस, किष्किन्धाकाण्ड
21. तुलसीदास, रामचरितमानस, बालकाण्ड
22. वही
23. तुलसीदास, रामचरितमानस, सुन्दरकाण्ड
24. तुलसीदास, रामचरितमानस, बालकाण्ड
25. वही
26. तुलसीदास, रामचरितमानस, बालकाण्ड

ISSN : 2319-7137, Volume: 15/Issue: 01, January-June : 2022

प्रयोगवादी कविता के बिम्ब

रेणु बाला
एसोसिएट प्रोफेसर,
आत्माराम सनातन धर्म कॉलेज,
पता– 109, मनचाहत अपार्टमेंट, प्लॉट– 42, सेक्टर– 10, द्वारका,
नयी दिल्ली–110075

सन् 1943 में 'तारसप्तक' के प्रकाशन के साथ प्रयोगवाद का प्रवर्तन हुआ। परन्तु, 'तारसप्तक' के सभी कवि प्रयोगवादी नहीं है, कुछ कवि ऐसे हैं जिनकी कविताएं प्रगतिशील कविता के गुण लिए हुए हैं; जैसे कि 'रामविलास शर्मा' की कविताएं। भारत भूषण अग्रवाल, नैमिचन्द्र जैन और गिरिजाकुमार माथुर भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी के घोषित सदस्य थे। इसीलिए डॉ. रामविलास शर्मा का कहना है कि "प्रयोगवाद की शुरूआत 'तारसप्तक' से नहीं होती; उसकी शुरूआत होती है सन् 47 में, 'प्रतीक' से।"[1] 'तारसप्तक' के कवियों में अज्ञेय तथा प्रभाकर माचवें की कविताओं में वे प्रवृत्तियाँ मौजूद हैं जिन्हें आगे चलकर प्रयोगवादी प्रवृत्ति कहा गया। 'प्रयोगशीलता' किसी काल–विशेष की काव्यधारा की विशिष्टता नहीं हो सकती। स्वयं अज्ञेय ने 'तारसप्तक' में लिखा है– "प्रयोग सभी कालों के कवियों ने किये हैं : यद्यपि किसी एक काल में किसी विशेष दिशा में प्रयोग करने की प्रवृत्ति होना स्वाभाविक ही है। किन्तु कवि क्रमशः अनुभव करता आया है कि जिन क्षेत्रों में प्रयोग हुए हैं; उनसे आगे बढ़कर अब उन क्षेत्रों का अन्वेषण करना चाहिए जिन्हें अभी नहीं छुआ गया या जिनको अभेद्य मान लिया गया है।"[2] 'प्रयोगवाद' नाम के सम्बंध में डॉ. नामवर का विचार है कि "प्रयोगवाद नाम चलने का कारण 'तारसप्तक' के संपादकीय तथा कुछ अन्य वक्तव्य हैं। इस संज्ञा के बीच वही हैं उनमें 'प्रयोग' और 'प्रयोगशीलता' को साफ शब्दों में अपनी विशेषता कहा गया है। मालूम होता है, पाठकों ने इन कवियों के 'प्रयोग–प्रयोग' के लटके को पकड़ लिया और उनकी कविताओं को 'प्रयोगवाद' नाम दे दिया।"[3]

इन कवियों को आपस में जोड़ने वाला सूत्र 'प्रयोग' है क्योंकि ये सभी कवि "किसी मंजिल पर पहुंचे हुए नहीं है, अभी राही है– राही नहीं, राहों के अन्वेषी"[4]। प्रयोगवाद से यह भ्रम होता है कि मानों इन कवियों ने प्रयोग को ही साध्य मानकर कोई नया वाद चला दिया हो। अपने आप को प्रयोगवादी कहें जाने का विरोध करते हुए 'दूसरा सप्तक' में अज्ञेय ने कहा– "प्रयोग का कोई वाद नहीं है। हम वादी नहीं रहे, नहीं हैं।... हमें 'प्रयोगवादी' कहना उतना ही सार्थक या निरर्थक है जितना हमें 'कवितावादी कहना'"[5]। आगे चलकर 'प्रयोग' की व्याख्या करते हुए "प्रयोग अपने आप में इष्ट नहीं है, वह साधन है, और दोहरा साधन है। क्योंकि एक तो वह उस सत्य को जानने का साधन है जिसे कवि प्रेषित करता है, दूसरे वह उस प्रेषण की क्रिया को और उसके साधनों को जानने का भी साधन है। अर्थात् प्रयोग द्वारा कवि अपने सत्य को अधिक अच्छी तरह जान सकता है और अधिक अच्छी तरह अभिव्यक्त कर जाता है। वस्तु और शिल्प दोनों के क्षेत्र में प्रयोग फलप्रद होता है।"[6]

इस धारा से जो 'प्रयोगशीलता' उभरकर आयी उसे आलोचकों ने एक शैलीगत विशेषता माना है। किन्तु 'प्रयोगशीलता' केवल शैलीगत विशेषता नहीं है, क्योंकि जो रूपगत नवीन विशेषता उभरकर सामने आती है वह अनिवार्यतः नयी संवेदना और नयी वस्तु का परिणाम होती है। यह नयी संवेदना है वैज्ञानिक उपलब्धियों के कारण व्यक्तित्व की तुच्छता और नगण्यता का बोध। वस्तुतः प्रयोगवादी कविता मोहभंग की कविता है। द्वितीय विश्वयुद्ध में भयंकर नरसंहार, देश में बंगाल का अकाल, देश–विभाजन के समय भयंकर रक्तपात और मानव मूल्यों के विघटन के फलस्वरूप इस युग के कवि को व्यापक मोहभंग का सामना करना पड़ा। द्वितीय विश्वयुद्ध ने व्यक्ति को अवमूल्यित कर दिया। इसके फलस्वरूप 'प्रयोगवादी कविता' में अस्तित्व वाद के भी कुछ बीज अनिवार्यतः मौजूद है। अस्तित्ववाद का आधार है–

काल–बोध तथा संशयग्रस्तता– जिससे चुनाव की पीड़ा उत्पन्न होती है। मनुष्य अकेला है वह पूरी तरह से किसी से जुड़ नहीं सकता यह उसकी नियति है। इस काल का कवि दो धरातलों पर अकेला है– देश के स्तर पर और काल के स्तर पर। उसका अहं निराला तथा बच्चन के अहं से अलग है। अज्ञेय के काव्य की केन्द्रीय संवेदना सामाजिकता तथा सामूहिकता के विरुद्ध अपने अहं की निजता है। ये कवि सामूहिकता से एक खण्ड के रूप में अपने को अलग कर लेते हैं–

एक बूंद सहसा
उछली सागर के झाग से :
रंगी गयी क्षण पर
ढलते सूरज की आग से।[7]

प्रयोगवाद में छायावाद की वायवीयता के स्थान पर यथार्थ की प्रतिष्ठा हुई– "भाववस्तु में छायावाद की तरल–अमूर्त अनुभूतियों के स्थान पर एक ओर व्यावहारिक–सामाजिक जीवन की मूर्त अनुभूतियों की मांग हुई– दूसरी ओर सुनिश्चित बौद्धिक धारणाओं का जोर बढ़ा, और शैली–शिल्प में छायावाद की वायवी और अत्यन्त सूक्ष्म कोमल काव्य–सामग्री के स्थान पर विस्तृत जीवन की मूर्त–सघन और नानारूपिणी काव्य–सामग्री को आग्रह के साथ ग्रहण किया गया।"[8] यदि प्रगतिवाद ने सामाजिक सत्य को अभिव्यक्ति दी तो प्रयोगवाद ने व्यक्ति के सत्य को अभिव्यक्त किया। प्रयोगवादी कवि का सत्य ह्रासोन्मुख–मध्यवर्गीय समाज के व्यक्ति का आन्तरिक सत्य है। "कुल मिलाकर प्रयोगवादी कविताएं ह्रासोन्मुख–मध्यवर्गीय जीवन का यथार्थ चित्र है। इनमें मध्यवर्गीय हीनता, दीनता, अनास्था, कटुता, अन्तर्मुखता, पलायन आदि का बड़ा ही मार्मिक चित्रण हुआ है।"[9] ये सभी कवि मध्यवर्ग के थे इसलिए यह सच है कि प्रयोगवादी कवियों ने अपने जीवन में भोगे हुए अनुभूत–यथार्थ के माध्यम से मध्यवर्गीय व्यक्ति के आन्तरिक सत्य को बड़ी कुशलता के साथ बौद्धिकता के स्तर पर उद्घाटित किया। किन्तु साथ ही यह भी सच है कि व्यक्ति–मन का यह यथार्थ बहुत ही सीमित था। यही सीमित यथार्थ प्रयोगवादी बिम्बों की विशेषता है।

"लुढ़की सुराही, तो
हुचक हुचक पानी ढुरा
गर्द भरे खुदे हुए फ़र्श पर।
चुपचाप।"[10]

सुराही के लुढ़कने, पानी के हुचक–हुचक कर गिरने से उत्पन्न विषाद इस कविता में महत्त्वपूर्ण हो गया।

प्रयोगवादी कवि का संबंध साहित्येत्तर समस्याओं सेकम और काव्य की निजी समस्याओं से अधिक था– "वह जिस 'राह का अन्वेषण' कर रहा था, वह शब्दों, लयों, प्रतीकों और बिम्बों के बीच से होकर गयी थी, प्रत्यक्ष जीवन के खुले विस्तार से होकर नहीं।"[11] वह काव्य शिल्प के प्रति अत्यधिक सचेत था इसीलिए प्रयोगवाद में भाषा के उपकरणों बिन्दु, विराम, कोष्ठक और शब्दों में बीच रिक्त स्थान का कलात्मक उपयोग मिलता है। उन्होंने परम्परागत बिम्ब–विधान में परिवर्तन पर बल दिया। तार–सप्तक में प्रभाकर माचवे ने स्पष्ट शब्दों में कहा "नवात्मेष से विस्फूर्जित और उत्सैकित कल्पना की हिन्दी कविता में कमी है।... हमारी कविता में पाये जाने वाले अधिकांश कल्पनाचित्र या बिम्ब (इमेज) बच्चों के से निरे शाब्दिक, सहस्मृत या परम्परागत होते हैं। इन शाब्दिक, साहचर्यात्मक और पारम्परिक बिम्बों की बजाय हमें राग और ज्ञान से पूरित ऐन्द्रिय, आवेगाश्रित और अभिजात बिम्बों की सृष्टि करनी है।"[12]

छायावादी कवि के लिए जहां चांदनी एक स्वप्नलोक की रचना करती थी, वहीं प्रयोगवादी कवि अज्ञेय की चांदनी 'वर्चना' मालूम होती है जो अपने रंगीन आवरण में पृथक की कुरूपता को ढक लेती है। अर्थात् वास्तविक्ता पर भ्रम का परदा डाल देती है।

"वंचना है चांदनी सित

× × ×

इधर–केवल झलमलाते

चेत–हर दुर्धर कुहा से की हलाहल स्निग्धमुट्ठी में

सिहरते–से, पंगु, टुंडे

नग्न, बुच्चे दईमारे पेड़।"[13]

बिम्ब के प्रभाव को तीव्र बनाने के लिए ध्वनि–संकेतों का का प्रयोग–

"गूंजता था सूनसान

ऊजड़ खण्डेहरों में

गिरते थे पत्ते,

वन–पंक्षी नहीं बोलते थे,

नाले की थार किनारे लगी जाती थी।"[14]

मानों ऊबाड़ खण्डहरों के सूनेपन से सहमकर ही नाले की धार किनारे से लगी जाती थी। अपने ध्वनि प्रभाव में यह बिम्ब अद्वितीय है। 'सुनसान' में 'ऊ' की ध्वनि लम्बाई और दूरी व्यक्त करती है, 'आ' की ध्वनि विस्तार। बीच में 'न' की ध्वनि सनसनाहट और गहराई व्यक्त करती है। इस प्रकार 'सुनसान' शब्द का ध्वनि–भाव 'आं ऊ' हो जाता है जो गहरे सुनसान का यथार्थ रूप है।"[15]

यह 'सुनसान' अथवा सन्नाटा गिरिजाकुमार माथुर के बिम्बों में अनेक रूपों में व्यक्त हुआ है। कहीं दूर छाहं–भरे सुनसान पथों में चलने की आहट ओले–सी जमी पड़ी है–

दूर–दूर के छांह–भरेसुनसान पथों में

चलने की आहट ओले–सी जमी पड़ी थी,

मरे पेड़ों का कम्पन भी ठिठुर गया था,

कभी–कभी बस

पतझर का सूखा पत्ता गिर कर उड़ जाता

मरे स्वरों–सा खर–खर करता।"[16]

छायावादी बिम्बों की भावुकता के स्थान पर प्रयोगवादी बिम्बों में बौद्धिकता के आधार को ग्रहण किया गया। किन्तु प्रयोगवादी कवि में यह बौद्धिकता आरोपित नहीं है। "इस बौद्धिकता के परिणामस्वरूप प्रयोगवाद कवि के प्रतीकों और उपमानों में भी छायावादी कैशोर भावुकता का बहिष्कार दिखाई पड़ता है। पूर्ववर्ती समस्त उपमानों को छोड़करवह अपनी प्रिया को बाजरे की कलगी से उपमित करता है।"[17]

"अगर मैं यह कहूं–

बिछली घास हो तुम

लहलहाती हवा में कलगी छरहरे बाजरे की।"[18]

तरुणी के छरहरे व्यक्तित्व और कोमल देहयष्टि के लिए 'कलगी छरहरे बाजरे की' और 'बिछली घास' का बिम्ब अंकित किया गया है।

प्रयोगवादी कविता में कवि की अवदमित काम वृत्ति के बिम्ब भी मिलते हैं। अज्ञेय ने स्पष्ट शब्दों में स्वीकार किया है कि "आज के मानव का मन यौन–परिकल्पनाओं से लदा हुआ है और वे कल्पनाएं सब दमित और कुण्ठित हैं। उसकी सौन्दर्य चेतना भी इससे आक्रान्त हैं।"[19] देखिए...

घिर गया नभ, उमड़ आये मेघ काले,
भूमि के कम्पित उरोजों पर झुका–सा
विशद, श्वासाहत, चिरातुर
छा गया इन्द्र का नील वक्ष–
वज्र–सा, यदि तड़ित से झुलसा हुआ–सा।"[20]

प्राकृतिक और मानवीय बिम्बों के अतिरक्त प्रयोगवादी कविता में कुछ यान्त्रिक बिम्बों का भी अंकन हुआ है–

"सिनेमा की रीलों–सा कस के लिपटा है सभी कुछ मेरे अन्दर
कमानी खुलने को भरती हुमस"[21]

यह बिम्ब मानसिक कसमसाहट को मूर्त कर देता है। इसी प्रकार नैमिचन्द्र जैन ने हृदय के उचटैपन को सायारन के बाद की शून्यता के सहारे चित्रित किया है–

"आज उचटा–सा हृदय;
साइरन बज जाप उसके बाद
निर्जन शून्य सड़कों–सा निभृत, निस्संग, लाली,
व्यर्थता की स्याह–सी बेमाप चादर से
अभी ज्यों ढ़क गया हो शून्य जी का प्रान्त।"[22]

इस प्रकार प्रयोगवाद ने सिनेमा की रीलों, साइरन की अवाज, रैडियम की छाया, योजनान्त टैंक सब मेरीन सिन्धुवाहिनी आदि यन्त्र–बिम्बों के माध्यम से मशीनी सभ्यता के बीच पलते हुए आधुनिक मानव के विक्षोभ को अभिव्यक्ति दी। परन्तु "प्रयोगवाद ने आधुनिक मानव के उस आन्तरिक विक्षोभ को एक सीमित अर्थ में ग्रहण किया। परिणाम यह हुआ कि छायावादोत्तर हिन्दी–कविता का विकास जिस स्वाभाविक दिशा में होना चाहिए था उधर न होकर बौद्धिक व्यवस्थाओं और धारणात्मक प्रतीतों (कन्सेप्च्युल सिम्बल्स) की दिशा में हुआ।" नयी कविता के आगमन पर इस स्थिति में परिवर्तन हुआ।

संदर्भ सूची :

1. नयी कविता और अस्तित्ववादी, पृ. 27
2. वक्तव्य, पृ. 270
3. आधुनिक साहित्य की प्रवृत्तियां, पृ. 129
4. तारसप्तक (भूमिका), पृ. 11
5. भूमिका, पृ. 6
6. वही, पृ. 7
7. सर्जना के क्षण, पृ. 61
8. कविता की मुख्य प्रवृतियां, डॉ. नगेन्द्र, पृ. 117
9. आधुनिक साहित्य की प्रवृतियां, नामवर सिंह, पृ. 169
10. उद्धत, आधुनिक साहित्य की प्रवृतियां, नामवर सिंह, पृ. 162
11. आधुनिक हिन्दी कविता में बिम्ब विधान, केदारनाथ सिंह, पृ. 297

12. वक्तव्य, पृ. 126
13. तारसप्तक, पृ. 280
14. तारसप्तक, गिरिजाकुमार माथुर, 175
15. सारसप्तक, (वक्तव्य), गिरिजाकुमार माथुर, पृ. 169
16. तारसप्तक, गिरिजाकुमार माथुर, पृ. 174
17. आधुनिक साहित्य की प्रवृतियां, नामवर सिंह, पृ. 153
18. सर्जना के क्षण, अज्ञेय, पृ. 56
19. तारसप्तक (वक्तव्य), अज्ञेय, पृ. 272
20. तारसप्तक, अज्ञेय, पृ. 276
21. दूसरा सप्तक, रघुवीर सहाय, प1. 143
22. तारसप्तक, पृ. 61

ISSN : 2319-7137, Volume: 15/Issue: 01, January-June : 2022

प्राथमिक स्तर के शिक्षकों के पारिवारिक वातावरण का उनके शिक्षण दक्षता पर पड़ने वाले प्रभाव का अध्ययन

शोध निर्देशक
डॉ0 प्रवीन कुमार सिंह
असिस्टेन्ट प्रोफेसर
शिक्षक शिक्षा विभाग (बी0एड0)
सल्तनत बहादुर पी0जी0 कालेज,
बदलापुर, जौनपुर (उ0प्र0)

शोधकर्त्ता
विमल कुमार शुक्ल
एम0ए0, एम0एड्0, नेट (शिक्षाशास्त्र)
वीर बहादुर सिंह पूर्वान्चल विश्वविद्यालय,
जौनपुर (उ0प्र0)

सारांश

प्रस्तुत समस्या कथन के अन्तर्गत **प्राथमिक स्तर के शिक्षकों के पारिवारिक वातावरण का उनके शिक्षण दक्षता पर पड़ने वाले प्रभाव का अध्ययन** किया गया है। प्रस्तुत अध्ययन में प्रयोगात्मक शोध के अन्तर्गत वर्णनात्मक अनुसंधान की **कार्योत्तर अनुसंधान विधि** का प्रयोग किया गया है। वर्तमान अध्ययन हेतु अध्ययनकर्त्ता ने जौनपुर जिले के अन्तर्गत सरकारी प्राथमिक विद्यालयों में अध्यापनरत् शिक्षकों को जनसंख्या के रूप में माना गया है। प्रस्तुत अध्ययन के लिए जौनपुर जिले में संचालित सरकारी प्राथमिक विद्यालयों का चयन यादृच्छिक न्यादर्शन विधि द्वारा चयन के पश्चात् तत्पश्चात् 250 शिक्षकों का चयन शहरी एवं ग्रामीण क्षेत्र के आधार पर चयन यादृच्छिक विधि से किया गया है। उपकरण के रूप में पारिवारिक वातावरण अनुसूची हेतु हरप्रीत भाटिया एवं एन.के. चढ्ढा द्वारा द्वारा निर्मित मापनी तथा बी0के0 पासी और एम0एस0 ललिथा निर्मित 'सामान्य शिक्षण दक्षता स्केल' का प्रयोग किया गया है। प्रस्तुत अध्ययन में प्रदत्तों के विश्लेषण के लिए प्रसरण विधि (एफ–अनुपात) एवं टी–अनुपात सांख्यिकीय प्रविधियों का प्रयोग किया गया है। अध्ययन के निष्कर्ष में पाया गया कि– प्राथमिक स्तर के शिक्षकों के पारिवारिक वातावरण एवं उसके अवयव एकजुटता, अभिव्यक्ति, संघर्ष, स्वीकार एवं देखभाल, स्वतंत्रता, सक्रिय मनोरंजन एवं उन्मुखीकरण, संगठित परिवार का उनके शिक्षण दक्षता पर प्रभाव नहीं है।

मुख्य शब्द– प्राथमिक स्तर, शिक्षक, पारिवारिक वातावरण, शिक्षण दक्षता, प्रभाव

प्रस्तावना–

परिवार का व्यक्ति के शैक्षिक, बौद्धिक, व्यवसायिक सामाजिक आदि सभी प्रकार के विकास में महत्वपूर्ण योगदान होता है। परिवार एक या एक से अधिक दम्पत्तियों एवं इनके बच्चों का वह सामाजिक समूह है जिनके मध्य रक्त सम्बन्ध होता है। इन पारिवारिक सदस्यों के मध्य परस्पर उत्तरदायित्वपूर्ण सम्बन्धों को ही 'पारिवारिक सम्बन्ध' कहा जाता है।

अनौपचारिक अभिकरण मे परिवार का स्थान सर्वाधिक महत्वपूर्ण स्थान है जहाँ पर बालक माता–पिता से शिक्षा प्राप्त करता है क्योंकि माता–पिता परिवार की धूरी है उन्ही के इर्द गिर्द सम्पूर्ण परिवार संगठित रहता है प्रेम स्नेह एवं सौहार्द परिवार के आधार है बालक परिवार मे जन्म लेता है वही पर वह उठना बैठना खाना पीना दौडना चलना सभी कुछ सीखता है भाई बहनो से बाते करना माता पिता अतिथि आदि का आदर करना वह सभी गुण परिवार से सीखता है परिवार मे उसे लेक्चर नही दिया जाता। वहा पर सिद्वान्तों का साक्षात दर्शन होता है अतः बालक के मानसिक पटल पर सीखी गई बाते स्थायी होती है महामना पण्डित मदन मोहन मालवीय जी कहते है कि मैने बचपन से ही जो कुछ सीखा था वही मेरी शिक्षा है महात्मा गांधी ने अपनी माता से धार्मिक आचरण की सही शिक्षा प्राप्त की थी जगदीश चन्द्र बसु को अपने महान वैज्ञानिक अन्वेक्षण की सूझ बचपन मे अपनी माता की उक्ति से मिली थी जीजाबाई ने ही शिवाजी मे वीरता की भावना भर दी थी । इसलिए सभी महापुरूषो ने माता पिता का ऋण स्वीकार किया माता को भारतीय साहित्य मे आदि गुरू कहा गया है। पेस्टालाजी फ्रोबेल तथा मान्टेसरी ने घर को शिक्षा का सर्वोत्तम स्थल माना है। पेस्टालाजी के अनुसार घर बच्चे की पहली पाठशाला है फ्रोबेल के मतानुसार माताएँ और अध्यापिकाएँ है। मान्टेसरी ने विद्यालय को बचपन का घर कह कर पुकारा है। बालक का स्कूल माता की गोद से प्रारम्भ हो जाता है और परिवार मे ही रहकर शिक्षा ग्रहण करता है। जन्म लेने के बाद बालक का सर्व प्रथम अपने माता–पिता से सम्पर्क होता है।

शिक्षकों की पारिवारिक वातावरण विद्यार्थियों एवं विद्यालय वातावरण के साथ–साथ कई कारकों को प्रभावित करता है। यदि शिक्षकों का पारिवारिक वातावरण उच्च कोटि का है एवं पारिवारिक सामंजस्य अच्छा है तो शिक्षकों को शिक्षण कार्य में कोई कठिनाई नहीं आती है तथा उन्हें बच्चों को किसी भी पाठ्यक्रम को पढ़ाने या बताने में अच्छी विधि का प्रयोग कर उन्हें उस विषयवस्तु से अवगत कराता है वहीं यदि शिक्षकों के पारिवारिक वातावरण या पारिवारिक सामंजस्य उच्च कोटि का नहीं है तो उनमें मानसिक तनाव होना स्वाभाविक है एवं मानसिक स्वास्थ्य अच्छा न होने के

कारण वह शिक्षण कार्य में मन लगाकर नहीं पढ़ा सकता है विषयवस्तु या पाठ्यक्रम को अच्छी विधि से नहीं पढ़ा सकता है जिसका प्रभाव विद्यार्थियों एवं विद्यालय पर पड़ना स्वाभाविक है।

सामान्य अर्थों में 'दक्षता' को इस प्रकार परिभाषित किया जा सकता है। 'उद्देश्य के लिये समुचित, उपयुक्त, पर्याप्त अथवा नियमतः अर्ह एवं स्वीकार्य अथवा समर्थ। निष्कर्ष के रूप में हम कह सकते है कि दक्षता किसी व्यवसाय के बारें में पर्याप्त तैयारी तथा आवश्यकताओं के प्रमाणन से सीधे सम्बन्धित होती है।

दक्षता आधारित अध्यापक शिक्षा शिक्षक में दक्षता की एक निम्नतम सीमा का निर्धारण करती है। शिक्षक में मूल्यों का विकास करती है तथा शिक्षण को प्रभावशाली बनाने की प्रक्रिया का निर्माण करती है। यह अध्यापक को अधिगमकर्ता की उपलब्धि के प्रति जवाबदेह बनाती है और अध्यापक की क्रियाओं और शिक्षण व्यूह को एक विस्तृत आधार प्रदान करती है।

अध्यापक के लिये शिक्षा, अध्यापन तथा अधिगम की संकल्पनाओं तथा उन पर पड़ने वाले विविध सामाजिक, आर्थिक, सांस्कृतिक कारकों का ज्ञान आवश्यक है। शारीरिक, मानसिक और सांस्कृतिक विकास के लिये अधिगमकर्ताओं की आवश्यकता और उनके विकासात्मक वैशिष्ट्य जानने के बाद ही प्रभावकारी शिक्षण सम्भव है। अध्यापक को पाठ्यक्रमगत संकल्पनाओं के साथ–साथ शिक्षण विधि गत संकल्पनाओं से परिचित होना चाहिये। कक्षा समाजमिति के बारें में जानकारी पाठ्यसहगामी क्रियाकलाप के संचालन में जरूरी है। विशिष्ट आवश्यकता वाले छात्रों के बारें में संकल्पनात्मक ज्ञान के द्वारा उनकी पहचान की जा सकती है। संकल्पना ही वह आधार है जिस पर अधिगम को स्थापित तथा विकसित करने के लिये सार्थक प्रयास कर पाना सम्भव हो पाता है।

समस्या कथन–

प्राथमिक स्तर के शिक्षकों के पारिवारिक वातावरण का उनके शिक्षण दक्षता पर पड़ने वाले प्रभाव का अध्ययन।

अध्ययन का उद्देश्य–

प्रस्तुत अध्ययन में निम्नलिखित उद्देश्यों का अध्ययन किया गया है–

- प्राथमिक स्तर के शिक्षकों के पारिवारिक वातावरण का उनके शिक्षण दक्षता पर पड़ने वाले प्रभाव का अध्ययन करना।
- प्राथमिक स्तर के शिक्षकों के पारिवारिक वातावरण की विमा परिवार में एकजुटता का उनके शिक्षण दक्षता पर पड़ने वाले प्रभाव का अध्ययन करना।
- प्राथमिक स्तर के शिक्षकों के पारिवारिक वातावरण की विमा अभिव्यक्ति का उनके शिक्षण दक्षता पर पड़ने वाले प्रभाव का अध्ययन करना।
- प्राथमिक स्तर के शिक्षकों के पारिवारिक वातावरण की विमा परिवार में संघर्ष का उनके शिक्षण दक्षता पर पड़ने वाले प्रभाव का अध्ययन करना।
- प्राथमिक स्तर के शिक्षकों के पारिवारिक वातावरण की विमा परिवार में स्वीकार एवं देखभाल का उनके शिक्षण दक्षता पर पड़ने वाले प्रभाव का अध्ययन करना।
- प्राथमिक स्तर के शिक्षकों के पारिवारिक वातावरण की विमा परिवार में स्वतंत्रता का उनके शिक्षण दक्षता पर पड़ने वाले प्रभाव का अध्ययन करना।
- प्राथमिक स्तर के शिक्षकों के पारिवारिक वातावरण की विमा परिवार में सक्रिय मनोरंजन एवं उन्मुखीकरण का उनके शिक्षण दक्षता पर पड़ने वाले प्रभाव का अध्ययन करना।
- प्राथमिक स्तर के शिक्षकों के पारिवारिक वातावरण की विमा संगठित परिवार का उनके शिक्षण दक्षता पर पड़ने वाले प्रभाव का अध्ययन करना।
- प्राथमिक स्तर के शिक्षकों के पारिवारिक वातावरण की विमा परिवार में नियंत्रण का उनके शिक्षण दक्षता पर पड़ने वाले प्रभाव का अध्ययन करना।

अध्ययन परिकल्पनाएँ–

प्रस्तुत अध्ययन में उद्देश्यों के आधार पर निम्नलिखित शून्य परिकल्पनाओं का परीक्षण किया जायेगा–

- श्रेष्ठ, सामान्य एवं न्यून परिवार में एकजुटता वाले शिक्षकों की शिक्षण दक्षता में कोई सार्थक अन्तर नहीं है।
- श्रेष्ठ, सामान्य एवं न्यून परिवार में अभिव्यक्ति वाले शिक्षकों की शिक्षण दक्षता में कोई सार्थक अन्तर नहीं है।
- श्रेष्ठ, सामान्य एवं न्यून परिवार में संघर्ष वाले शिक्षकों की शिक्षण दक्षता में कोई सार्थक अन्तर नहीं है।
- श्रेष्ठ, सामान्य एवं न्यून परिवार में स्वीकार एवं देखभाल वाले शिक्षकों की शिक्षण दक्षता में कोई सार्थक अन्तर नहीं है।
- श्रेष्ठ, सामान्य एवं न्यून परिवार में स्वतंत्रता वाले शिक्षकों की शिक्षण दक्षता में कोई सार्थक अन्तर नहीं है।

- श्रेष्ठ, सामान्य एवं न्यून परिवार में सक्रिय मनोरंजन एवं उन्मुखीकरण वाले शिक्षकों की शिक्षण दक्षता में कोई सार्थक अन्तर नहीं है।
- श्रेष्ठ, सामान्य एवं न्यून संगठित परिवार वाले शिक्षकों की शिक्षण दक्षता में कोई सार्थक अन्तर नहीं है।
- श्रेष्ठ, सामान्य एवं न्यून पारिवारिक नियंत्रित वाले शिक्षकों की शिक्षण दक्षता में कोई सार्थक अन्तर नहीं है।

अध्ययन की विधि–

प्रस्तुत अध्ययन में प्रयोगात्मक शोध के अन्तर्गत वर्णनात्मक अनुसंधान की **कार्योत्तर अनुसंधान विधि** का प्रयोग किया गया है।

जनसंख्या–

वर्तमान शोध हेतु शोधकर्ता ने जौनपुर जिले के अन्तर्गत सरकारी प्राथमिक विद्यालयों में अध्यापनरत् शिक्षकों को जनसंख्या के रूप में माना गया है।

न्यादर्श–

प्रस्तुत शोध के लिए जौनपुर जिले में संचालित सरकारी प्राथमिक विद्यालयों का चयन यादृच्छिक न्यादर्शन विधि द्वारा चयन के पश्चात् तत्पश्चात् 250 शिक्षकों का चयन शहरी एवं ग्रामीण क्षेत्र के आधार पर चयन यादृच्छिक विधि से किया गया है।

प्रयुक्त उपकरण

पारिवारिक वातावरण मापनी

इस मापनी का निर्माण हरप्रीत भाटिया एवं एन.के. चढ्ढा द्वारा द्वारा किया गया है तथा प्रकाशन स्थल आगरा मनोवैज्ञानिक अनुसंधान प्रकोष्ठ, आगरा है।

पारिवारिक वातावरण मापनी में कुल 69 कथन दिये गये है जिसे आठ भागों में बाँटा गया है–

1. एकजुटता
2. अभिव्यक्ति
3. संघर्ष
4. स्वीकार एवं देखभाल
5. स्वतंत्रता
6. सक्रिय मनोरंजन एवं उन्मुखीकरण
7. संगठित
8. नियंत्रण

शिक्षण दक्षता–

बी0के0 पासी और एम0एस0 ललिथा निर्मित 'सामान्य शिक्षण दक्षता स्केल' (GTCS) परीक्षण एक शाब्दिक परीक्षण है। इनके द्वारा शिक्षक एवं शिक्षिकाओं की शिक्षण दक्षता का मापन किया गया है।

सांख्यिकीय प्रविधियाँ :

प्रस्तुत अध्ययन में प्रदत्तों के विश्लेषण के लिए प्रसरण विधि (एफ–अनुपात) एवं टी–अनुपात सांख्यिकीय प्रविधियों का प्रयोग किया गया है।

आँकड़ों का विश्लेषण एवं व्याख्या–

1. प्राथमिक स्तर के शिक्षकों के पारिवारिक वातावरण का उनके शिक्षण दक्षता पर पड़ने वाले प्रभाव का अध्ययन–

अध्ययन में शिक्षकों के पारिवारिक वातावरण को श्रेष्ठ (Q_3), सामान्य (Q_2) एवं न्यून (Q_1) तीन भागों में बाँट कर शिक्षण दक्षता पर प्रभाव का अध्ययन किया गया है।

परिवार में एकजुटता

Sr.No.	Quartiles	Level of Family Environment		No. of Male Teacher	%age
1-	Q_3	45 and above	Good	67	26.80%
2-	Q_2	38-44	Average	103	41.20%
3-	Q_1	37 and below	Low	80	32.00%

परिवार में एकजुटता वाले शिक्षक (41.20%) औसत दर्जे के अधिक पाये गये।

सारणी सं0 1

श्रेष्ठ, सामान्य एवं न्यून परिवार में एकजुटता वाले शिक्षकों की शिक्षण दक्षता में अन्तर का एफ–मान

Source	df	SS	MS	F	Table Value
Between Groups	2	32.19	16.10	0.05	.01(2,247)=4.71
Within Groups	247	88265.84	357.35		
Total	249	88298.04	373.45		

0.01 पर असार्थक

श्रेष्ठ, सामान्य एवं न्यून परिवार में एकजुटता वाले शिक्षकों की शिक्षण दक्षता में अन्तर का एफ–मान 0.05 है जो 0.01 (df=2,247) स्तर पर एफ–अनुपात के क्रान्तिक मान 4.71 से कम, अर्थात् शून्य परिकल्पना स्वीकृत की जाती है। अतः श्रेष्ठ, सामान्य एवं न्यून परिवार में एकजुटता वाले शिक्षकों की शिक्षण दक्षता में अन्तर नहीं है। परिणामतः प्राथमिक स्तर के शिक्षकों के पारिवारिक वातावरण की विमा परिवार में एकजुटता का उनके शिक्षण दक्षता प्रभाव नहीं है।

परिवार में अभिव्यक्ति

Sr.No.	Quartiles	Level of Family Environment		No. of Male Teacher	%age
1-	Q_3	31 and above	Good	70	28.00%
2-	Q_2	26-30	Average	114	45.60%
3-	Q_1	25 and below	Low	66	26.40%

परिवार में अभिव्यक्ति वाले शिक्षक (45.60%) औसत दर्जे के अधिक पाये गये।

सारणी सं0 2

श्रेष्ठ, सामान्य एवं न्यून परिवार में अभिव्यक्ति वाले शिक्षकों की शिक्षण दक्षता में अन्तर का एफ–मान

Source	df	SS	MS	F	Table Value
Between Groups	2	51.07	25.53	0.07	.01(2,247)=4.71
Within Groups	247	88081.60	356.61		
Total	249	88132.66	382.14		

0.01 पर असार्थक

श्रेष्ठ, सामान्य एवं न्यून परिवार में अभिव्यक्ति वाले शिक्षकों की शिक्षण दक्षता में अन्तर का एफ–मान 0.07 है जो 0.01 (df=2,247) स्तर पर एफ–अनुपात के क्रान्तिक मान 4.71 से कम, अर्थात् शून्य परिकल्पना स्वीकृत की जाती है। अतः श्रेष्ठ, सामान्य एवं न्यून परिवार में अभिव्यक्ति वाले शिक्षकों की शिक्षण दक्षता में अन्तर नहीं है। परिणामतः प्राथमिक स्तर के शिक्षकों के पारिवारिक वातावरण की विमा परिवार में अभिव्यक्ति का उनके शिक्षण दक्षता प्रभाव नहीं है।

परिवार में संघर्ष

Sr.No.	Quartiles	Level of Family Environment		No. of Male Teacher	%age
1-	Q_3	42 and above	Good	67	26.80%
2-	Q_2	34-41	Average	114	45.60%
3-	Q_1	33 and below	Low	69	27.60%

परिवार में संघर्ष वाले शिक्षक (45.60%) औसत दर्जे के अधिक पाये गये।

सारणी सं0 3

श्रेष्ठ, सामान्य एवं न्यून परिवार में संघर्ष वाले शिक्षकों की शिक्षण दक्षता में अन्तर का एफ–मान

Source	df	SS	MS	F	Table Value
Between Groups	2	490.66	245.33	0.69	.01(2,247)=4.71
Within Groups	247	87807.38	355.50		
Total	249	88298.04	600.82		

0.01 पर असार्थक

श्रेष्ठ, सामान्य एवं न्यून परिवार में संघर्ष वाले शिक्षकों की शिक्षण दक्षता में अन्तर का एफ–मान 0.69 है जो 0. 01 (df=2,247) स्तर पर एफ–अनुपात के क्रान्तिक मान 4.71 से कम, अर्थात् शून्य परिकल्पना स्वीकृत की जाती है। अतः श्रेष्ठ, सामान्य एवं न्यून परिवार में संघर्ष वाले शिक्षकों की शिक्षण दक्षता में अन्तर नहीं है। परिणामतः प्राथमिक स्तर के शिक्षकों के पारिवारिक वातावरण की विमा परिवार में संघर्ष का उनके शिक्षण दक्षता प्रभाव नहीं है।

परिवार में स्वीकार एवं देखभाल

Sr.No.	Quartiles	Level of Family Environment		No. of Male Teacher	%age
1-	Q_3	42 and above	Good	63	25.20%
2-	Q_2	34-41	Average	123	49.20%
3-	Q_1	33 and below	Low	64	25.60%

परिवार में स्वीकार एवं देखभाल वाले शिक्षक (49.20%) औसत दर्जे के अधिक पाये गये।

सारणी सं0 4

श्रेष्ठ, सामान्य एवं न्यून परिवार में स्वीकार एवं देखभाल वाले शिक्षकों की शिक्षण दक्षता में अन्तर का एफ–मान

Source	df	SS	MS	F	Table Value
Between Groups	2	448.57	224.28	0.17	.01(2,247)=4.71
Within Groups	247	329680.53	1334.74		
Total	249	329231.96	1110.46		

0.01 पर असार्थक

श्रेष्ठ, सामान्य एवं न्यून परिवार में स्वीकार एवं देखभाल वाले शिक्षकों की शिक्षण दक्षता में अन्तर का एफ–मान 0.17 है जो 0.01 (df=2,247) स्तर पर एफ–अनुपात के क्रान्तिक मान 4.71 से कम, अर्थात् शून्य परिकल्पना स्वीकृत की जाती है। अतः श्रेष्ठ, सामान्य एवं न्यून परिवार में स्वीकार एवं देखभाल वाले शिक्षकों की शिक्षण दक्षता में अन्तर नहीं है। परिणामतः प्राथमिक स्तर के शिक्षकों के पारिवारिक वातावरण की विमा परिवार में स्वीकार एवं देखभाल का उनके शिक्षण दक्षता प्रभाव नहीं है।

परिवार में स्वतंत्रता

Sr.No.	Quartiles	Level of Family Environment		No. of Male Teacher	%age
1-	Q_3	32 and above	Good	70	28.00%
2-	Q_2	26-31	Average	111	44.40%
3-	Q_1	25 and below	Low	69	27.60%

परिवार में स्वतंत्रता वाले शिक्षक (44.40%) औसत दर्जे के अधिक पाये गये।

सारणी सं0 5

श्रेष्ठ, सामान्य एवं न्यून परिवार में स्वतंत्रता वाले शिक्षकों की शिक्षण दक्षता में अन्तर का एफ–मान

Source	df	SS	MS	F	Table Value
Between Groups	2	1356.82	678.41	1.93	.01(2,247)=4.71
Within Groups	247	86941.22	351.99		
Total	249	88298.04	1030.40		

0.01 पर असार्थक

श्रेष्ठ, सामान्य एवं न्यून परिवार में स्वतंत्रता वाले शिक्षकों की शिक्षण दक्षता में अन्तर का एफ–मान 1.93 है जो 0.01 (df=2,247) स्तर पर एफ–अनुपात के क्रान्तिक मान 4.71 से कम, अर्थात् शून्य परिकल्पना स्वीकृत की जाती है। अतः श्रेष्ठ, सामान्य एवं न्यून परिवार में स्वतंत्रता वाले शिक्षकों की शिक्षण दक्षता में अन्तर नहीं है। परिणामतः प्राथमिक स्तर के शिक्षकों के पारिवारिक वातावरण की विमा परिवार में स्वतंत्रता का उनके शिक्षण दक्षता प्रभाव नहीं है।

परिवार में सक्रिय मनोरंजन एवं उन्मुखीकरण

Sr.No.	Quartiles	Level of Family Environment		No. of Male Teacher	%age
1-	Q_3	28 and above	Good	73	29.20%
2-	Q_2	22-27	Average	108	43.20%
3-	Q_1	21 and below	Low	69	27.60%

परिवार में सक्रिय मनोरंजन एवं उन्मुखीकरण वाले शिक्षक (43.20%) औसत दर्जे के अधिक पाये गये।

सारणी सं0 6

श्रेष्ठ, सामान्य एवं न्यून परिवार में सक्रिय मनोरंजन एवं उन्मुखीकरण वाले शिक्षकों की शिक्षण दक्षता में अन्तर का एफ–मान

Source	df	SS	MS	F	Table Value
Between Groups	2	638.55	319.27	0.90	.01(2,247)=4.71
Within Groups	247	87659.49	354.90		
Total	249	88298.04	674.17		

0.01 पर असार्थक

श्रेष्ठ, सामान्य एवं न्यून परिवार में सक्रिय मनोरंजन एवं उन्मुखीकरण वाले शिक्षकों की शिक्षण दक्षता में अन्तर का एफ–मान 0.90 है जो 0.01 (df=2,247) स्तर पर एफ–अनुपात के क्रान्तिक मान 4.71 से कम, अर्थात् शून्य परिकल्पना स्वीकृत की जाती है। अतः श्रेष्ठ, सामान्य एवं न्यून परिवार में सक्रिय मनोरंजन एवं उन्मुखीकरण वाले शिक्षकों की शिक्षण दक्षता में अन्तर नहीं है। परिणामतः प्राथमिक स्तर के शिक्षकों के पारिवारिक वातावरण की विमा परिवार में सक्रिय मनोरंजन एवं उन्मुखीकरण का उनके शिक्षण दक्षता प्रभाव नहीं है।

संगठित परिवार

Sr.No.	Quartiles	Level of Family Environment		No. of Male Teacher	%age
1-	Q_3	7 and above	Good	96	38.40%
2-	Q_2	5-6	Average	79	31.60%
3-	Q_1	4 and below	Low	75	30.00%

संगठित परिवार वाले शिक्षक (38.40%) उच्च दर्जे के अधिक पाये गये।

सारणी सं0 7

श्रेष्ठ, सामान्य एवं न्यून संगठित परिवार वाले शिक्षकों की शिक्षण दक्षता में अन्तर का एफ–मान

Source	df	SS	MS	F	Table Value
Between Groups	2	661.30	330.65	0.93	.01(2,247)=4.71
Within Groups	247	87636.74	354.80		
Total	249	88298.04	685.45		

0.01 पर असार्थक

श्रेष्ठ, सामान्य एवं न्यून संगठित परिवार वाले शिक्षकों की शिक्षण दक्षता में अन्तर का एफ–मान 0.93 है जो 0. 01 (df=2,247) स्तर पर एफ–अनुपात के क्रान्तिक मान 4.71 से कम, अर्थात् शून्य परिकल्पना स्वीकृत की जाती है। अतः श्रेष्ठ, सामान्य एवं न्यून संगठित परिवार वाले शिक्षकों की शिक्षण दक्षता में अन्तर नहीं है। परिणामतः प्राथमिक स्तर के शिक्षकों के पारिवारिक वातावरण की विमा संगठित परिवार का उनके शिक्षण दक्षता प्रभाव नहीं है।

नियंत्रित परिवार

Sr.No.	Quartiles	Level of Family Environment		No. of Male Teacher	%age
1-	Q_3	15 and above	Good	67	38.40%
2-	Q_2	11-14	Average	102	31.60%
3-	Q_1	10 and below	Low	81	30.00%

नियंत्रित परिवार वाले शिक्षक (38.40%) उच्च दर्जे के अधिक पाये गये।

सारणी सं0 8

श्रेष्ठ, सामान्य एवं न्यून नियंत्रित परिवार वाले शिक्षकों की शिक्षण दक्षता में अन्तर का एफ–मान

Source	df	SS	MS	F	Table Value
Between Groups	2	362.07	181.04	0.51	.01(2,247)=4.71
Within Groups	247	87935.96	356.02		
Total	249	88298.04	537.05		

0.01 पर असार्थक

श्रेष्ठ, सामान्य एवं न्यून नियंत्रित परिवार वाले शिक्षकों की शिक्षण दक्षता में अन्तर का एफ–मान 0.51 है जो 0.01 (df=2,247) स्तर पर एफ–अनुपात के क्रान्तिक मान 4.71 से कम, अर्थात् शून्य परिकल्पना स्वीकृत की जाती है। अतः श्रेष्ठ, सामान्य एवं न्यून नियंत्रित परिवार वाले शिक्षकों की शिक्षण दक्षता में अन्तर नहीं है। परिणामतः प्राथमिक स्तर के शिक्षकों के पारिवारिक वातावरण की विमा नियंत्रित परिवार का उनके शिक्षण दक्षता प्रभाव नहीं है।

पारिवारिक वातावरण

Sr.No.	Quartiles	Level of Family Environment		No. of Male Teacher	%age
1-	Q_3	230 and above	Good	65	26.00%
2-	Q_2	200-229	Average	121	48.40%
3-	Q_1	199 and below	Low	64	25.60%

औसत पारिवारिक वातावरण वाले शिक्षक (48.40%) अधिक पाये गये।

सारणी सं0 9

श्रेष्ठ, सामान्य एवं न्यून पारिवारिक वातावरण वाले शिक्षकों की शिक्षण दक्षता में अन्तर का एफ–मान

Source	df	SS	MS	F	Table Value
Between Groups	2	62.23	31.11	0.09	.01(2,247)=4.71
Within Groups	247	88235.81	357.23		
Total	249	88298.04	388.34		

0.01 पर असार्थक

श्रेष्ठ, सामान्य एवं न्यून पारिवारिक वातावरण वाले शिक्षकों की शिक्षण दक्षता में अन्तर का एफ–मान 0.09 है जो 0.01 (df=2,247) स्तर पर एफ–अनुपात के क्रान्तिक मान 4.71 से कम, अर्थात् शून्य परिकल्पना स्वीकृत की जाती है। अतः श्रेष्ठ, सामान्य एवं न्यून पारिवारिक वातावरण वाले शिक्षकों की शिक्षण दक्षता में अन्तर नहीं है। परिणामतः प्राथमिक स्तर के शिक्षकों के पारिवारिक वातावरण का उनके शिक्षण दक्षता प्रभाव नहीं है।

निष्कर्ष–

अध्ययन में निम्नलिखित निष्कर्ष प्राप्त हुये–

- परिवार में एकजुटता वाले शिक्षक (41.20%) औसत दर्जे के अधिक हैं।
- परिवार में अभिव्यक्ति वाले शिक्षक (45.60%) औसत दर्जे के अधिक हैं।
- परिवार में संघर्ष वाले शिक्षक (45.60%) औसत दर्जे के अधिक हैं।
- परिवार में स्वीकार एवं देखभाल वाले शिक्षक (49.20%) औसत दर्जे के अधिक हैं।
- परिवार में स्वतंत्रता वाले शिक्षक (44.40%) औसत दर्जे के अधिक हैं।

- परिवार में सक्रिय मनोरंजन एवं उन्मुखीकरण वाले शिक्षक (43.20%) औसत दर्जे के अधिक हैं।
- संगठित परिवार वाले शिक्षक (38.40%) उच्च दर्जे के अधिक हैं।
- औसत पारिवारिक वातावरण वाले शिक्षक (48.40%) अधिक हैं।

प्राथमिक स्तर के शिक्षकों के पारिवारिक वातावरण एवं उसके अवयव एकजुटता, अभिव्यक्ति, संघर्ष, स्वीकार एवं देखभाल, स्वतंत्रता, सक्रिय मनोरंजन एवं उन्मुखीकरण, संगठित परिवार का उनके शिक्षण दक्षता पर प्रभाव नहीं है।

प्राथमिक स्तर के शिक्षकों के पारिवारिक वातावरण एवं उसके अवयव एकजुटता, अभिव्यक्ति, संघर्ष, स्वीकार एवं देखभाल, स्वतंत्रता, सक्रिय मनोरंजन एवं उन्मुखीकरण, संगठित परिवार का उनके शिक्षण दक्षता पर प्रभाव नहीं है। शोधकर्ता के परिणाम के समान परिणाम **होनागुडी, शिल्पा और शिंदे, विष्णु एम. (2019)** ने पाया कि– माध्यमिक विद्यालय के शिक्षकों की वैवाहिक स्थिति के संबंध में शिक्षण दक्षता में कोई महत्वपूर्ण अंतर नहीं है। **कुमार, ए.सी. लाल और मुथमिजसेलवन, एम (2017)** ने पाया कि परिवार के वातावरण के प्रति प्राथमिक विद्यालय के शिक्षकों के लिंग, संस्था के स्थान, प्रबंधन के तरीके, निवास स्थान, शिक्षण धारा, शिक्षण अनुभव, वैवाहिक स्थिति और परिवार के प्रकार में कोई महत्वपूर्ण अंतर नहीं है।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

- ठोंबरे, सुनिता (2015). शिक्षकों की कक्षा शिक्षण दक्षता का अध्ययन, राष्ट्रीय संगोष्ठी, शिक्षा, व्यवसाय, *प्रबन्ध एवं भारतीय जीवन मूल्य–एक चिंतन, उदगम विज्ञाति*, वॉ0 2, पृ0 81–87
- बाजवा (2003). दक्षता आधारित शिक्षण प्रशिक्षण व्यूह रचना की प्रभावशीलता का अध्ययन, पी–एच0डी0, शिक्षा दिल्लीः दिल्ली विश्वविद्यालय।
- मौर्य, एच.सी. (1990). विश्वविद्यालय और पूर्व विश्वविद्यालयीन व्याख्याताओं की शैक्षिक दक्षता, व्यक्ति और अभिवृत्ति के बीच सम्बन्ध के अध्ययन का प्रयास, पी.एच.डी. शोध, आगरा विश्वविद्यालय।
- मौर्य, प्रदीप कुमार (2008). माध्यमिक स्तर के शिक्षक व शिक्षिकाओं के संवेगात्मक बुद्धि का उनकी शिक्षण दक्षता पर प्रभाव का अध्ययन, लघु शोध प्रबन्ध, छत्रपति शाहूजी महाराज विश्वविद्यालय, कानपुर।
- मालती (2017). अभ्यास शिक्षण में गुणवत्ता : एक समीक्षा, *इण्टरनेशनल जर्नल ऑफ साइंटिफिक एण्ड इनोवेटिव रिसर्च स्टडीज*, वॉ0 5, नं0 4 पृ0 43–48
- शर्मा (2004). जवाहर नवोदय विद्यालय एवं राजकीय विद्यालय के वातावरण का अध्यापक के शिक्षण दक्षता पर प्रभाव का अध्ययन, *सेकेण्ड सर्वे आफ रिसर्च इन एजूकेशन सोसाइटी फार एजूकेशन रिसर्च एण्ड डेवलपमेन्ट*, बड़ौदा।
- शिंदे, लक्ष्मण (2014). शिक्षक प्रशिक्षणार्थियों की शिक्षण दक्षता पर आत्मसंकल्पना, संकाय एवं इनकी अंतःक्रिया के प्रभाव का अध्ययन, *शब्द–ब्रह्म भारतीय भाषाओं की अंतर्राष्ट्रीय मासिक शोध पत्रिका*, वॉ0 3, इश्शु–2, पृ0 5–15
- Honagudi, Shilpa & Shinde, Vishnu. M. (2019). A Study on Teaching Competencies of Secondary School Teachers in Related to Professional Development, *International Journal of Research in Social Sciences*, Vol. 9 Issue 8, PP. 97-104
- Kumar, AC Lal and Muthamizhselvan, M. (2017). Family environment of primary school teachers, *International Journal of Academic Research and Development*, Vol. 2; Issue 5; pp. 57-60

ISSN : 2319-7137, Volume: 15/Issue: 01, January-June : 2022

आचार्य चतुरसेन शास्त्री के उपन्यासों की सामाजिक–यथार्थवादी पराकाष्ठा

डॉ0 विकास कुमार
असिस्टेंट प्रोफेसर, हिन्दी विभाग,
श्री वार्ष्णेय महाविद्यालय, अलीगढ़, उत्तर प्रदेश
सम्पादक– International Literary Quest एवं World Translation

साहित्य, समाज की विभिन्न धाराओं, विभिन्न दिशाओं तथा गतिविधियों का सत्य रूप है, इसी रूप का सत्य मूल्यांकन करना साहित्यकार का प्रमुख दायित्व रहता है। तत्कालीन परिस्थिति, साहित्यिक, सामाजिक, आर्थिक और धार्मिक मान्यताएँ आदि लेखक की वैयक्तिक अभिरूचि तथा उसके ज्ञान, चेतना और अनुभूति आदि के अनुसार ही साहित्य में अभिव्यक्त होती है। समाज की वास्तविक रूप की समस्याओं का विश्लेषण और उसकी आशाओं और अभिलाषाओं का संघर्ष साहित्यकार, साहित्य के माध्यम से समाज तक पहुँचाता है।

समाज की वास्तविक स्थिति को जानने के लिए साहित्य से बढ़कर और कोई माध्यम नहीं है। वास्तव में यह सबसे अधिक जनतंत्रीय साहित्यिक विधा है। जनतन्त्रीय इस अर्थ में कि वह जनता के हर वर्ग के बाह्य रूपों तथा आन्तरिक भावों को, उसकी विकासोन्मुख गतिविधि को, व्यक्ति और वर्ग की प्रत्येक विचारधारा को बिना किसी संवरण की प्रतिपादित करने की क्षमता रखता है। किसी वैयक्तिक अथवा सामाजिक समस्या के आधार पर लिखित लघु उपन्यास से लेकर हजारों पृष्ठों में मावन–जीवन का छोटा–बड़ा अंश प्रतिबिम्बित होता है।

आचार्य चतुरसेन शास्त्री मुख्य रूप से ऐतिहासिक उपन्यासकार के रूप में प्रसिद्ध है। जिनकी चर्चा हम पिछले अध्याय में कर चुके है। ''शास्त्री जी की दृष्टि में इतिहास क विषेष महत्व नहीं था। इतिहास को उन्होंने ढांचा मात्र मानकर उसमें प्रतिभा के द्वारा स्थिति, परिवेश तथा घटनाक्रम को प्रस्तुत किया है। घटनाओं के प्रस्तुतीकरण की उनकी अपनी कलात्मक शैली है। उन्होंने वृन्दावनलाल वर्मा और हजारी प्रसाद द्विवेदी के ऐतिहासिक उपन्यासों की वर्णन शैली को नहीं अपनाया वरन् अपनी स्वतंत्र शैली से इतिहास रस को अपनी रचनाओं में स्थान देने का प्रयास किया है। इस प्रयास से कहीं–कहीं उनके उपन्यास रोचकतापूर्ण हो गये हैं जो कहीं उनमें प्रकरण–विमूढ़ता तथा अत्यधिक विषयान्तर का समावेश हो गया है।''[1]

आचार्य चतुरसेन शास्त्री ने कुछ सामाजिक उपन्यास भी लिखे हैं, जिनमें भारतीय संस्कृति पर पाश्चात्य संस्कृति का प्रभाव प्रदर्शित किया गया है। पाश्चात्य संस्कृति के प्रभाव से भारतीय नारी की परम्परागत मान्यताओं में शिथिलता दृष्टिगत होती है। उन्होंने विवाह की समस्याओं तथा जारज संतान की समस्याओं को प्रमुख रूप से लिया है। भारतीय तथा पाश्चात्य सांस्कृतिक मूल्य के मध्य ग्रस्त आधुनिक नारी को परम्परागत भारतीय आदर्शों की ओर प्रवृत करना लेखक का प्रयत्न रहा है। वस्तुतः वह युग सामाजिक उपन्यासों के लिए अधिक उपयुक्त था। प्रेमचन्द ने अपने सामाजिक उपन्यासों के द्वारा उपन्यास विधा में क्रांतिकारी परिवर्तन ला दिया था। 'सेवासदन' से 'गोदान' तक उन्होंने समाज की अनेक समस्याओं को बड़ी सजीव शैली में लिखकर पाठकों का ध्यान आकृष्ट कर लिया था। अनेक उपन्यासों के विषय समाज के प्रायः सभी सन्दर्भों से जुड़े हुए थे। आचार्य जी ने भी समाज सुधार के क्षेत्र में काम करने में रुचि दिखायी थी। आर्य समाज के सम्पर्क में रहने के कारण उनकी समाज सुधार की प्रवृत्ति बहुत सजग थी। प्रेमचन्द को भी आर्य–समाज ने ही समाज सुधार की ओर प्रेरित किया था। इस प्रकार दोनों लेखकों की प्रेरणा का सामाजिक सुधार की दृष्टि से आर्य समाज के अनुकूल था। स्त्री शिक्षा, विधवा विवाह, दहेज प्रथा, वर्ण व्यवस्था, अंधविश्वास, रूढ़िवादी, पूजा–पाठ आदि विषयों पर

प्रेमचन्द जी अपने उपन्यासों में लिख चुके थे। उनकी रचनाओं से पाठक प्रभावित थे। आचार्य जी ने उसी परम्परा में 'अमर अभिलाषा' उपन्यास लिखा और विधवा जीवन की करुण कथा को ध्यान देकर आदर्शोन्मुख यथार्थवाद का सहारा लिया।..... सामाजिक उपन्यासों और कहानियों में वर्तमान युग का यथार्थ ही उन्हें अभीष्ट था। उन्होंने राजा–महाराजा, सेठ–साहूकारों के बीच रहकर जो देखा था उसे निर्भीक शैली में लिखा और दलित शोषित वर्ग का जो क्रन्दन सुना, उसे अपनी कराह में शामिल कर शब्द द्वारा ध्वनित किया। इन उपन्यासों में शास्त्री जी का ध्यान अपने कथन की सम्प्रेषणीयता और संवेदनीयता की तरफ सतत् बना रहा। मूल्यांकन की कसौटी धारण करने वाले आलोचक यदि अपने निकष पर उनके उपन्यास साहित्य की सही परख नहीं कर सके तो इसमें रचनाकर का क्या दोष है।[2]

आचार्य चतुरसेन शास्त्री वास्तव में एक निर्भीक रचनाकार थे, उन्होंने अपने चित्रण में आलोचनात्मक यथार्थवाद को प्रश्रय दिया, पर उनका दृष्टिकोण आदर्श के अनुरूप था। यह युगीन प्रभाव के कारण ही था। उन्होंने अपने उपन्यासों में आदर्श एवं यथार्थ का समन्वय करने की चेष्टा की है, जिससे उनके अधिकांश उपन्यास आदर्शोन्मुख है। उन्होंने जीवन की विकृतियों, विषमताओं, खण्डित मानव की परिस्थितियों की अपने उपन्यासों में आलोचनात्मक व्याख्या की है जो यथार्थवाद की पृष्ठभूमि पर आधारित है। किन्तु अन्त में वे यथार्थ को ठोकर मारकर पूर्णतया आदर्श को स्वीकार कर लेते है और उपन्यास की मूल समस्याओं का समाधान आदर्श के रूप में खोजने का प्रयत्न करते हैं जिससे कि मानवात्मा का विकास कर वे मानवता के उत्थान की दिशा में मानव मात्र की प्रेरणा दे सके। आचार्य जी ने उपन्यास के अन्तर्गत चित्रित सामाजिक समस्याओं को यथार्थ रूप में ग्रहण कर आदर्श पथ की ओर मोड़ने की चेष्टा की है और उसका समाधान खोजने का प्रयत्न किया है। यह आदर्श आवरण ऐसा है जिसमें पात्र चीखते हैं, कराहते हैं किन्तु आदर्श की मर्यादा को भंग नहीं करते। इसी कारण यह पात्र जीवन से दूर है और निर्जीव से प्रतीत होते हैं। उनमें यथार्थ की सप्राणता नहीं, आदर्श एवं नैतिक उपदेशात्मक रंगीनियाँ दिखाई नहीं पड़ती हैं, जिनकी मोहकता में उपन्यासकार ऐसा भटक जाता है फिर उसे इस बात का ध्यान नहीं रहता है कि किस पथ पर जा रहा है और किस लक्ष्य की ओर उसका जाने का प्रयत्न है। यही कारण है कि बहुत से उपन्यासों के अन्तिम अंशों में गतिरोध एवं असामंजस्य प्रतीत होता है और जटिलता एवं दुरूहता के बीच उपन्यासकार की असफलता का सूत्र स्वर भी मुखरित होता जान पड़ता है।

आचार्य जी के एक–एक सामाजिक–यथार्थवादी उपन्यासों को लेकर उनमें निहित सांस्कृतिक मूल्यों पर विचार करेंगे।

हृदय की परख

'हृदय की परख' एक वास्तविक घटना पर आधारित आचार्य चतुरसेन शास्त्री का प्रथम उपन्यास है।[3] हृदय की एक ऐसी परख जो मनुष्य की भावनाओं को अपने सच्चे और वास्तविक रूप में सामने लाकर खड़ा करती है।

लोकनाथ गाँव का साधारण कृषक है। एक सवार रात्रि में आकर एक कन्या रातभर देखभाल के लिये उसके पास छोड़ जाता है, फिर वह लौटकर नहीं आता। लोकनाथ अविवाहित था। उसने सारी आयु ब्रह्मचर्यपूर्वक व्यतीत कर दी थी। ''ऐसी दशा में जैसा कि बहुधा होता है। अविवाहित पुरुष संयम से न रहकर किसी न किसी स्त्री के गुप्त प्रेम में फंसे रहते हैं। वैसा ही इस कन्या को देखकर लोगों ने समझा कि यह कन्या इसकी ऐसी ही लड़की हैं, पर शिशु के स्नेह से इस बदनामी की चोट को खुशी से सह लिया।'' उस कन्या का नाम सरला रखा, लोकनाथ उसे पढ़ाना–लिखाना भी सीखाता है। वह लड़की मेधावी और तेजस्वी निकलती है। लोकनाथ के यहाँ सत्यव्रत नाम का एक युवक आता–जाता है जो सरला के प्रति आकर्षित होता है और मन ही मन उससे प्रेम करने लगता है, किन्तु सरला इस अनुराग से सर्वथा विरक्त रहती है। अन्तिम समय लोकनाथ सरला से अपनी इच्छा प्रकट करता है कि वह सत्यव्रत से विवाह कर ले पर सरला मना कर देती है। अचानक एक दिन उसके पास एक रमणी आती है और स्वयं को सरला की माँ बताती है, पर सरला उसे अस्वीकार कर अपनी माँ की अवहेलना करती है। माँ के कहने पर भी सरला उसके साथ जाने को तैयार नहीं होती है। एक दिन अचानक वह

प्रयाग के लिए चल देती है, वहाँ एक पत्रिका में 'हृदय' नामक लेख प्रकाशित करवाती है जो उसकी राष्ट्रीय एवं अन्तर्राष्ट्रीय प्रसिद्धि का कारण बनता है। वहाँ एक शशिकला के साथ रहती थी वही वास्तव में सरला की माँ थी, जो उसे अपनी पूर्ण कहानी सुनाती है। किन्तु इसका परिणाम कुछ नहीं निकलता, अन्त में सरला की मृत्यु हो जाती है।[4]

प्रस्तुत उपन्यास एक घटना प्रधान उपन्यास है। इस उपन्यास में विवाहपूर्व प्रेम और फलस्वरूप माता–पिता वन जाने वाले प्रेमियों तथा 'अवैध' सन्तान की समस्याओं का चित्रण किया गया है। पर किसी सार्थक विजन और सर्जनात्मकता के अभाव में यह बहुत ही साधारण कोटि की रचना बनकर रह गयी है।''[5] इसमें अवैध सन्तान की समस्या को उठाया गया है। अवैध सन्तान की समस्याओं का विश्लेषण प्रेमचन्द युगीन कई उपन्यासों में मिलता है। जिनमें जयशंकर प्रसाद का 'कंकाल' उल्लेखनीय है। इसके पश्चात् 1946 में इलाचन्द्र जोशी का 'प्रेत और छाया' है, उसमें भी इसी समस्या को उठाया है। अवैध सन्तान का समाज में होना अभिशाप है। माता–पिता की अनुचित कार्यवाही बालक के जीवन को अन्धकारमय बना देती है। सरला जारज सन्तान थी, किन्तु लोकनाथ जैसे ब्रह्मचारी व्यक्ति का आश्रय पाकर उसने ममता और प्रेम का पूर्ण सुख पाया। यही कारण रहा कि वह आगे चलकर स्वच्छन्द प्रकृति की बनी। लोकनाथ द्वारा दी गयी शिक्षा ने उसे यथार्थवादिता से कहीं दूर ले जाकर आदर्शवादी बनाने का प्रयास किया जिसकी वजह से वह यथार्थवादी ठोस धरातल का सूक्ष्म पर्यवेक्षण नहीं कर सकी। वह भावुकता की लहरों में बहती हुई वास्तविकता से कहीं दूर जा पड़ी थी।

प्रस्तुत उपन्यास में जिस वर्णशंकर समस्या को उठाया गया है, उसका पूर्ण रूपेण विश्लेषण न होकर किंचित प्रकाश डाला गया है, सरला का जन्म भूदेव एवं शशिकला के अवैध सम्बन्ध से हुआ था। इस बात को विस्तार नहीं मिल पाता। शशिकला एवं सरला दोनों ही मार्ग से हटा दी जाती हैं। लेखक ने यह अवश्य ही दिखलाया है कि मनुष्य के कर्मों का जीवन में महत्व अवश्य है और उसका प्रभाव भी पड़ता है किन्तु तत्काल उतना नहीं जितना की जन्म विषयक घटनाओं का पड़ता है। योग्य बन जाने पर प्रत्येक व्यक्ति खानदान और माता–पिता की खोज सन्तान से पहले करता है। विद्याधर से सरला प्रेम करती है। वे दोनों ही एक दूसरे के प्रेम में पागल हैं। सरला के आचरण एवं पांडित्य को देखकर विद्याधर उसे देवी समझने लगता है, किन्तु उसकी जन्म सम्बन्धी घटनाओं का रहस्योद्घाटन होते ही वह उसकी उपेक्षा करने लगता है और दूर हटने का प्रयत्न करता है, जिस विवाह की वह उत्सुकता से प्रतीक्षा करता था अब उसकी चर्चा भी उसे मान्य नहीं थी इसलिए विवाह के लिए वह अस्वीकार कर देता है।[6] भारत के समाज में, धर्म में, विवाह प्रक्रिया एक संस्कार है, एक सांस्कृतिक मूल्य है, जो कि स्वाभाविक है, प्रेम का पवित्रता तथा उसमें योगस्थ हो जाने का एक संकल्प है। पवित्र प्रेम के फलस्वरूप सृष्टि सृजन की जिस क्रिया का निर्माण होता है। उसमें बाधक बनना या उसके विकास को रोकना अवैध है। क्योंकि सृष्टि का विकास परमात्मा की इच्छा है, इस विकास के लिए यदि समुचित स्थितियाँ उत्पन्न नहीं की गयी तो सम्भव है समाज समाप्त हो जायेगा। प्रेम की एकनिष्ठ भावना का प्रतीक चाहे जारज हो चाहे अजारज हो दोनों के लिए यह नियम समान है। उन्हें इस प्रेम के संकल्प के लिए अवसर देना चाहिए। अजारज सन्तान के लिए बचपन से ही इस प्रकार के संस्कारों की नींव डालनी चाहिए जो उसे प्रकाश के पथ पर ले जा सके। वह भी समाज का एक प्रतिष्ठित तथा महत्त्वपूर्ण अंग बन सके। उसके हृदय में हीन भावना न भरकर समुचित अवसर उसे प्रदान करना चाहिए। सरला भी इसी प्रकार की अवैध सन्तान थी किन्तु लोकनाथ द्वारा अच्छे संस्कार पड़ने के कारण उसकी विचारधारा और दृष्टिकोण उस ऊँचाई पर चले गये जहाँ साधरण व्यक्ति नहीं उड़ान भर सकता, बल्कि चिन्तन और तपस्या किये हुए मनस्वी ही वहाँ पहुँच सकते हैं। पिता के कहने पर कि वह सत्यव्रत से विवाह कर ले, वह यही उत्तर देती है– ''देखो बाबा! क्या जड़, क्या चैतन्य, सबका उद्गम एक ही है। एक से ही सबका विकास है और अन्त में वही सबका सम्मिलन होता है। मनुष्य स्वभाव से ही सम्मिलन की ओर खिंचता है पर रास्ता भूले हुए मृग की तरह वह ऐसे सम्मिलन स्थापित कर लेता है, जो उसके उच्च और सच्चे सम्मिलन में बाधक होते है। अन्त में वह उद्देश्य–भ्रष्ट होकर पछताता और दुःखी होता है। पर जो स्थिर सुख मिलता है। वही धन्य है, जिसने अपने सम्मिलन के गुण को मार्ग में ही नहीं बेच

दिया है। मुझे भी बाबा वहीं सुख प्राप्त करने की लालसा है। उस सहानुभूति में ही सब कुछ है, मैं वहाँ जाऊँगी, जहाँ सब कुछ है, याचना करने से जहाँ सब कोई सब कुछ पाते हैं।''[7]

हृदय की प्यास

'हृदय की प्यास' एक सामाजिक उपन्यास है, जिसमें असफल वैवाहिक जीवन पर प्रकाश डाला गया है। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल के शब्दों में– ''चतुरसेन शास्त्री का 'हृदय की प्यास' मनुष्य के अनेक पारस्परिक संबंधों के मार्मिकता पर प्रधान लक्ष्य रखने वाला उपन्यास है।''[8]

कथा का प्रारम्भ प्रवीणचन्द्र नामक युवक से होता है। प्रवीण सौन्दर्याभिलाषी, कवित्वपूर्ण हृदय वाला व्यक्ति है, अपनी कल्पनाओं में वह सुन्दर से सुन्दर नारीमूर्ति की कल्पना करता है, जो पढ़ी लिखी हो, संगीत, नृत्य एवं भिन्न–भिन्न प्रकार के हाव–भाव से अपने प्रिय को रिझा सकती हो, किन्तु वास्तविक जीवन में जो पत्नी कहलाने की अधिकारी थी वह इन सम्पूर्ण गुणों से रहित थी, लेकिन पतिव्रता थी। कुरूप अशिक्षित होने पर उसकी सुशील प्रवृत्ति सेवा–भाव, मूक बन सम्पूर्ण व्यवथाओं को सहते हुए पति प्रेम की वंचित व्यथा को सहना यही उसका जीवन क्रम था। यही कारण था कि पति प्रवीण की अतृप्त भावनाएँ इधर–उधर तृप्त होने के लिए भटकती है। संयोग से प्रवीण को सुअवसर मिल जाता हैं उसके बाल सखा भगवती की पत्नी सुन्दर थी जिसके रूप ने प्रवीण को आकर्षण का पात्र बनाया। वह प्रथम परिचय में ही मित्र की पत्नी पर आसक्त हो जाता है और धीरे–धीरे यह आसक्ति उग्र से उग्रतर होती जाती है। प्रवीण एवं अपनी वधू को भगवती एकान्त मिलन करते देख लेता है और पत्नी की बुरी तरह प्रताड़ित कर घर से बाहर निकाल देता है।[9] पत्नी बहुत अनुनय विनय करती है और स्वयं को निर्दोष बताती है किन्तु भगवती एक भी बात न सुन घर के द्वार बन्द कर देता है। भगवती की पत्नी जहर खा लेती है किन्तु अन्तिम क्षण में प्रवीण आकर उसे मृत्यु के मुख से बचा लेता है। दोनों की क्षोभ एवं ग्लानि से विवश होकर उस गाँव से कही दूसरे स्थल पर चले जाते हैं और आजीवन भाई–बहन के पवित्र जीवन को व्यतीत करने की शपथ खा लेते है। प्रवीण कहता है– ''मेरे पास शरीर है और प्राण है, ये मैंने तुम्हें दिए बहू। अपवित्र प्यास से पागल मैंने तुम्हारे आबरू और सुख को नष्ट किया। इस भंयकर नाश के साथ ही वह प्यास मिट गयी है। अब तुम मेरी बहिन और पुत्री के समान हो। मैं पिता और भाई के समान तुम्हारी रक्षा करूँगा और तुम अपने तन–मन से इस बच्चे की रक्षा करो।''[10] यहाँ लेखक कथानक में आदर्श उपस्थित कर देता है।

सुखदा नित्यप्रति पति की प्रतीक्षा करती है। अन्त में उसे एक पत्र प्रवीण का मिलता है, जिसमें पश्चाताप की अग्नि में तपने का संकेत सुखदा को मिलता है। वह पति के इस कार्य से गौरवान्वित हो उठती है।[11] भगवती की शंका समाधान करने के लिए जाती है, किन्तु वहाँ भगवती भी अपनी वधू–द्वारा लिखित एक पत्र बताता है जिसमें कि प्रवीण से घर न आने के लिए प्रार्थना की हुई थी। सुखदा अपने पति का दोष पाकर चुप हो जाती है और मर्माहत हो जाती है। फिर भी प्रवीण एवं अपनी पत्नी के पत्रों को पढ़कर उसकी विचार धारा परिवर्तित हो जाती है और वह सुखदा से प्रतिज्ञा करता है कि मैं कैसे भी उन्हें खोज निकालूंगा। भगवती का प्रवीण को ढूँढ़ निकालना प्रवीण का विषपान आदि घटनाएँ फिर अपनी चरम सीमा पर खींच लाती है।[12] उपसंहार में प्रवीण का सुखदा को अपनाना एवं भगवती व उसकी पत्नी का मिलन हो जाना ही कथानक का अन्त है।

प्रस्तुत उपन्यास के माध्यम से उपन्यासकार ने यह स्पष्ट करना चाहा है कि सौन्दर्य की सत्ता ही जीवन की बुभुझा को तृप्त नहीं कर सकती उसके लिए सद्गुण, सद्विचार और सद्चरित्रता भी आवश्यक है, जो भारतीय सांस्कृतिक मूल्य है। पुरुष की नारी का केवल सौन्दर्य ही नहीं वरन् हृदय भी देखने का प्रयास करना चाहिए। सौन्दर्य नश्वर है किन्तु गुण जीवन की मधुरता है।

प्रस्तुत उपन्यास एक सामाजिक उपन्यास है– इसमें सुखदा के सतीत्व, आदर्श एवं त्याग की भावुकतापूर्ण कहानी लिखी गयी है। वह अपने पति से उपेक्षित होने पर भी एक आदर्श रमणी है। वह सहनशील और आत्मपीड़ित जीवन व्यतीत करती है और यथा–सम्भव पति को भी प्रसन्न रखने की चेष्टा करती है। अन्त में इन्हीं गुणों की ही विजय होती है। यह पूर्णतया आदर्शवादी उपन्यास है, जिसमें सुखदा की परिकल्पना सीता–सावित्री आदि पौराणिक पात्रों के आधार पर की गयी है। भारतीय नारी के

लिए यह एक मूल्य है कि पति परमेश्वर होता है, चाहे वह दुराचारी, पापी, चोर, डाकू, शराबी, वेश्यागामी क्यों न हो। हिन्दू धर्म के संस्कारों ने नारी के मस्तिष्क को पूर्णतया आक्रान्त कर दिया है। कुछ वातावरण उन्हें ऐसा मिलता है कि ये सांस्कृतिक मूल्य व संस्कार और भी प्रबल हो जाते है, इसलिए पति द्वारा किये गये अत्याचारों को वह सहर्ष स्वीकार कर लेती है। एक तरफ प्रवीण जैसे पुरुष है जो अपनी पत्नी के प्रेम और सेवा त्याग की भावना की उपेक्षा कर दूसरे के पत्नी के सौन्दर्य के पीछे पागल हो उठते है। जरा सी कु–वासना उसके जीवन को नर्क बना देती है, किन्तु वह जल्द ही सचेत हो जाता है। संन्यासी उसे उपदेश देते हुए कहते हैं– ''स्मृति के आधार पर यदि मनुष्य का भविष्य छोड़ दिया जाए, तो मनुष्य फल भोगने में भी स्वतन्त्र हो जाए। किन्तु जीव में इच्छा–द्वेष है। इसलिए अनुताप–बुद्धि भी उसमें उगती है और पाप–बुद्धि भी। जब पाप–बुद्धि उगती है, तब अनुताप की नहीं चलती। इसलिए पाप–बुद्धि उत्पन्न होने पर, अनुताप की स्मृति रहने पर भी उसकी अवहेलना की जा सकती है। इसलिए प्रारब्ध और भविष्य केवल स्मृति के ही हाथ नहीं छोड़ा जा सकता उसका निर्माण संस्कार के अधीन है। संस्कार के स्थायी चिह्न हैं, जो आत्मा पर विशेष स्थिति में पड़ जाते हैं। वे अमर हैं, प्रबल है और अमोघ है। इस जीवन में भी स्मृति कभी पाप को नहीं रोकती। संस्कार रोकते हैं। स्मृति के हाथों भविष्य सौप देना तो अपराधी को न्यायाधिकार देने के समान है।''[13] दोनों भाई–बहन के पवित्र जीवन को स्वीकार कर पवित्रता से दिन व्यतीत करने लगते हैं। इस प्रकार के आदर्श एवं मूल्य भारतीय संस्कृति में ही देखे जा सकते हैं। इस प्रकार यह उपन्यास जीवन की यथार्थवादिता के धरातल से दूर होकर कल्पना जगत को अपना क्षेत्र बनाएँ है।

अमर अभिलाषा (बहते आँसू)

अमर अभिलाषा भी एक सामाजिक उपन्यास है, जिसमें विधवाओं की समस्या को उठाया गया है। इसे उन्होंने उस समय लिखा था, जब समाज की कुरीतियाँ उन के व्यक्तित्व से टक्कर खा रही थीं, जब उन की नसों में यौवन का उच्छृंखल रक्त चक्कर काट रहा था, जब उन का दुनियादारी का अनुभव नया था और दुनियाँ के लोगों की ऐसी विभीषिकामयी मूर्तिया उन के समक्ष नहीं आई थीं, जिनका अनुभव वे निकटभूत में करते रहे हैं। इसीलिए उनकी यह रचना अधिक सुन्दर, अधिक, स्वाभाविक और अधिक सुरूचिवर्द्धक है, इसीलिए इस का वर्णन अधिक प्रभावशाली है। इसीलिए इसकी व्यंजना अधिक बोधक है; और इसीलिए हिन्दी के पाठक समुदाय ने इस पुस्तक का अप्रत्याशित आदर किया है।[14]

इस उपन्यास के अन्तर्गत मुख्य प्रकाश विधवाओं के जीवन पर ही डाला गया है। प्रथम कथा भगवती और नारायणी की है जो परस्पर बहने हैं, इनका बालपन में विवाह कर दिया जाता है किन्तु एक 9 वर्ष की और एक 11 वर्ष की आयु व्यतीत करने पर विधवा हो जाती है। दोनों ससुराल द्वारा प्रताड़ित होने पर दुर्भाग्यशालिनी ठहरा कर पिता के घर जर्जर निधि के रूप में भेज दी जाती है। दूसरी कथा विधवा सुशीला की है जिसे अपने वैधव्य का ही होश नहीं था। माँ के साथ छोटी अवस्था से ही जीवन व्यतीत करती है, माँ की मृत्यु के पश्चात् सिलाई कढ़ाई करके जीने का साधन बनाती है, किन्तु दुर्दैव, लोलुप समाज उसे जीने नहीं देता, अन्त में एक युवक धर्म भाई उसकी रक्षा कर जीवन नैया पार लगाता है। तृतीय कथा कुमुद एवं मालती की है। कुमुद का सुहाग सिंदूर प्लेग से आक्रान्त होकर स्वर्ग धाम पहुँच जाता है। वह अपना जीवन सती साध्वी की तरह व्यतीत करती है, इसीप्रकार मालती भी कुमुद के जेठ द्वारा सतायी जाती है, किन्तु इन आतताइयों से बचने का प्रयत्न करने पर वह दूसरे कुचक्र द्वारा 'विधवा आश्रम' में पहुँचा दी जाती है। वह ऐसा विधवा आश्रम रहता है, जहाँ पथ–भ्रष्ट होने का एवं विलास का नग्न नृत्य, शृंगार की पराकाष्ठा क्या होती है, उसका सत्य क्या है आदि सिखाया जाता था, किन्तु मालती अपने आत्मबल से उस विधवा आश्रम का भण्डाफोड़ कर स्वयं को जज श्यामबाबू के संरक्षण में रख छोड़ती है। जज द्वारा मालती के माता–पिता को तार देने पर कि आपकी पुत्री सुरक्षित है ले जाइए। वे लोग मालती को ले जाने से इन्कार कर देते है ऐसी स्थिति में मालती चौका बरतन कर पेट पालने के लिए मजबूर की जाती है, किन्तु जिस समाज में गोविन्द सहाय एवं कालीचरण जैसे दुष्ट रहते है उसी समाज में श्यामबाबू एवं प्रकाश जैसे फरिश्ते भी मिल सकते है। एक नारी को कुमार्ग पर ले जाकर भ्रष्ट करने वाले हैं तो दूसरे कुचले हुए फूलों को भी सजा–सँवारकर

यथा स्थान बैठा देने वाले भी है। अन्तिम एवं छठी विधवा बसन्ती वेश्या है। जिसे समाज द्वारा शरण तो न मिली किन्तु उसके रूप को बाजार का शोभा बना दिया गया। जिसने विधवा होने पर पिता से प्रार्थना की कि वह उसे अपने यहाँ रख ले किन्तु लोभी पिता ने उसकी ओर ध्यान न दिया। अन्त में उसे एक युवक द्वारा अतृप्त इच्छाओं को तृप्त करने का साधन मिल जाता है और वह विलास, श्रृंगार, कामुकता, सौन्दर्य प्रदर्शन को ही अपने जीवन का सम्बल चुन लेती है।

अमर अभिलाषा में शिल्प विषयक नवीनता यह है कि भगवती, नारायणी आदि छह विधवाओं की कहानियों द्वारा विधवाओं पर होने वाले अत्याचारों का चित्रण किया गया है। ये कहानियाँ परस्पर स्वतन्त्र सी हैं, केवल विषय के द्वारा ही एक दूसरे से जुड़ती है। यह विशेषता हमें रुद्र काशिकेय कृत 'बहती गंगा' (1952) की याद दिलाती है जो अपने इसी शिल्प के कारण चर्चित हुआ था।[15]

प्रस्तुत उपन्यास के अन्तर्गत आचार्य चतुरसेन शास्त्री ने दिखाया है कि समाज ही नारी को पथभ्रष्ट करता है। उसके सौन्दर्य और यौवन से मनमाना खिलवाड़ करके उसे उसके भाग्य पर छोड़ देता हैं, विधवा चमेली (बसन्त का बदला नाम) पिता एवं ससुराल वालों द्वारा वेश्यावृत्ति स्वीकार करने के लिए बाध्य की जाती है उसे धर्म और जाति वालों से नफरत हो जाती है। वह यही सोचती है कि धर्म की दुहाई देने वाले ही अँधेरे के पापी है, दिन में बदनामी देते हैं रात में आकर तलुवे सहलाते है। यह समाज यह पंचायत सबके धर्म पर वह घृणा से थूकती है और यही कहती है– ''इन पापी, अधर्मी, काफिरों को अपनी बेटी को इस तरह मिट्टी में मिलाते कुछ भी शरम न आई ? उनका कलेजा–तनिक भी न लज्जा ? जब मेरा बाप मुझे यहाँ छोड़ने आया, तब हा–हाकार विलाप सुनकर उसका कलेजा पिघला ? मैंने उस नामुराद के नापाक पैरों में पड़कर कहा– ''मुझे यहाँ कहाँ इस इतने बड़े शहर में छोड़े जाता है ? तब जानते हो, उसने क्या जवाब दिया ? उसने कहा था– 'जब तैने धर्म नष्ट किया, तब इन बातों को नहीं सोचा था। उस दोजखी कुत्ते ने अपनी मासूम बेटी को मुर्दे के हाथ बेच डाला– उसका कोई धर्म नहीं बिगड़ा। उन पाजी पंचों ने बेगुनाह मुझे कसब कमाने यहाँ भिजवा दिया, उनका धर्म नहीं बिगड़ा। इस नाचीज घिनौने, मुर्दे धर्म पर तुफ़ है– लानत है, मैं इस पर थूकती हूँ। अब जाकर उन धर्म धुरियों से कह देना, तुम्हारी बेटी मुसलमान हो गयी है और पैसा कमाती है।''[16]

प्रस्तुत उपन्यास में धर्म की आड़ लेकर कुरीतियों का डंका पीटने वालों तथा उनके द्वारा उत्पन्न विभीषिकाओं का नाश करने के लिए आचार्य जी ने ऐसे धर्म धूरियों को बुरी तरह प्रताड़ित किया है। नारायणी के विधवा होने पर उसके पिता जयनारायण का सम्पूर्ण क्रोध पण्डित पर निकलता है। ''पुरोहित जी, सच पूछो, तो इस पाप के सब से बड़े भागी तुम ही हो। अब दिखाओं ना– वह देवा और पन्नी कहा है ? तुम्हारी ही बातों में आकर मैंने यह विवाह किया था।..... भगवान का ऐसा कोप इन नास्तिक–विचारों से नहीं है, परन्तु तुम्हारे बताये हुए इन अन्ध–विश्वासों को मानने से हुआ है। मैंने तुम्हारी बातों में आकर भगवती को नौ वर्ष की उम्र में विधवा बनाया और नारायणी को सात वर्ष की उम्र में। तुम मुझे नास्तिक कहकर कोसते हो– पर यदि मैं सचमुच नास्तिक होता तो आज मेरी दुलारी बेटियाँ जब इनके खेलने खाने के दिन थे– ऐसी अनाथिनी न बनती, तुम अपनी पोथी–पन्ने और उस सुहाग के अमर पट्टे को लाओं तो सही, मैं उन्हें भी बेटी के सुहाग की तरह आग लगाकर फूँक दूँ। जिससे और किसी का भाग्य न फूटे। जब वे भगवान की माया में दखल दे ही नहीं सकते तो इन झूठे ढकोसलों की जरूरत ही क्या है।''[17]

आचार्य चतुरसेन शास्त्री ने इस उपन्यास में सुधारवादी दृष्टिकोंण को अपनाया है। विधवा सुशीला पाप कुण्ड में गिरने से बचती है। छोटे से छोटे काम को करने को वह स्वीकार करती है और करती भी है। अपनी इज्जत को बचाती है, विधवा आश्रम का भंडाफोड़ करती है जो नाम को विधवा आश्रम है किन्तु वेश्यालय से कम नहीं है। अन्त में इसका विवाह भी इज्जतदार घराने में हो जाता है। निसंदेह इसके पीछे भी समाज के सुधारवादी पुरुषों का हाथ है जो कि नवीन शिक्षा प्रणाली से प्रभावित है। वे नारी शिक्षा, स्वच्छंदता तथा पुनिर्विवाह में विश्वास रखते है और इसे सांस्कृतिक मूल्य मानते हैं। राजा राममोहन राय तथा दयानन्द सरस्वती के ब्रह्म समाज तथा आर्य समाज आदि ने इन समस्याओं

को उदार दृष्टि से देखा और उन्हें काफी कुछ हल करने का प्रयत्न किया। आचार्य जी स्वयं आर्य समाजी थे इसी कारण विधवा नारायणी की समस्या का हल पुनर्विवाह करवाकर दिया, ऐसी समस्याओं का स्वयमेव ही अन्त हो जाएगा। आज के युग में पुनविवाह खूब हो रहे हैं और अब वह एक सांस्कृतिक मूल्य बन गया है।

आत्मदाह

'आत्मदाह' एक सामाजिक उपन्यास है, जिसका कथा नायक सुधीन्द्र है। (सुधीन्द्र के स्थान पर आचार्य चतुरसेन शास्त्री ने स्वयं को स्थापित किया है।) सुधीन्द्र का प्रथम विवाह माया नाम की युवती से होता है किन्तु शीघ्र ही उसकी मृत्यु हो जाती है। स्वयं सुधीन्द्र के शब्दों में– ''आज कोई पण्डित भी तो संस्कार के लिए न मिला। मुझे भी मन्त्र भी पढ़ने पड़े और दाह भी करना पड़ा। अम्मा, तुम्हें याद हैं, यह ब्याह भी तो मैंने स्वयं पढ़ा था।''[18] माया की मृत्यु से सुधीन्द्र के हृदय पर भीषण आघात लगता है, जिससे वह संसार से विरक्त सा हो जाता है। सुधा नाम की कन्या से पुनर्विवाह होता है किन्तु उसे मानसिक शांति नहीं मिल पाती वह दिन–रात उलझनों में घिरा रहता है। वह सोचता है कि सुधा जैसी अल्प व्यस्क कुमारी के साथ विवाह करके मैंने उसका एक अधिकार हरण कर लिया, मैंने उसी के समान नवीन उत्साह से पूर्ण मुग्ध हृदय पाने के अवसर से वंचित कर दिया है और उसके स्थान पर उसे घायल तथा वेदना पूर्ण हृदय दिया है। सुधा, सुधीन्द्र की इस विचारधारा का खण्डन करती है और अदम्य साहस, आत्म–विश्वास, धैर्य एवं सहिष्णुता के साथ पति की उपेक्षा सहन करती है। उसकी इस सहनशक्ति की सीमा को देखकर सुधीन्द्र स्त्री जाति के प्रति करुण हो उठता है।

प्रस्तुत उपन्यास में लेखक की दृष्टि मे ंवर्ण–शंकर समाज के लिए अभिशाप नहीं है बल्कि समाज की आवश्यकता है। ''प्रजा को वर्णशंकर होना ही चाहिए। इससे बड़ा लाभ है। स्वस्थ नस्ल उन्नत होती है। सार्वभौम, मातृभाव, उत्पन्न होता है, जिसके बिना समाज में कभी चैन नहीं पड़ सकता.... मेरा तो यह कहना है कि एशिया और यूरोप में खुल्ला खुल्मा रोटी बेटी के सम्बन्ध जारी हो जाएँ। पंजाब के शेर बच्चों को बंगाल की कोमलांगी कन्याएँ ब्याह दी जाएँ, मद्रास के मेधावी पुरुषों को कश्मीर की पुत्रियाँ भेंट कर दी जाएँ, और फिर देखा जाए कि मनुष्य–जाति कितनी सुन्दर, कितनी सबल, मेधाशक्ति–सम्पन्न बन जाती है।''[19] इसके लिए आवश्यक है जाति बन्धन को तोड़ देना, जिस समाज में ब्राह्मण अपनी जाति के लिए लड़ता है, क्षत्रिय, वैश्य अपनी जाति के लिए लड़ते वहाँ शान्ति नहीं हो सकती है। जब तक जाति के बन्धन नहीं टूटते हिन्दू जीवन नहीं पा सकते है, वे संसार के मनुष्यों से सच्चा सहयोग भी नहीं पा सकते है। यदि सत्य देखा जाए तो यह जाति बन्धन मानवता का कलंक है, इसके पीछे व्यक्ति स्वयं नष्ट हो जाता है किन्तु जाति के घमंड को नहीं छोड़ता। वास्तव में यही हमारा समाज है और यही उसका रूप है।

नीलमणि

'नीलमणि' एक सामाजिक उपन्यास है, जिसमें विवाह की समस्या को मुख्य रूप से चित्रित किया गया है। कथानक का प्रारम्भ उपन्यास की नायिका नीलम एवं उसकी माता के वाद–विवाद से होता है। नीलम विवाहिता है, किन्तु पूर्ण युवती हो जाने पर भी अपने बाल सखा विनय से अल्प–व्यस्क के समान किलोले किया करती है। कन्या के लिए इतनी स्वतन्त्रता का उपभोग करना माता को अखर जाता है। नीलम को विनय से न मिलने के लिए बाध्य करती है। वह प्रत्युत्तर देती है– ''बेशक, अंग्रेजी किताबों को पढ़कर मैं समझ गयी हूँ कि स्त्री होने ही से मैं कीड़ा–मकोड़ा नहीं हो गयी हूँ, मैं मनुष्य हूँ, मुझे स्वतन्त्रता से जीने का हक है।''[20] इसी क्षण नीलम के पति महेन्द्र अपनी नवविवाहिता पत्नी से, मिलन की मधुर भावनाएं हृदय में संजोये, अचानक आते है, किन्तु प्रथम साक्षात्कार में नीलम उनका अपमान करती है। ''क्या कभी आपने मुझसे बातचीत की है ? मेरा आपका परिचय हुआ है ? आपके विचार क्या हैं, यह बात एक दूसरे को मालूम है ? क्या ऐसी कोई बात है जिसमें हम लोग एक–दूसरे के निकट घनिष्ठ हो सके। मैं आपके चरित्र–स्वभाव और विचारों से अपरिचित हूँ और आप मेरे से; फिर मैं यदि कहूँ कि आप अपरिचित है तो आपको असंतुष्ट न होना चाहिए।''[21] महेन्द्र इस अपमान को सहन

कर जाते हैं, इसके पश्चात् नीलू अपने पति के साथ ससुराल चली जाती है ? नीलू आधुनिक शिक्षा में पली हुई नवयुवती है, किन्तु उसका विवाह मत लिये बगैर ही एक अपरिचित से कर दिया जाता है। वह स्वच्छन्द नारी इसी बात से असन्तुष्ट है। वह महेन्द्र से कहती है– ''आप क्या यही न्याय समझते है कि स्त्रियों को बिना उनकी मर्जी के, बिना उनकी रुचि जाने, माता–पिता जिनके साथ चाहें उन्हें बाँध दे, खास कर जब स्त्रियाँ पढ़ी–लिखी हों ?''[22] वे आगे कहती है– ''जब मुझे इतना ज्ञान हो गया कि मैं अपने जीवन संगी को अपनाऊ तो कम–से–कम मुझे उसको पसन्द करने समझने, उनके गुण–दोष देखने का अधिकार तो है। एक छोटी से चीज बाजार से खरीदी जाती है, उसे भी अच्छी तरह परखा जाता है। फिर यह तो जीवन भर का मामला है।''[23] महेन्द्र के हृदय में नीलू का यह तर्क घर कर जाता है, वे नीलू द्वारा किये गये अपमानों को सहन करते चले जाते हैं, किन्तु बिना उसकी इच्छा के, चाहने पर भी स्पर्श नहीं करते है। नीलू के हृदय में भी प्रेम की आग धधकती है, किन्तु वह समर्पण नहीं करती है न ही अपने प्रेम को बाहर छलकने देती। उसका शरीर दग्ध होता रहता है किन्तु पति होने पर भी महेन्द्र उसके लिए अपरिचित है, इसीलिए वह नतमस्तक कैसे हो। आकर्षण और विकर्षण के दायरे में धूमता हुआ कथानक अग्रसर होता है। नीलू वापस मातृगृह आती है। बाल सखा विनय से पुनः साक्षात्कार होता है। उसके समक्ष भी वह अपनी समस्या रखती है। विनय समस्या का निदान उसके समक्ष प्रस्तुत कर उसकी शंकाओं का समाधान करता है। ''पाश्चात्य संसार का कौमार्य संदिग्ध और अपवित्र हो चुका है। व्यक्तित्व की बात अलग है। सारे यूरोप और अमेरिका से पुरुष दम्भतापूर्वक यह कह सकता है कि वह किसी भी नारी को खरीद सकता है। सिर्फ कीमत चाहिए। भारत में वह दिन अभी दूर है। नीलू, उसका तुम भारत में स्वागत करना चाहती हो ?..... अधिकाधिक त्याग का नाम ही प्रेम है। जिसके लिए तुम जितना त्याग कर सको उतना ही उससे तुम अधिक प्रेम करती हो।''[24] इसके पश्चात् नीलू का हृदय परिवर्तन होता है। वह अपना सर्वस्व पतिचरणों पर अर्पित करने को पागल हो उठती है। कथानक का अंत पति–पत्नी के सुखद मिलन में हो जाता है।

नरमेध

'नरमेध' एक सामाजिक, मौलिक एवं भावपूर्ण उपन्यास है, जिसमें एक फाँसी की सजा पायी हुई स्त्री की असाधारण कहानी है। कथा का प्रारम्भ उपरोक्त स्त्री द्वारा की गयी अप्रत्याशित घटना से होता है। एक स्त्री दुनिया की दृष्टि में उपेक्षित है, एक ठीकरे के हैसियत से है, नगर के प्रसिद्ध एडवोकेट जनरल गोपालदास की निर्मम हत्या कर देती हे। हत्या करने के पश्चात् वह आठ घंटे तक डटकर पुलिस का सामना करती है और अन्त में सभी को आश्चर्य में डालकर पुलिस के समक्ष आत्म–समपर्ण कर देती है। पुलिस अधिकारी स्तब्ध हो गये। प्रथम तो यह कि वह दुर्दान्त खूनी जिसने पूरे 8 घण्टे नगर की पूरी पुलिस से मोर्चा लिया– एक औरत थी। दूसरे वह ऐसी–निर्मम और निस्पृह कि जिसकी कल्पना भी नहीं की जा सकती।[25]

दूसरी कथा सर ठाकुरदास एवं उनके पुत्र त्रिभुवनदास की है। साथ ही एक और कथा सर खादीराम उवं उनकी पुत्री किरण की भी है जो सहायक रूप में सर ठाकुरदास एवं उनके पुत्र त्रिभुवन की कथा को विकास देती है। किरण एवं त्रिभुवन का विवाह निश्चित हो चुका है। नगर एडवोकेट गोपालदास की हत्या का समाचार जब प्रकाशित होता है, सर ठाकुरदास इस समाचार को पढ़कर स्तंभित रह जाते हैं। उसी आघात से इनका निधन हो जाता है। ठाकुरदास अपनी सम्पूर्ण सम्पत्ति किरण के नाम कर जाते है और त्रिभुवन का विवाह किरण से न करने की आज्ञा दे जाते हैं। ''पुत्र त्रिभुवन, तुम्हारा सम्पूर्ण ज्ञान–सौजन्य और पाण्डित्य तुम्हारा है। वह तुम्हारे जीवन निर्वाह को यथेष्ठ है और मेरी आजन्म उपार्जित सम्पूर्ण सम्पत्ति किरण की है। मैंने और सर खादीराम ने तुम्हें और किरण को वाग्बद्ध किया था आज मैं दोनों को वाग्मुक्त करता हूँ।''[26] त्रिभुवनदास अपने स्वर्गीय पिता की इच्छापूर्ति के लिए अपनी सम्पूर्ण संपदा एवं प्रेयसी का त्याग कर नगर में अन्यत्र रहकर अपनी प्रैक्टिस आरंभ करते हैं। यहाँ पुनः हत्याकारिणी से सम्बन्धित कथा सजग हो उठती है। बैरिस्टर होने के कारण साथ ही पिता के मित्र बाबू त्रिलोकीनाथ की अध्यक्षता में बैरिस्टरी करने के कारण उन्हें प्रथम केस हत्याकारिणी का लेना पड़ता है। वे सरकारी वकील बनकर हत्याकारिणी के मामले को स्वयं प्रस्तुत करते हैं। गुप्त

रूप से वे हत्या के सम्बन्ध में जानने की चेष्टा करते हैं किन्तु विशेष सफलता नहीं मिल पाती। बहुत प्रयत्न करने पर अन्त में उन्हें कुछ ऐसे सूत्र प्राप्त होते हैं, जिनसे यह स्पष्ट होता है कि त्रिभुवनदास स्वयं उस हत्याकारिणी के पुत्र है। वह स्त्री पहले एक पवित्र देवी थी। पति पुत्र एवं गृहस्थ सुख से सम्पन्न थी, किन्तु गोपालदास के कारण ही उन्हें पाप पंक में डूबना पड़ा, इस प्रतिशोध के लिए ही उसने गोपालदास की हत्या की। इस रहस्य को केवल ठाकुरदास ही जानते थे, किन्तु घटना का रहस्योद्घाटन उनकी जान का ग्राहक बन कर आता है। उनकी मृत्यु हो जाती है। त्रिभुवन अपनी माता को निर्दोष साबित करने का प्रयत्न करते हैं किन्तु उनके सम्पूर्ण प्रयास निष्फल हो जाते हैं। हत्याकारिणी को मृत्यु दण्ड मिलता है।

प्रस्तुत उपन्यास में कथाकार ने इस समस्या पर प्रकाश डालने की चेष्टा की है कि किसी व्यक्ति के कर्माचरण का तत्काल उतना प्रभाव नहीं पड़ता जितना कि जन्म विषयक घटनाओं का। जन्म से कुलीन होने पर यदि कर्माचरण निकृष्ट हो तो उसकी कुलीनता में समस्त पाप ढक जाते हैं, जब कि किसी व्यक्ति का जन्म किसी सामाजिक बन्धन के विपरीत हुआ तो अच्छा आचरण होने पर भी किसी न किसी रूप में समाज उसकी उपेक्षा करता है। 'हृदय की परख' में यही समस्या है किन्तु विद्याधर समाज भीरू है, इस कारण सरला अबोध सन्तान है। मालूम होने पर उससे विवाह नहीं करता।[27] जबकि त्रिभुवन के समबन्ध में यह जान लेने पर कि वह हत्याकारिणी का पुत्र है किरण समाज और अपने माता–पिता की उपेक्षा कर उससे विवाह कर लेती है। वह कहती है– ''अबला नारी को अधिक न तपाओ। मैं तुम्हारी हूँ। एकदम तुम्हारी। तन से, मन से और वचन से भी। तुम्हें मुझसे कोई शक्ति दूर नहीं कर सकती।''[28] नरमेध में किरण के माध्यम से लेखक ने समस्या का निदान भी ढूँढ़ निकाला है।

निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि 'नरमेध' में जीवन की यथार्थता नहीं है। आत्मा–परमात्मा की रहस्यात्मकता है। जिसे जीवन की यथार्थता के साथ गुंफित करने का प्रयास किया गया है। इसलिए कथानक भी जटिल होने के साथ–साथ जासूसी सा लगता है।

दो किनारे

प्रस्तुत उपन्यास के अन्तर्गत उपन्यासकार ने दो स्वतन्त्र कथानक लिये है। प्रथम 'दो सौ की बीबी' तथा द्वितीय 'दादाभाई'।

'दो सौ की बीबी' उपन्यास का कथानक रमाशंकर नामक व्यक्ति की मानसिक ऊहापोह से प्रारम्भ होता है। जिसकी पत्नी का देहान्त हो जाता है। रमाशंकर अपने ग्यारह वर्षीय पुत्र राजीव के साथ अकेला रहता है। एक दिन वह स्वयं के अतीत सुखद जीवन का इतिहास पुत्र के सुनाते हुए पुत्र से कहता है कि बाल्याकाल में वह घोड़े पर स्कूल जाता था। पुत्र भी घोड़े मंगाने के लिए जिद करता है। पुत्र की आकांक्षा पूर्ति के लिए वह निकटस्थ गाँव में घोड़ा खरीदने के लिए जाता है, किन्तु खरीद लाता है मालती नाम की स्त्री को। रमाशंकर प्रथम तो उससे रुष्ट रहता है, किन्तु बाद में उसके विनम्रतापूर्वक परिश्रमी व्यवहार से अत्यधिक प्रसन्न हो जाता है और उससे प्रेम करने लगता है। रमाशंकर ऊपर से मालती के प्रति कठोर बनकर हृदय से उसे प्रेम करता है। इसी समय इन दोनों के मध्य रमाशंकर का बाल एवं प्रिय मित्र रमानाथ का पदार्पण होता है। रमानाथ को देखकर मालती उसकी ओर आकर्षित होती है। रमाशंकर यही नहीं सहन कर सका। वह रमानाथ को प्रताड़ित कर घर से निकाल देता है। रमाशंकर के हृदय में ईर्ष्या और घृणा का प्रादुर्भाव होता है, वह मालती के प्रति और भी अधिक कठोर हो उठता है। मालती–रमाशंकर की कठोरता से व्यथित होकर बिना कुछ कहे रमानाथ के पास आ जाती है। रमानाथ उसे आश्रय देता है, पत्नी मानकर नहीं– बल्कि भाभी मानकर। मालती उसी की होकर रहना चाहती थी किन्तु रमानाथ उसके प्रस्ताव को अस्वीकृत कर देता है। मालती के अभाव में रमाशंकर को उसका महत्त्व मालूम पड़ता है, वह अपने पुत्र को साथ लेकर रमानाथ के यहाँ आ पहुँचता है। रमाशंकर की दयनीयता तथा राजीव के स्नेह को देखकर मालती पुनः उसके साथ लौट आने को तैयार हो जाती है। अन्त में रमाशंकर और रमानाथ की कटुता समाप्त हो जाती है। मालती को साथ ले जाने के साथ रमाशंकर रमानाथ को भी साथ ले जाता है।

प्रस्तुत कथानक जटिल न होकर सरल है। मुख्य कथा ही केवल स्पष्ट है। सहायक कथाओं का अभाव है।

दूसरी कथा 'दादाभाई' का कथानक भी स्पष्ट है। कथानक का प्रारम्भ नरेन्द्र नामक, दादाभाई के कारागारके छूटने से होता है। कारागार से छूटते ही स्वच्छन्द प्रकृति वाले नरेन्द्र को पैसे का अभाव होटल वाले से भिड़ा देता है। यही पर अकस्मात् जगदम्बा बाबू से परिचय होता है। वह नरेन्द्र को अपने साथ ले जाते है। जगदम्बा बाबू की अनुपस्थिति में उनके अंग्रेज ऑफिसर की पत्नी के लिए नरेन्द्र सेफ तोड़कर दस हजार रुपया चोरी करता है, किन्तु पुलिस के समझ अत्यधिक उदारता का परिचय दे जगदम्बा बाबू फिर उसे छुड़ा लेते हैं। जगदम्बा बाबू की अनुपस्थिति में नरेन्द्र को अप्रत्याशित रूप से अपने कमरे में खड़ा देखकर उनकी लड़की सुधा, नरेन्द्र को चोर आदि कहकर प्रताड़ित करती है। इसी समय नरेन्द्र बाहर जाता है और मोटर दुर्घटना का शिकार बनता है। कुछ घटनाओं के चक्र में कथा घूमती है। अन्त में नरेन्द्र और सुधा का विवाह हो जाता है।

प्रस्तुत उपन्यास के प्रथम खण्ड 'दो सौ की बीवी' के अन्तर्गत मालती जैसी असहाय नवयुवतियों का चित्रण किया गया है, जो अनाथ होती है। किन्तु उनका नारी रूप किसी के जीवन की अभिलाषा बनना चाहता है, उनका क्रय–विक्रय होता है। रमाशंकर के हृदय में पुत्र प्रेम है इसलिए वह मालती की उपेक्षा करता है। उसकी सेवा सुश्रुषा आदि को महत्त्वहीन समझता है। मानव का स्वभाव ही कुछ इस प्रकार का रहत है जिस व्यक्ति को संकुचित वातावरण मिलता है उसे अच्छे संस्कारों के दर्शन नहीं होते तो स्वतः ही उसकी मनोभावनाएँ उतनी विस्तृत नहीं होतीं, जितना कि उन्मुक्त वातावरण में रहकर होती हैं। दूसरी तरफ मालती है जिसके हृदय में गृहणीत्व का ऊँचा आदर्श था, कामनाएँ थीं, पति प्रेम की वह अभिलाषिणी थी। पति का प्रोत्साहन, स्नेह सद्भावना सभी की वह आकांक्षा करती थी। नारी, पुरुष की अपेक्षा करती है और पुरुष नारी की अपेक्षा करता है। वह स्वाभाविक है किन्तु जिन्दगी की राह पर चलने के लिए विचारों का सन्तुलन आवश्यक है यही सांस्कृतिक मूल्य है अन्यथा विफलता ही हाथ लगेगी।

निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि प्रस्तुत उपन्यास में आचार्य जी ने परस्पर विरोधी चरित्रों को भिन्न परिस्थितियों के मध्य रखकर समाज के कई रूप हमारे समक्ष रखे हैं।

अपराजिता

यह एक सामाजिक उपन्यास है, जिसमें सामाजिक रूढ़िग्रस्त बन्धनों एवं पति के निर्मम अत्याचारों के विरुद्ध एक नारी के विद्रोह एवं सत्याग्रह का चित्रण किया गया है। स्वयं लेखक के शब्दों में ''मैं चिकित्सक भी तो हूँ। और अपने पचास वर्षों के अनुभव में मैंने एक चिकित्सा–तत्व पाया है, 'विषस्य विषमौषधम्' यह बड़ा भारी गूढ़ तत्व है इसी तत्त्व पर मैंने 'नारी–समस्या' को भी परखा है और मैं इस निष्कर्ष पर पहुँचा हूँ कि नारी–ही–नारी की समस्या को हल कर सकती है। परन्तु 'नारी' रहकर 'नर' बनकर नहीं। नारी बनने के लिए उसे 'नारी–तत्व' को जीवन में आत्मसात् करना होगा। ऐसा करने ही से वह 'अपराजिता' के रूप में उदय होगी।''[29]

प्रस्तुत उपन्यास का कथानक सुलझा हुआ है। ब्रजराज तथा राज में पहले से ही प्रेम रहता है। उनका विवाह भी निश्चित सा ही है। किन्तु इसी समय राज अपने पिता गजराजसिंह के जातीय सम्मान की रक्षा के लिए अपने प्रेम को उत्सर्ग कर देती है। वह इच्छा के प्रतिकूल भी ठाकुर राधवेन्द्र सिंह से विवाह कर लेती है। अपने प्रेमी ब्रजराज का विवाह अपनी प्रिय सखी राधा से करवा देती है। अपने विवाह में प्राप्त दहेज भी वह अपनी सखी राधा को दे देती है। राज के ससुराल में दहेज को लेकर वाद–विवाद होता है। उसके पति तथा उसके श्वसुर उससे रूठ जाते हैं, किन्तु राज इस कार्य को स्त्री धन कहकर उचित ठहराती है। राज के श्वसुर उसके पिता को अपशब्द कहते हैं। वह उनके विरोध में सत्याग्रह का अमोघ शस्त्र अपनाती है। हठधर्मी एवं सत्य का द्वन्द्व आरम्भ होता है सम्पूर्ण ग्राम–वासी राज के सत्याग्रह का समर्थन करते हैं अन्त में राज के श्वसुर को उसके समक्ष झुकना पड़ता है। इसी समय राज के पति ठाकुर राधवेन्द्र सिंह मोटर दुर्घटना से घायल होते हैं। राज उनकी सेवा सुश्रुषा करती है, वे स्वस्थ हो जाते हैं किन्तु नेत्रहीन भी हो जाते हैं, फिर भी वे राज के सन्मुख नहीं झुकते।

राज अपना कर्त्तव्य पालन कर पुनः श्वसुर के पास पहुँच जाती है। इसी प्रकार राज को अपने पति से अलग रहते 21 वर्ष व्यतीत हो जाते हैं। राज के श्वसुर का देहान्त हो जाता है। राज के पति ने गुप्त रूप से एक स्त्री से विवाह कर लिया था। जिससे कि एक पुत्र भी था। नेत्रहीन होने के पश्चात् राज के पति का आचरण भी खराब हो गया था। पत्नी और पुत्र के प्रति व्यवहार कठोर हो गया था। अन्त में उनकी द्वितीय पत्नी अपने पुत्र के हाथ में पत्र देकर राज के पास भेजती है। राज पति की दशा को पढ़कर स्वयं का अहं त्याग देती है, उनके समीप जाती है और उन्हें सन्मार्ग पर लाती है। ठाकुर भी अपने आत्म–सम्मान को भुलाकर राज को स्वीकार कर लेते हैं।

भारतीय सांस्कृतिक मूल्यों में पालित–पोषित कन्या कभी भी पति के विरुद्ध आवाज नहीं उठाती चाहे वह मानसिक एवं शारीरिक रूप से कितनी भी विकल क्यों न हो ? अपने जीवन की सार्थकता वह श्वसुर गृह में रहकर समझती है। स्वर्गधाम वह पति के चरणों में रहकर प्राप्त करती है। पति चाहे दुराचारी, लम्पट, शराबी, जुआरी, चोर क्यों न हो ? वह विरोध नहीं करेगी, क्योंकि समाज उसे अवसर नहीं देता। हिन्दू समाज धर्म, जाति, आत्म–सम्मान की शिक्षा देकर नारी को बाध्य करता है कि जाओं उसी नर्क में रहो, वह सुख का धाम है, स्वर्ग है, तुम्हारे कल्याण का पथ है। जहाँ एक बार डोली में बैठकर गयी हो वहाँ से अब अर्थी पर ही निकलना तभी तुम सच्चे अर्थों में नारीत्व के नाम को सार्थक करोगी। यह परम्परा चली आ रही है। प्रत्येक माँ–बेटी की विदाई पर उसके उपरोक्त शिक्षा देती है।

निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि दहेज की समस्या को लेकर बहुत से उपन्यास लिखे गये हैं किन्तु आचार्य जी ने सर्वथा नवीन और मौलिक ढंग अपनाया है, गाँधीजी ने जिस सत्याग्रह को राजनीति में प्रवेश कराया है उस सत्याग्रह का उपयोग लेखक ने सामाजिक कुरीतियों के निवारण में भी कराना चाहा है; इस उपन्यास में उठायी गयी समस्या पुरानी है किन्तु उसकी व्याख्या एवं निष्कर्ष नितान्त मौलिक है।

अदल–बदल

'अदल–बदल' एक समस्या प्रधान उपन्यास है, जिसमें पत्नी की अदल–बदल की समस्या को उठाया गया है। इसके अन्तर्गत दो प्रमुख कथाएँ हैं जो एक साथ ही विकास के पथ पर अग्रसर होती हैं। डॉ. कृष्ण गोपाल अपनी साध्वी पत्नी विमला से असन्तुष्ट है जबकि मायादेवी अपने सज्जन एवं सरल स्वभाव के पति मास्टर हरप्रसाद से। मायादेवी पाश्चात्य रंग में डूबी हुई तितली के सदृश है, कुछ–कुछ प्रेमचन्द के 'गोदान' की मालती की तरह, जिन्हें जीवन की रंगीनी में सुख का सागर लहराना दिखाई देता है। क्लब जाती है वहीं माया का साक्षात्कार डॉ. कृष्णगोपाल से होता है। वह उनकी तरफ आकर्षित होने लगती है। इधर डॉ. कृष्णगोपाल भी अपनी पत्नी की उपेक्षा कर माया देवी के प्रेम पाश में बद्ध हो जाते हैं, माया अपने पति की उपेक्षा कर डॉ. अपनी पत्नी की उपेक्षा कर, उन्हें त्याग, आपस में विवाह करने का निश्चय करते हैं। कथानक में वाद–विवाद एवं घटनाओं की जटिलता को अधिक स्थान नहीं मिल पाया है, क्योंकि मास्टर हरप्रसाद एवं विमला सर्वथा मूक पक्ष के समर्थक बताये गये है। धीरे–धीरे कथानक में वेग आता है विवाह सम्पन्न हो जाने पर सुहाग रात्रि के दिन मायादेवी के विचारों में परिवर्तन होता है, वह भागकर पुनः अपने पति के समीप आ जाती है। मास्टर हर प्रसाद भी माया को पुनः आश्रय दे देते हैं।

प्रस्तुत उपन्यास के अन्तर्गत लेखक पति–पत्नी की अदल–बदल की समस्या को नये युग का कठिन प्रश्न माना है। उनका कथन है– ''आज स्त्री पुरुष की सम्पत्ति परिग्रह बनकर नहीं रह सकती। वह पुरुष की सच्चे अर्थों में संगिनी बनकर रहेगी। पुरुष यदि स्त्री के इस प्राप्तव्य के देने में अनाकानी करता है तो निःसंदेह उसे स्त्रियों से ऐसी खूनी लड़ाई लड़नी पड़ेगी जैसी आजतक मनुष्य इतिहास में मनुष्य ने इस स्त्री सम्पत्ति को अपहरण करने के लिए भी युग–युग में कभी नहीं लड़ी। फिर भी उसकी जीत नहीं होगी। जीत होगी स्त्री की। यह मैं अभी से कहे देता हूँ। वीर पुरुषों को खास कर पतियों को यह नेक सलाह दे रहा हूँ कि वे केवल परिणय प्रेम और सहृदयता से स्त्री को अपनी जीवन संगिनी बनाना सीख लें, जिससे उनका घर बसा का बसा रह जाएँ क्योंकि यह अदल–बदल की हवा जो योरोप के घरों को उजाड़ कर यहाँ आयी है। यदि उनके घरों में घुस गयी तो वे किसी दिन दफ्तर से

लौटकर अपने घर को सूना और पड़ोसी के घर को आबाद पाएँगे।''[30] वास्तव में आज के युग की यह बड़ी महत् समस्या है जिस पर निदान नहीं होने के कारण उसका रूप वृहत से वृहत्तर होता जा रहा है।

धर्मपुत्र

'धर्मपुत्र' उपन्यास का कथानक हिन्दू–मुस्लिम एकता को लेकर प्रारम्भ हुआ है। नवाब मुश्ताक अहमद सालारजंग बहादुर की एकमात्र पुत्री है हुस्न बानू जिसका लालन–पालन वे बड़े लाड़ प्यार से करते हैं। उसे बहुत स्वाधीनता भी प्राप्त हो जाती है तथा वह एक मुस्लिम युवक से प्यार करने लगती है। विवाह से पूर्व ही हुस्न बानू गर्भवती हो जाती है। नवाब इस मामले में डॉ. अमृतराय से सलाह लेना चाहते हैं और गर्भपात करा देने की इच्छा प्रकट करते हैं। किन्तु अमृतराय इस अनैतिक कर्य को करने के लिए तैयार नहीं होते हैं। नवाब साहब को अपने पिता का अभिन्न मित्र जान कर डॉ. उनकी मदद करना चाहते हैं। अन्त में वह अपनी पत्नी अरूणा की सहमति से हुस्न बानू के पुत्र होने पर उसे अपना पुत्र घोषित कर देते हैं। नवाब साहब अपनी सम्पत्ति का आधा भाग हुस्न बानू के पुत्र दिलीप के नाम घोषित कर देते हैं। दिलीप हिन्दू वातावरण में बढ़ता है और हिन्दू संस्कार उसमें घनिष्ठ रूप घर कर जाते हैं। डॉ. के अन्य तीन बच्चे और होते हैं, शिक्षा समाप्त कर अब उनके विवाह की चिन्ता डॉ दम्पत्ति को होती है। किन्तु दिलीप जन्म से मुसलमान है इसलिए उसका हिन्दू कन्या के साथ विवाह नहीं हो सकता। बहुत विचार कर वे रायसाहब विलायत रिटर्न, जातिच्युत हुए की कन्या माया से विवाह की बातचीत करते हैं। किन्तु दिलीप के मस्तिष्क में सीता–सावित्री जैसी आदर्श पत्नी का रूप था इसलिए वह विवाह के लिए अस्वीकार कर देता है। इसी बीच भारत की राजनीतिक स्थिति डॉवाडोल होती है, हिन्दू–मुस्लिम दंगा होता है। दिलीप क्रान्तिकारियों का नेतृत्व करता हुआ रंगमहल में आग लगाने जाता है। जहाँ विधवा होकर हुस्नबानू रहने आ गयी थी। डॉ दम्पत्ति को जब यह पता चलता है तो वे दिलीप को रोकने के लिए जाते हैं। अन्त में दिलीप का रहस्योद्घाटन होता है। वह हुस्न बानू से माँ कहकर लिपट जाता है। विवाह दिलीप और माया का होता है। इस प्रकार कथानक का सुखान्त हो जाता है।

प्रस्तुत उपन्यास के अन्तर्गत लेखक ने प्रथम समस्या हिन्दू–मुस्लिम एकता से सम्बन्धित ली है, जो भारतीय सांस्कृतिक मूल्य की पहचान है। डॉ. दम्पत्ति हिन्दू थे, हुस्न बानू मुसलमान। किन्तु दोनों के ही हृदय में एक दूसरे के प्रति स्नेह की भावना थी। स्नेह के कारण हुस्न बानू का पुत्र दिलीप था और डॉ. दम्पत्ति का उसके प्रति अटूट स्नेह। वह दिलीप को हृदय से लगाकर रखते थे। किसी विजातीय बालक को अपने बालक के समान हृदय में लगाकर रखना भारतीय संस्कृति में ही संभव हो सकती है। वह भी बालक ऐसा जो अवैध था। डॉ. दम्पत्ति यह जानते हुए भी कि दिलीप हमारा अपना पुत्र न होकर मुसलमान है, उसके प्रति अटूट–स्नेह रखते थे। दिलीप को भी कभी भी इस बात का अनुभव ही नहीं हुआ कि वह विजातीय है, वह हिन्दू संस्कारों से प्रभावित होता हुआ ही बढ़ रहा था। हिन्दू–धर्म के प्रति जो निष्ठा की भावना थी उसको खंडित करना सरल कार्य नहीं था। जातिच्युत कन्या के साथ विवाह का प्रश्न उठते ही उसके प्रबल संस्कार विरोध कर उठे। वह कहता है– ''वे लोग बिल्कुल भ्रष्ट है, विलायती साहब लोग है, हिन्दू संस्कृति और हिन्दू धर्म के पाबन्द नहीं है, सबके साथ उनका खान–पान है। उसकी लड़की भी अंग्रेजी फैशन की गुलाम है।..... मैं सीता सावित्री का आदर्श पसन्द करता हूँ। मैं चाहता हूँ कि सीता सावित्री के वंश ही कोई लड़की आपके चरणों का आशीर्वाद प्राप्त करे।''[31] जिसकी नसों में शत–प्रतिशत मुस्लिम खून बह रहा हो वह हिन्दू धर्म का समर्थक है। इसका तात्पर्य यही है कि जन्म लेने से ही किसी व्यक्ति के संस्कार उस जाति विशेष के समान नहीं होते हैं बल्कि किसी भी बालक के अन्तर्गत वातावरण रहन–सहन तथा विचारों का प्रभाव वैसा ही होता है जिन संस्कारों के बीच उसका पालन–पोषण होता है, यह एक बहुत बड़ा मनोवैज्ञानिक सत्य है। लेखक ने दिलीप का निर्माण जिन स्थितियों को लेकर किया है, वह अत्यधिक स्वाभाविक तथा यथार्थवादी है। इसलिए उसमें हिन्दू धर्म के संस्कार, आदर्श तथा संस्कृति का कूट–कूट कर भरना स्वाभाविक है। दिलीप के शब्दों में सोलह संस्कार, पंचमहायज्ञ, तीर्थ–व्रत, उपवास, कथा–वार्ता, दान–धर्म, यही सब कुछ तो हिन्दू धर्म है, इसी की बदौलत तो हिन्दू धर्म जीवित है।[32]

गोली

'गोली' उपन्यास विशुद्ध रूप से सांस्कृतिक पृष्ठभूमि पर आधारित है, जिसमें चम्पा के माध्यम से तत्कालीन गोली जीवन की दुःखद गाथा का चित्रण है। संभवतः गोली गोला शब्द 'ग्वाल' का बिगड़ा हुआ रूप है।

'गोली' की कथा नायिका चम्पा अपने दाता की बेटी कुंवरी के विवाह में दहेज में दी जाती है। कुंवरी के पति अपनी विवाहिता के पास रात्रि को न जाकर चम्मा के पास जाता है। क्योंकि चम्पा के चम्पई वर्ण के लोभ ने ठाकुर को कुंवरी से विमुख कर दिया। समाचार मिलते ही कुंवरी ठाकुर से कभी न मिलने की सौगन्ध खा लेती है। चम्पा तथा राजा का सम्बन्ध बढ़ता जाता है और वह इक्कीस वर्षों तक राजा की उपपत्नी के रूप में रहती है। राजा की औरस से पाँच सन्तानों की वह माँ बनती है। किन्तु राजा केवल भोग का ही सम्बन्धी रहता है असली पिता किशुन नाम का गोला करार किया जाता है जिसका कर स्पर्श चम्पा केवल विवाह के अवसर पर करती है। चम्पा के शब्दों में– ''मेरी ये पाँचों सन्तानें राजा ही के औरस से हुई, पर वह उनका पिता न थाः पिता था मेरा पति, जिसका कर स्पर्श मैंने केवल एक बार, जब मैं बीस वर्ष की थी, विवाह–मंडप में किया था; उसके बाद वह मेरी चाकरी में हाजिर रहा, पूरे इक्कीस वर्ष जब तक मैं रंगमहल में रही, मेरा अंग–स्पर्श करना उसके लिए अवैध था, मेरे पलंग और मेरी पोशाकें की साज–सम्भाल करने की उसकी नौकरी थी।''[33] इक्कीस वर्ष सुख से तथा राजरानी की तरह भोगने के पश्चात चम्पा किन्हीं षड्यन्त्रों द्वारा नारकीय यंत्रणाओं में पिसने के लिए डाल दी जाती है। जब भारत स्वतंत्र होता है साथ ही सम्पूर्ण राज्यों का विलय होता है तब राजा के नारकीय गृह से साठ हजार नर–नारियाँ मुक्त होकर स्वतंत्रता की श्वाँस लेती हीं। चम्पा भी किसुन की सहायता से अपने बच्चे को स्वतंत्र करके, उन्हें अच्छी शिक्षा–दीक्षा देती है। अन्त में चम्पा स्वयं अपनी छोटी कन्या के साथ दिल्ली में बंगला लेकर रहने लगती है। इस प्रकार उसकी कथा समाप्त हो जाती है।

आचार्य चतुरसेन शास्त्री ने इस उपन्यास के माध्यम से गोली जीवन के दर्दनाक चित्र खींचे हैं। गोली–गोलों को किस प्रकार विलासी राजाओं के हाथ की कठपुलती बनकर रहना पड़ता था और किस प्रकार वे उनके द्वारा लांछित व प्रताड़ित किये जाते थे। यह उपन्यास विशुद्ध सांस्कृतिक पृष्ठभूमि पर आधारित है।

आभा

'आभा' उपन्यास में प्रेम का त्रिकोणत्व है जो मनोवैज्ञानिक एवं सांस्कृतिक पृष्ठभूमि पर आधारित है। आभा डॉ. अनिल की पत्नी है जो शिक्षिता है तथा एक पुत्री की माँ है। वह पति को केवल अपनी सेवा दे पाती है, प्रेम नहीं। वह अनिल के बाल सखा रमेश के प्रति आकर्षित है। प्रथम आकर्षण रमेश व आभा को प्रेम की उन जानी राहों पर ले जाता है। आकर्षण प्रेम का रूप धारण कर लेता है। आभा एवं रमेश अनिल की दृष्टि से बचकर पलायन की योजना बनाते हैं। अनिल भी आभा के व्यवहार से कुछ शंकित होता है। एक दिन आभा अनिल को त्याग कर, रमेश से विवाह का प्रस्ताव रखने की सूचना अनिल को देती है, अनिल अप्रत्याशित रूप से रमेश और आभा पर बिगड़ उठता है। और उसकस हृदय मर्माहत होता है। अनिल का हृदय मर्माहत होता है, वह शीघ्र ही संयत होकर आभा को रमेश के साथ जाने की अनुमति दे देता है। आभा, रमेश के साथ चली जाती है लेकिन उसके साथ वह पूर्व स्मृतियों, चेतना प्रवाह, एवं अन्तर्द्वन्द्व को अपने साथ ले जाती है। साथ ही अनिल पर इसका बोझ डाल जाती है। मानसिक अन्तर्द्वन्द्व को परास्त कर आभा जीवन का कुछ निर्णय लेना चाहती है। रमेश के समक्ष वह बाहर घूमने का प्रस्ताव रखती है। दोनों साथ–साथ कितने ही स्थानों मथुरा, वृंदावन, आगरा, ग्वालियर, उज्जैन, नासिक, बम्बई, द्वारिका आदि पर घूमते हैं, लेकिन उन्हें शांति नहीं मिल पाती। आभा, रमेश को आत्मसमर्पण नहीं कर सकी और न ही अनिल को भुला सकी। दोनों घूमकर वापस आ जाते हैं। आभा, अनिल के पास जाकर क्षमा याचना करना चाहती है किन्तु अचानक ही उसे मालमू होता है कि वह गर्भवती है। यह सोच कर आभा एकदम असंयत हो उठती है। उसके मन का संचार होता है। साथ ही

उसका विश्वास था कि यह गर्भ अनिल का है। इसलिए भयभीत होने पर भी वह गर्भ समाप्त नहीं करती है। यथा समय रमेश के घर में आभा के पुत्र उत्पन्न होता है। रमेश आभा के कठिन प्रसव के क्षण अनिल से भाभी को बचा लेने की प्रार्थना करता है। डॉ. अनिल औपचारिक रूप से डॉ. के नियमों का पालन करते हुए आभा की देखभाल करते हैं। कुछ दिनों के पश्चात् अनिल आभा को पुनः पत्नी के रूप में स्वीकार कर लेता है।

प्रस्तुत उपन्यास में आचार्य जी ने आभा के माध्यम से किंचित दुर्बलता के आवेश में आकर किये गये कुकृत्य का पश्चाताप किस प्रकार किया जा सकता है, यह बताया है। लेकिन एक प्रश्न उसके साथ यह उठ सकता है कि अनिल के समान सभी स्त्रियों के पति न हो, जो गृह त्याग कर, पर–पुरुष के साथ रही स्त्री को बिना किसी हिचकिचाहट के पवित्र मान कर स्वीकार कर ले। अनिल के स्तर पर आने के लिए एक उच्च संयम की आवश्यकता है, आभा के गृह त्याग देने पर भी उसके मन का परिवर्तन ही उसके नारीत्व की रक्षा कर सका। प्रेम निश्चय ही अन्धा होता है, उस अन्धकूप में गिरकर प्राणी का बुद्धि जीर्ण तथा जर्जर हो जाती है। आभा का चरित्र रमेश के प्रति आकर्षित होने के बाद–निश्चय ही वासना को प्रधानता देता है। इसलिए प्रेम के नशें में सीधे अनिल से कहती है ''मैं तुम्हें धोखा न दे सकती हूँ, न तुमसे झूठ बोल सकती हूँ, मैं रमेश को प्यार करती हूँ और उसके साथ जा रही हूँ।.... मैं तुम्हारी विवाहिता पत्नी हूँ। हिन्दू धर्म से हमारा–तुम्हारा विवाह हुआ था। कायदे–कानून से मैं न तुम्हें त्याग सकती हूँ, न दूसरा विवाह कर सकती हूँ, पर तुम मुझे त्याग सकते हो और छुट्टी दे सकते हो।... मैंने बहुत राते रो–रोकर बितायी हैं। तुम्हें बहुत ठगा, मन को बहुत समझाया पर अन्त में मैं हार गयी। मैं रमेश के बिना नहीं रह सकती।''[34] इस प्रकार के वचन समझदार के लिए एक बहुत बड़ी शिक्षा भी है ओर अज्ञानी के लिए कुछ भी नहीं। किन्तु आभा का विश्वसघात अनिल के मन, प्राण को आहत कर जाता है। नारी के सम्बन्ध में उसके विचार एक बारगी लड़खड़ा जाते है। वह सोचने लगता है कि हिन्दू कुल की स्त्री तो मरकर ही घर की देहली से बाहर जाती है। लेकिन आभा तो जीते जी चली गयी, राजी खुशी दूसरे को प्यार करने के लिए कैसे इसे बर्दाश्त किया जा सकता है। एक पत्नी, पति को छोड़कर किस अन्य पुरुष को प्यार कर सकती है।

आचार्य चतुरसेन शास्त्री ने इस उपन्यास में प्रगतिशील तत्वों को समाविष्ट किया है तथा बुर्जुआ मनोवृति वाले लोगों की निन्दा की है। ये बुर्जुआ लोग ही हैं जो देश को बर्बाद कर रहे हैं और समाज को अपने स्वार्थ की पूर्ति का साधन मात्र बनाना चाहते हैं। वे समाज में कोई क्रान्तिकारी परिवर्तन नहीं चाहते। उसका रूप विधाता अपरिवर्तन ही देखना चाहते हैं। यह उपन्यास ऐसे लोगों पर व्यंग्य करता है।

संदर्भ :

1. चतुरसेन शास्त्री : विजयेन्द्र स्नातक, पृ0 41
2. वही, पृ0 41–42
3. हिन्दी उपन्यास का विकास : मधुरेश, पृ0 62
4. हृदय की परख : आचार्य चतुरसेन शास्त्री, पृ0 7
5. वही, पृ0 108
6. हिन्दी उपन्यास का इतिहास : प्रो. गोपाल राय, पृ0 155
7. हृदय की परख : आचार्य चतुरसेन शास्त्री, पृ0 97–98
8. हिन्दी साहित्य का इतिहास : आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, पृ0 295
9. हृदय की प्यास : आचार्य चतुरसेन शास्त्री, पृ0 60–64
10. वही, पृ0 67
11. वही, पृ0 71–72
12. वही, पृ0 85
13. वही, पृ0 82
14. अमर अभिलाषा : आचार्य चतुरसेन शास्त्री, प्रकाशकीय

15. हिन्दी उपन्यास का इतिहास : प्रो. गोपाल राय, पृ0 156
16. अमर अभिलाषा : आचार्य चतुरसेन शास्त्री, पृ0 233
17. वही, पृ0 20–21
18. आत्मदाह : आचार्य चतुरसेन शास्त्री, पृ0 5
19. वही, पृ0 79
20. वही, पृ0 80
21. नीलमणि : आचार्य चतुरसेन शास्त्री, पृ0 6
22. वही, पृ0 18–19
23. वही, पृ0 60
24. वही, पृ0 61
25. वही, पृ0 122–123
26. वही, पृ0 123
27. नरमेध : आचार्य चतुरसेन शास्त्री, पृ0 17
28. वही, पृ0 49
29. हृदय की परख : आचार्य चतुरसेन शास्त्री, पृ0 97–98
30. अपराचिता : आचार्य चतुरसेन शास्त्री, पृ0 6
31. अदल–बदल : आचार्य चतुरसेन शास्त्री, भूमिका
32. धर्मपुत्र : आचार्य चतुरसेन शास्त्री, पृ0 62
33. गोली : आचार्य चतुरसेन शास्त्री, पृ0 46–47
34. आभा : आचार्य चतुरसेन शास्त्री, पृ0 08

ISSN : 2319-7137, Volume: 15/Issue: 01, January-June : 2022

आचार्य चतुरसेन शास्त्री का ऐतिहासिक एवं सांस्कृतिक उपन्यास

डॉ0 सुरेन्द्र पाण्डेय
असिस्टेंट प्रोफेसर, हिन्दी विभाग, कूबा पी0जी0 कॉलेज,
दरियापुर, नेवादा, आजमगढ़

इतिहास के अन्तर्गत अतीत के तथ्यों का कालक्रम से संग्रह किया जाता है। जिसका प्रमुख आधार प्राप्त शिलालेख, मुद्रा, ताम्र–पत्र, हस्तलिखित प्रतियाँ, यात्रियों का विवरण आदि निहित रहती है। इस कारण इतिहास में यथार्थ का समन्वय आवश्यक है। इन्हीं प्राप्त सामग्रियों के आधार पर ही वह युग विशेष को हमारे सम्मुख साकार कर सकता है। वह किंचित मात्र भी इतिहास को न घटा सकता है और न बढ़ा सकता है न ही कोई परिवर्तन कर सकता है।

इतिहास विश्वास की नहीं, विश्लेषण की वस्तु है। इतिहास मनुष्य का अपनी परम्परा में आत्म–विश्लेषण है। जैसे नदी में प्रति क्षण नवीन जल बहने पर भी नदी का अस्तित्व और उसका नाम नहीं बदलता वैसे ही किसी में जन्म–मरण की निरन्तर क्रिया और व्यवहार के परिवर्तन से वह जाति नहीं बदल जाती।[1]

ऐतिहासिक उपन्यास दो शब्दों के योग से बना है– इतिहास और उपन्यास। अर्थात् जिस उपन्यास में इतिहास हो वह ऐतिहासिक उपन्यास कहा जायेगा। इसका स्पष्ट अर्थ यह है कि ऐतिहासिक उपन्यासों का प्राण ऐतिहासिक वातावरण है। उपन्यासकार अपने उपन्यासों में जितनी कुशलता के साथ ऐतिहासिक वातावरण की सृष्टि कर सकेगा वह ऐतिहासिक उपन्यास उतना ही अधिक प्रभावशाली होगा।

ऐतिहासिक उपन्यास को हम तभी सफल मानेंगे जब उसमें इतिहास तथा उपन्यास दोनों की विशेषताएँ निहित होंगी। उसमें इतिहास तत्त्व भी होगा और उपन्यास तत्त्व भी, इतिहास की पृष्ठभूमि में इतिहास लिखा जाता है। इतिहास घटित होता नहीं दिखाया जाता है। इतिहास तो केवल आधार भूमि है जिसको लक्ष्य बनाकर उपन्यास लिखा जाता है। ''ऐतिहासिक उपन्यास इतिहास की सच्चाई को रखते हुए भी प्रधानतया उपन्यास है यह एक निर्विवाद सत्य है। फलतः जिसके पास उपन्यास कला का अभाव है, वह लेखक यदि इतिहास का निष्णात पण्डित भी हो तब भी उत्तम ऐतिहासिक उपन्यासकार बन सकेगा, इसमें सन्देह नहीं है।''[2]

ऐतिहासिक उपन्यासकार को इतिहास, मानव–मन और जीवन की वास्तविकता को उपन्यास कला के ढंग में रंग कर रखना पड़ेगा। तभी वह सकल उपन्यास की श्रेणी में आ सकेगा। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल के विचार से, ऐतिहासिक उपन्यासकार को तभी ऐतिहासिक उपन्यासों में हाथ लगाना चाहिए जब तक कि उसे भिन्न–भिन्न कालों की सामाजिक स्थिति और संस्कृति का अलग–अलग विशेष रूप से अध्ययन और उस सामाजिक स्थिति का सूक्ष्म ब्यौरों की अपनी ऐतिहासिक कल्पना द्वारा उद्भावना संभव हो। सफल ऐतिहासिक तत्त्व प्राप्त होगा। साथ ही कल्पना का प्रयोग होते हुए भी इतिहास दिखलाई देगा।[3] श्री पदुमलाल पुन्नालाल बख्शी के शब्दों में– ''औपन्यासिक पात्रों के निर्माण में कल्पना ही काम करती है, पर पात्रों के चरित्र विकास में तत्कालीन परिस्थितियों का ही प्रभाव पड़ता है। इसलिए ऐतिहासिक उपन्यासों के पात्रों के चरित्र में हम लोग तत्कालीन समाज की सारी विशेषताएँ जान लेते है। उस युग की विचारधारा, आदर्श और प्रचलित रीति–नीति के कारण मनुष्यों के व्यक्तिगत

जीवन की गति, किस प्रकार एक विशेष परिस्थिति में पड़ कर क्रमशः विकसित होती है यह हमें ऐतिहासिक उपन्यासों से ज्ञात हो सकता है।''[4]

कवीन्द्र रवीन्द्रनाथ ठाकुर का कथन है कि ''उपन्यास के अन्दर इतिहास के मिल जाने से जो एक विशेष रस संचारित हो जाता है, उपन्यासकार एक मात्र उसी रस ऐतिहासिक रस के लालची होते हैं, उसके सत्य की उन्हें कोई विशेष परवाह नहीं होती। यदि कोई व्यक्ति उपन्यास में इतिहास की उस विशेष गन्ध और स्वाद से ही एकमात्र सन्तुष्ट न हो और उसमें से अखंड इतिहास को निकालने लगे तो वह साग के बीच में साबित जी, धनिया हल्दी और सरसो ढूंढेगा। मसाले के साबित रखकर जो व्यक्ति साग को स्वादिष्ट बना सकते हैं वे बनाएँ और जो उसे पीसकर एक सम कर देते हैं उसके साथ भी हमारा कुछ झगड़ा नहीं। क्योंकि, यहाँ स्वाद ही लक्ष्य है मसाला तो उपलक्ष्य मात्र है।''[5]

इतिहास के अँचल में छिपने या अतीतजीवी होने की प्रवृत्ति सदैव पलायनवृत्ति का द्योतक नहीं होती। अतीत को वर्तमान से अधिक गौरवपूर्ण मानकर उसके पुनः स्थापना की प्रवृत्ति के साथ ही अतीत को वर्तमान का उपजीव्य बनाने, जीवन की नयी व्याख्याओं को इतिहास के परिवेश में प्रस्तुत करने या इतिहास के घटना–सत्य को जीवन रस से सम्पृक्त करके उसे नया अर्थ प्रदान करने की प्रवृत्तियाँ मिल–जुलकर लेखकों को इतिहास की ओर ले जाती हैं।[6] इतिहास को कृत्रिम रूप देकर कोरी कल्पना का आश्रय लिया जाएगा तो ऐसे ऐतिहासिक उपन्यास पठनीय और आकर्षक अवश्य होंगे किन्तु अतीत के प्रति किसी प्रकार का लगाव या मोह उसके हृदय में नहीं रहेगा। हिन्दी के राहुल सांकृत्यायन तथा चतुरसेन शास्त्री जैसे मूर्धन्य उपन्यासकार भी इसी पक्ष का समर्थन करते हैं कि इतिहास में यथा संभव परिवर्तन कर उपन्यास लिखना चाहिए। आचार्य चतुरसेन शास्त्री के मतानुसार, ऐतिहासिक उपन्यास, उपन्यास है, उसमें इतिहास नहीं ढूँढना चाहिए। ऐसा करना मूर्खता है। इतिहास में परिवर्तन होता रहता है। फिर भला इतिहास कैसे दिया जा सकता है ? ऐतिहासिक उपन्यास कोई इतिहास नहीं, जिससे इतिहास ज्ञान सीखा जाए। उसमें तो एक कहानी मिलेगी। इतिहास काल विशेष की चीज है। ऐसी चीज क्यों न दी जाए जो युगों से ऊपर की हो, जो शाश्वत हो, सार्वभौम हो, वह है 'इतिहास–रस'। अतः पाठकों को यह आशा नहीं करनी चाहिए कि उपन्यास काव्य या कहानी को पढ़कर वे ऐतिहासिक ज्ञान अर्जन करेंगे। ऐसी पुस्तकों में तो उन्हें इतिहास के स्थान पर इतिहास रस की ही प्राप्ति होगी।[7]

इतिहास के कठोर सत्य को यदि लेखक अपना ले और उसके आधार पर उपन्यास लिखे तो वह पुस्तक उपन्यास न होकर स्वयं एक इतिहास रह जाएगी। पढ़ने वाले फिर 'रसहीन' या 'कल्पनाहीन' इतिहास को उपन्यास में न ढूँढकर इतिहास ही पढ़ना अधिक उचित समझेंगे। इसलिए रस की कल्पना की है वह उचित ही है। ऐतिहासिक उपन्यासकार कल्पना को इस रूप में अपनाता है कि वह इतिहास में मिलजुल कर स्वयं इतिहास स्वरूप हो जाए। ऐतिहासिक उपन्यासकार को इतिहास मानव–मन और जीवन की वास्तविकता को उपन्यास कला के रंग में रंगकर रखना पड़ेगा। सफल ऐतिहासिक उपन्यासकार में इतिहास की सच्चाई भी मिलती है और कल्पना का मनोरंजन भी।

निष्कर्षतः हम कह सकते है कि ऐतिहासिक उपन्यास में इतिहास भी हो और कल्पना भी। अर्थात् इतिहास में कल्पना हो, पर वह कल्पना इतिहास की विरोधनी न हो, उसकी पोषिका हो, फिर भी यह स्मरणीय है कि ऐतिहासिक उपन्यास पहले है इतिहास बाद में। यदि हमें इतिहास के ही दर्शन करने हैं या हमें इतिहास ही खोजना है तो इतिहास के ग्रन्थ यथेष्ठ है। इतिहास का 'कुछ' हम उपन्यास में खोजते हैं, 'कुछ' वही है, जिसे आचार्य चतुरसेन शास्त्री ने 'इतिहास रस' कहा है।

खवास का ब्याह (पूर्णाहुति)

आचार्य चतुरसेन शास्त्री का यह पहला ऐतिहासिक उपन्यास है, जिसका प्रकाशन सन् 1932 ई0 में हुआ था। इसका एक परिवर्द्धित रूप 'पूर्णाहुति' के नाम से भी सन् 1948 ई0 में प्रकाशित हुआ।

'खवास का ब्याह' राजपूत काल के उतरार्द्ध के वैभवपूर्ण इतिहास पर आधारित उपन्यास है, जिससे तत्कालीन राजपूतों के जीवन के रेखाचित्र का बोध होता है। वह युग राजपूतों की वीरता, वैभव, आत्मगौरव तथा शक्ति के चरमोत्कर्ष का था। इस उपन्यास की रचना का उद्देश्य भारत की सामाजिक, धार्मिक, राजनीतिक एवं सांस्कृतिक परिस्थितियों का सफल चित्रण करना है।

प्रस्तुत उपन्यास का कथानक महाराज पृथ्वीराज चौहान के जीवन से सम्बन्धित है। स्वयं उन्हीं के शब्दों में ''इलाहाबाद प्रवास में मैंने पृथ्वीराज रासों का अध्ययन किया और उसी पर आधारित 'खवास का ब्याह' नामक उपन्यास लिखा।''[8]

कन्नौज के राजा जयचन्द की कन्या संयोगिता पिता की एकमात्र दुलारी पुत्री थी। पिता के असाधारण दुलार ने उसे हठी बना दिया था। एक दिन संयोगिता अपनी कर्नाटकी दासी से महाराज पृथ्वीराज के रूप–सौन्दर्य, तेज, वैभव, पराक्रम, दानशीलता का आकर्षक वर्णन सुनती है और उसी समय से पृथ्वीराज की कल्पना में खोकर उसे प्राप्त करने की अभिलाषा करने लगती है। वह निश्चय कर लेती है कि यदि विवाह करूंगी तो पृथ्वीराज के साथ अन्यथा नहीं। उधर पृथ्वीराज भी संयोगिता का रूप वर्णन सुनकर उसे प्राप्त करने के लिए विकल हो उठता है। इधर जयचन्द अपनी कन्या संयोगिता के लिए स्वयंवर रचता है। साथ ही राजसूय–यज्ञ भी आरम्भ करता है। किन्तु द्वेषवश वह पृथ्वीराज को नहीं बुलाता। उसका अपमान करने के लिए पृथ्वीराज को स्वर्ण प्रतिमा बनाकर वह द्वारपाल के स्थान पर खड़ा कर देता है। राजकुमारी संयोगिता सभी राजाओं की उपेक्षा कर जयमाल पृथ्वीराज की स्वर्ण प्रतिमा को पहना देती है। पृथ्वीराज संयोगिता को हरण करने के लिए चन्दबरदाई के साथ परोक्ष रूप में 'खवास' बनकर कन्नौज आते हैं। यहीं संयोगिता तथा पृथ्वीराज का नाटकीय ढंग से मिलन होता है। पृथ्वीराज उसका अपहरण कर अपनी सेना के साथ जयचन्द की अपारवाहिनी को रौदता हुआ अपनी राजधानी दिल्ली जा पहुँचता है। जयचन्द का हृदय अपने पुत्री के आँखों में दैन्य भाव को देखकर द्रवित हो जाता है। वह अपने पुरोहित को विवाह की सारी सामग्री तथा अतुल दहेज सम्पदा देकर दिल्ली पृथ्वीराज के पास भेजता है। फिर पृथ्वीराज और संयोगिता का विधिवत् विवाह संस्कार कराया जाता है। नव–विवाहिता संयोगिता के अनुपम रूप के सागर में डूबकर राजा पृथ्वीराज सारे संसार को भूल जाता है।[9]

गज़नी का शासक शहाबुद्दीन गोरी, पृथ्वीराज से सात बार टक्कर ले चुका था। पृथ्वीराज ने सातों बार ही शहाबुद्धीन गोरी को पकड़ कर छोड़ दिया था। पृथ्वीराज नव–विवाहिता संयोगिता के रूप में स्वयं को भूलकर राज्य कार्य को एकदम विस्मृत कर देता है। इसी अवसर पर शहाबुद्दीन गोरी भारत की दुर्बल स्थिति को देखकर आक्रमण कर देता है। दोनों में भयंकर युद्ध होता है किन्तु अन्त में पृथ्वीराज, शहाबुद्दीन गोरी द्वारा पराजित होकर बन्दी होता है। गौरी उसे बन्दी बनाकर गजनी ले जाता है। वहाँ पर उसके साथ अमानुषिक अत्याचार होते हैं, उसको नेत्रहीन कर दिया जाता है। इसी समय पृथ्वीराज का मित्र चन्दबरदाई छद्म वेश में उसके समीप पहुँच जाता है। यहीं वह पृथ्वीराज के शब्द–भेदी बाण के चमत्कार का प्रदर्शन करवा कर, शहाबुद्दीन गोरी को मरवा देता है। अन्त में पृथ्वीराज और चन्दबरदाई स्वयं आत्महत्या कर लेते हैं।

इस प्रकार पृथ्वीराज और चन्दबरदाई ने साका रचकर वीर–यज्ञ की 'पूर्णाहुति' दी। एक दिन एक ही नक्षत्र में जन्में, साथ–साथ पले, बड़े और सुख–दुःख के साथी रहे, फिर एक साथ, एक ही क्षण में लोहे की तीखी धार का रस–पान कर अमर हुए।

प्रस्तुत उपन्यास मूलतः 'पृथ्वीराज रासो' पर आधारित है जैसा कि पूर्व में स्पष्ट कर दिया है। यदि उसमें साम्य उत्पन्न किया जाए तो सम्पूर्ण घटनाएँ रासो के आधार पर प्रमाणिक है किन्तु रासो ग्रन्थ इतिहास की दृष्टि से प्रमाणिक नहीं कहा जा सकता जैसा कि विद्वानों तथा इतिहासकारों ने कहा है। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल इस ग्रन्थ को पृथ्वीराज के समसामयिक किसी कवि की रचना होने में पूरा

सन्देह किया है और उसे 16वीं शताब्दी में लिखा हुआ एक जाली ग्रन्थ माना है।[10] रासों में चंगेज, तैमूर आदि कुछ पीछे के नाम आ जाने से यह सन्देह और भी पुष्ट हो जाता है। प्रसिद्ध इतिहासवेता रायबहादुर पंडित गौरीशंकर हीराचंद ओझा रासों में वर्णित घटनाओं तथा संवतों को बिल्कुल भाटों की कल्पना मानते हैं।[11] 'पृथ्वीराज रासो' चाहे जैसा ग्रन्थ हो मेरा प्रयोजन उसके ऐतिहासिक सत्यता को प्रमाणित करना नहीं है बल्कि प्रस्तुत उपन्यास में सांस्कृतिक मूल्यों को दिखाना है।

प्रस्तुत उपन्यास में आचार्य जी ने तत्कालीन सांस्कृतिक मूल्यों को उठाया है। संयोगिता की शिक्षिका एक स्थान पर उसे सांस्कृतिक मूल्य 'विनय' की शिक्षा देती हुई कहती है– ''हे कुमारी, जैसे भक्ति के बिना कर्म शुभ नहीं होता उसी भाँति स्नेहहीन स्त्री का जीना वृथा है। बिना विनय के जीवन का सुख नहीं मिलता है। हे राजकुमारी, अभिमान से स्नेह भंग होता है, सज्जन भी दुर्जन दीख पड़ते हैं। जुड़ा हुआ नाता टूट जाता है और आत्मिक गुणों का विकास होता है। हे पुत्री, जीवन में 'विनय' दीपक के समान है। जिस प्रकार दीपक बिना घर, प्राण बिना देह और बुद्धि बिना उपभोग शुभ नहीं, उसी प्रकार विनय बिना स्त्री शुभ नहीं। जैसे जीवन का सार आत्मा है, वैसे ही सुख का सार विनय है, हे प्यारी राजकुमारी विनय ही से दो तन एक प्राण हो जाते हैं।[12]

धार्मिक अन्धविश्वास तथा ब्राह्मणों की संकुचित तथा संकीर्ण शिक्षाओं के कारण जाति के अन्दर एक ऐसी मानसिक शिथिलता पैदा हो गयी थी कि जन–साधारण के साथ–साथ शासक वर्ग भी इसकी राजनीतिक तथा सामरिक स्वधीनता तथा सुरक्षा की ओर से उदासीन हो गये थे। पृथ्वीराज का बार–बार गोरी को पकड़कर छोड़ देने के पीछे केवल धार्मिक संस्कार थे कि हारे हुए शत्रु का वध वर्जित है। ब्राह्मण ज्योतिष के आधे–अधूरे ज्ञान से जन–साधारण को भयभीत कर रहे थे। ''ब्राह्मण ने कहा– हाँ, देखो। यह राजनंदिनी की गणना है– मंगल, बुध, शुक्र, शनि और चन्द्रमा। ये ग्रह चौथे स्थान में गोचर में पड़े हैं। गुरु और केतु केन्द्र में तथा राहु अष्टम है। जन्म से पंचम राहु और केतु होने से यह स्पष्ट है कि उसका जन्म महारक्तपान के लिए ही हुआ है।''[13]

आचार्य चतुरसेन शास्त्री ने प्रस्तुत उपन्यास में प्रत्येक दिशाओं एवं कोणों को देवताओं से सम्बन्ध कर भारतीय संस्कृति के सनातन रूप को मुखरित किया है– ''पूर्व दिशा का देवता इन्द्र हैं, अग्निकोण का अग्नि, दक्षिण का यम, नैऋत्य का राक्षस, पश्चिम का वरूण और वायव्य का वायु है, उत्तर का कुबेर और ईशान का ईशान है, आकाश में ब्रह्मा और पाताल में शेष हैं।''[14]

प्राचीन समय में कन्याओं का स्वयंवर रचना और उसके द्वारा मनचाहा वर चुनने की छूट देना 'सांस्कृतिक मूल्य' माना जाता था। क्षत्रियों राजकुमारों द्वारा सुन्दर कन्याओं का हरण कर विवाह करना भी संस्कृति के अन्तर्गत आता था, जो आज पूर्णत बदल गया है। पृथ्वीराज, संयोगिता का अपहरण कर अपनी सेना के साथ, जयचन्द की अपारवाहिनी से लड़ते हुए, अपनी राजधानी दिल्ली जा रहा था, उसी समय संयोगिता की कातर दृष्टि पिता जयचन्द की आँखों में समा जाती है और वह लौटकर अपनी राजधानी कन्नौज आ जाता है। ''जयचन्द की आँखों में प्राणों से प्यारी पुत्री का वह सूखा, करुण मुख धूम गया। उन्होंने आँखों से आँसू गिराकर सेना को युद्ध से विरक्त किया और वहीं से पृथ्वी की पाँच परिक्रमा देकर यह कहते हुए कन्नौज को लौट चले कि– हे कन्नौज के यज्ञ को बिगाड़ने वाले और मेरी प्राण प्रिय पुत्री को हरने वाले पृथ्वीराज, दिल्ली का राज्य अपनी प्रतिष्ठा और लाज आज तुझे दान देकर मैं कन्नौज को जाता हूँ।''[15] वह अपने पुरोहित को विवाह का सामग्री तथा अतुल देहज देकर दिल्ली पृथ्वीराज के पास भेजते हैं। इस प्रकार एक भारतीय पिता का अपनी पुत्री के प्रति जो सांस्कृतिक मूल्य था, उसके द्वारा पूरा किया जाता है।

निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि द्वितीय महायुद्ध में सम्पूर्ण विश्व के बड़े–बड़े राष्ट्रों का सहयोग था। जो बरबर बन कर पुनः समाप्त हो गये। आचार्य जी ने मुख्य अणुबम का हिरोशिमा और नागासाकी पर गिरना तथा अजेय शक्ति किस प्रकार से वैज्ञानिक आविष्कारों का शिकार बनी, उस पर विशेष रूप

से प्रकाश डालने की चेष्टा की है। 'ईदो' उपन्यास 'सोना और खून' शृंखला को जोड़ने वाला द्वितीय महायुद्ध की पृष्ठभूमि पर आधारित है। विज्ञान मनुष्य के विनाश का कारण बना हिटलर जिस अणुबम के प्रयोग का प्रयत्न करता रह गया। अमेरिका उसमें सफल हुआ किन्तु मानवता का संहार करके। इसी के साथ द्वितीय विश्वयुद्ध समाप्त हो गया।

संदर्भ :

1. यशपाल : दिव्या, प्राक्कथन
2. ऐतिहासिक उपन्यास और उपन्यासकार : डॉ. गोपीनाथ तिवारी, पृ0 3
3. हिन्दी साहित्य का इतिहास : आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, पृ0 293
4. हिन्दी कथा साहित्य : पदुमलाल पुन्नालाल बख्शी, पृ0 227
5. पदुमलाल पुन्नालाल बख्शी द्वारा सम्पादित पुस्तक 'साहित्य शिक्षा' रवीन्द्रनाथ ठाकुर के 'ऐतिहासिक उपन्यास' नामक लेख, पृ0 86 से उद्धृत
6. हिन्दी का गद्य–साहित्य : डॉ. रामचन्द्र तिवारी, पृ0 201
7. वैशाली की नगरबधू : आचार्य चतुरसेन शास्त्री, भूमिका
8. मेरी आत्म कहानी : आचार्य चतुरसेन शास्त्री, पृ0 183
9. यही पर 'खवास का ब्याह' उपन्यास की कथा समाप्त हो जाती है और आगे की कथा इसका परिवद्धित रूप 'पूर्णाहुति' का है।
10. हिन्दी साहित्य का इतिहास : आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, पृ0 23
11. वही, पृ0 23
12. खवास का ब्याह : आचार्य चतुरसेन शास्त्री, पृ0 18–19
13. खवास का ब्याह : आचार्य चतुरसेन शास्त्री, पृ0 20
14. वही, पृ0 31
15. वही, पृ0 129

ISSN : 2319-7137, Volume: 15/Issue: 01, January-June : 2022

इस्लामिक शिक्षण संस्थाओं में पढ़ाने वाले शिक्षकों में आधुनिक संचार माध्यम के प्रति जागरूकता का अध्ययन

शोध निर्देशक
विनय कुमार सिंह
विभागाध्यक्ष
शिक्षक–शिक्षा विभाग
तिलकधारी स्नातकोत्तर महाविद्यालय,
जौनपुर (उ0प्र0)

शोधकर्त्री
नाजिया
एम0एड्0, नेट
तिलकधारी स्नातकोत्तर महाविद्यालय,
जौनपुर (उ0प्र0)

सारांश

समस्या कथन **इस्लामिक शिक्षण संस्थाओं में पढ़ाने वाले शिक्षकों में आधुनिक संचार माध्यम के प्रति जागरूकता का अध्ययन** करना है। अध्ययन के उद्देश्यों का निर्माण शहरी क्षेत्र के इस्लामिक शिक्षण संस्थाओं के विज्ञान, कला एवं उर्दू/अरबी शिक्षकों के आधार पर किया गया है। अध्ययन में वर्णनात्मक अनुसंधान के अन्तर्गत सर्वेक्षण विधि का प्रयोग किया गया है। प्रस्तुत अध्ययन में जनसंख्या के रूप में वाराणसी जनपद के केन्द्र/राज्य द्वारा मान्यता प्राप्त इस्लामिक शिक्षण संस्थाओं के सभी शिक्षकगण हैं। न्यादर्श के लिए शोधकर्त्री ने सर्वप्रथम वाराणसी जनपद के इस्लामिक शिक्षण संस्थाओं का चयन किया। तत्पश्चात् न्यादर्श में इस्लामिक शिक्षण संस्थाओं में अध्यापनरत् 100 शिक्षकों को सम्मिलित किया गया। जिनमें से 50 शिक्षक शहरी (20 विज्ञान वर्ग, 20 कला वर्ग एवं 10 उर्दू/अरबी) एवं 50 शिक्षक ग्रामीण (20 विज्ञान वर्ग, 20 कला वर्ग एवं 10 उर्दू/अरबी) के है। प्रस्तुत अध्ययन में 'आधुनिक संचार माध्यम जागरूकता' सम्बन्धी प्रश्नावली का निर्माण अध्ययनकर्त्री ने अपने मार्गदर्शक की सहायता से किया है, जिसका उद्देश्य इस्लामिक शिक्षण संस्थाओं में अध्यापनरत् शिक्षकों में संचार माध्यम के प्रति ज्ञान, कौशल एवं बोध का पता लगाना है। आँकड़ों के विश्लेषण के लिए मध्यमान, मानक विचलन, मानक त्रुटि एवं टी–अनुपात आदि सांख्यिकी विधियों का भी प्रयोग किया गया है। अध्ययन के निष्कर्ष में पाया गया कि– शहरी एवं ग्रामीण क्षेत्र के इस्लामिक शिक्षण संस्थाओं के विज्ञान वर्ग एवं कला वर्ग के शिक्षकों तथा उर्दू/अरबी तथा अन्य विषयों के शिक्षकों में आधुनिक संचार माध्यमों के प्रति समान जागरूकता स्तर तथा आधुनिक संचार माध्यमों का शिक्षण अधिगम प्रक्रिया में व्यवहारिक प्रयोग समान है।

मुख्य शब्द– इस्लामिक शिक्षण संस्थान, शिक्षक, आधुनिक संचार माध्यम, जागरूकता

प्रस्तावना–

शिक्षा के उद्देश्यों की प्राप्ति तब ही सम्भव है जब शिक्षण कार्य बालक की रूचि, रूझान, योग्यता व अभिक्षमता के अनुसार किया जाए अर्थात् बालक की वैयक्तिक भिन्नता को ध्यान में रखकर किया जाए। प्रत्येक बालक एक दूसरे से भिन्न होता है उनमें व्यक्तिगत भिन्नताएँ पाई जाती है प्रत्येक बालक की रूचि अभिक्षमता तथा अधिगम आवश्यकताएं भिन्न–भिन्न होती हैं। अतः बालक के सर्वांगीण विकास हेतु यह आवश्यकता है कि शिक्षण वैयक्तिक भिन्नता के अनुरूप हो।

वर्तमान समय में शिक्षण कार्य को प्रभावी बनाने के लिए शिक्षण मशीन कम्प्यूटर सहायक अनुदेशन, रेडियो, बहुमाध्यम उपागम आदि का प्रयोग किया जा रहा है। शिक्षण–अधिगम को सरल, रूचिकर व प्रभावी बनाने के लिए विभिन्न दृश्य–श्रव्य सामग्रियों, यथा–ओवरहेड प्रोजेक्टर, टी0वी0 आदि का प्रयोग किया जा रहा है। रूचि का सृजनात्मकता में सीधा सम्बन्ध है। बालक की जिस वस्तु–क्रिया या व्यक्ति में रूचि होती है। वह उसी कार्य को अच्छे ढंग से कर सकता है तथा कुछ नया या मौखिक कार्य करने का प्रयास करता है। संचार रूचि जाग्रत करने का महत्वपूर्ण साधन है।

वर्तमान में संचार माध्यमों का विकास तीव्र गीत से हो रहा है किन्तु शिक्षा जगत में संचार माध्यमों की भूमिका अभी हमारा देश कभी पीछे है। संचार माध्यमों के द्वारा शिक्षा को जोड़ने और संचार माध्यमों के द्वारा विद्यार्थियों को शिक्षित करने हेतु भारत देश विकासशील देशों में एक है। हमारे देश में संचार माध्यमों के द्वारा शिक्षा प्रदान करने हेतु प्रयास जारी ही था कि सन् 2019 में कोविड महामारी ने पूरे देश–विदेश को एक जगह रोक दिया जिससे सामान्य जन–जीवन के साथ–साथ आर्थिक, सामाजिक एवं शैक्षिक इत्यादि गतिविधियों में भी ताला लग गया।

WHO ने 11 मार्च 2020 को कोविड–19 को एक महामारी घोषित किया। भारत में कोविड–19 का पहला केस 30 जनवरी 2020 को केरल में पाया गया, जो कि वहुान से आया था (Wikipedia)। भारत में कोविड–19 के कारण पहली मृत्यु 12 मार्च 2020 को हुयी। इसने जून 2020 तक दुनिया के 4. 5 मिलियन से अधिक लोगों को अपने प्रभाव में ले लिया था। UNESCO की माने तो इसने विश्व के समस्त छात्र जनसंख्या के 90 प्रतिशत तक की जीवन शैली को अपने प्रभाव में ले लिया था। समस्त दुनिया के लगभग 120 करोड़ से अधिक छात्र एवं युवा इससे प्रभावित हुए। भारत में 32 करोड़ से अधिक छात्र कोविड–19 के लिए निर्धारित सरकारी बाधाओं एवं व्यापक लॉक–डाउन से प्रभावित हुए। यूनेस्को की रिपोर्ट के आधार पर भारत के दो सर्वाधिक प्रभावित छात्र समूह रहे, पहला प्राइमरी स्तर के छात्र (14 करोड़) दूसरे माध्यमिक स्तर के छात्र (13 करोड़)।

कोविड–19 की भयावहता के दृष्टिगत WHO ने सामाजिक दूरी बनाने के जो दिशानिर्देश जारी किये उसके परिणामस्वरूप पूरी दुनिया में लॉक–डाउन किया जाने लगा। स्कूल, कॉलेज और विश्वविद्यालय तक बन्द किये जाने लगे। सभी कक्षाएँ अचानक बंद कर दी गयी, यहाँ तक की परीक्षाओं को अचानक बीच में ही रोक दिया गया, प्रवेश परीक्षाओं की सारी गतिविधियाँ बंद कर दी गयी।

महामारी के प्रसार को रोकने के लिए भारत सरकार द्वारा अनेक कदम उठाये गये। 16 मार्च 2020 को भारत सरकार ने पूरे भारत वर्ष की सभी शिक्षण संस्थाओं को पूर्ण बन्द करने का आदेश दिया। सी.बी.एस.ई., आई.सी.एस.ई. के साथ–साथ सभी परीक्षा बोर्डों ने तथा समस्त विश्वविद्यालयों ने अपनी परीक्षाएँ स्थगित कर दी। संघ लोक सेवा आयोग, लोक सेवा आयोग (समस्त राज्य सरकार), स्टाफ सलेक्शन कमीशन, उच्च शिक्षा सेवा चयन बोर्ड, माध्यमिक शिक्षा सेवा चयन बोर्ड के साथ–साथ सभी परीक्षा नियामकों ने अपने कार्यक्रम तत्काल प्रभाव से रद्द कर दिये। यहाँ तक कि न्यायालयों में ताला लग गया, सरकारी आदेश के अधीन प्रशासन ने अनुपालन शुरू किया तो सड़के वीरान हो गयी। 22 मार्च 2020 को भारत सरकार ने एक दिन का जनता कर्फ्यू घोषित किया, उसके बाद राज्य सरकारें एवं केन्द्र सरकार ने मिलकर विभिन्न स्तरों पर लॉक–डाउन लगा दिया। भारत सरकार ने महामारी के दृष्टिगत लॉक–डाउन लगा दिया। भारत सरकार ने महामारी के दृष्टिगत लॉक–डाउन को समय–समय पर विस्तारित भी किया एवं सुरक्षा एवं बचाव कार्य को तेजी से सक्रिय किया। 19 जून 2020 को लॉक डाउन 6.00 (प्रभावकाल 1 जुलाई 31 जुलाई 2020) में जनता को कुछ राहत पहुँचाने के उद्देश्य से काफी ढील (स्वतंत्रता) दी गयी। परन्तु इस दौरान भारत सरकार एवं लगभग सभी राज्य सरकारों ने शैक्षिक संस्थाओं को बंद रखा एवं ऑनलाइन कक्षाओं के संचालन की प्रविधियों को अपनाना शुरू किया।

इन प्रयासों के कारण शिक्षा में एक नयी प्रकार की एवं उत्तम किस्म की प्रवृत्ति देखने को मिली जो कि अब डिजिटल मोड में कार्य कर रही थी। इस महामारी के पैर ने ऑन लाइन लर्निंग–टीचिंग सबसे सफल विकल्प बनके उभरी (प्रवृत जेना, 2020b)। और भारत सरकार की डिजिटल इण्डिया मुहिम की प्रासंगिकता भी प्रमाणित हुयी। तकनीकि आधारित शिक्षा परम्परागत शिक्षा की तुलना में सार्थक परिणाम दिये। भारत सरकार ने परिस्थितियों को दृष्टिगत रखते हुए डिजिटल तकनीकि तक लोगों की पहुँच को आसान बनाने के लिए अनेक व्यवस्थायें की। शैक्षिक चैनेल, ऑन लाइन पोर्टल, (टी. वी. के माध्यम से), रेडियो के शैक्षिक कार्यक्रम जैसी अनेक सुविधाओं का विस्तार किया गया। लॉक डाउन के दौरान छात्रों एवं शिक्षकों ने व्यापक रूप से सोशल मीडिया उपकरणों का प्रयोग किया जैसे– व्हाट्सऐप, जूम, गूगल मीट, टेलीग्राम, यू–ट्यूब लाइब, फेसबुक लाइव आदि।

अतः अध्ययनकर्त्री द्वारा वर्तमान शिक्षा व्यवस्था में संचार माध्यमों की आवश्यकता एवं महत्व को देखते हुए यह विचार किया गया कि क्या भारत में सामान्य शिक्षा के साथ–साथ अल्पसंख्यकों को दी

जाने वाली शिक्षा व्यवस्था अर्थात् इस्लामिक शिक्षण संस्थानों में भी संचार माध्यम का प्रयोग कर विद्यार्थियों को शिक्षित किया जा रहा है। साथ ही इस्लामिक शिक्षण संस्थाओं में पढ़ाने वाले शिक्षकों में संचार माध्यम के प्रति जागरूकता कितनी है? और जागरूकता एवं जानकारी है तो क्या वह संचार माध्यम का व्यवहारिक प्रयोग शिक्षण अधिगम प्रक्रिया में करते हैं या नहीं? इस प्रश्न का उत्तर खोजने के लिए अध्ययनकर्त्री ने अपने विषय का चयन किया है जो वर्तमान इस्लामिक शिक्षण संस्थाओं के साथ–साथ शिक्षकों एवं विद्यार्थियों के दृष्टिकोण से लाभकारी सिद्ध हो सकता है।

अध्ययन का उद्देश्य–

1. शहरी क्षेत्र के इस्लामिक शिक्षण संस्थाओं के विज्ञान वर्ग एवं कला वर्ग के शिक्षकों में आधुनिक संचार माध्यमों के प्रति जागरूकता स्तर का तुलनात्मक अध्ययन करना।
2. शहरी क्षेत्र के इस्लामिक शिक्षण संस्थाओं के उर्दू/अरबी के शिक्षकों का एवं अन्य विषयों के शिक्षकों से आधुनिक संचार माध्यमों के प्रति जागरूकता स्तर का तुलनात्मक अध्ययन करना।

अध्ययन की परिकल्पनाएँ–

H_{01} शहरी क्षेत्र के इस्लामिक शिक्षण संस्थाओं के विज्ञान वर्ग एवं कला वर्ग के शिक्षकों में आधुनिक संचार माध्यमों के प्रति जागरूकता स्तर में कोई सार्थक अन्तर नहीं है।

H_{02} शहरी क्षेत्र के इस्लामिक शिक्षण संस्थाओं के उर्दू/अरबी के शिक्षकों का एवं अन्य विषयों के शिक्षकों से आधुनिक संचार माध्यमों के प्रति जागरूकता स्तर में कोई सार्थक अन्तर नहीं है।

शोध–विधि–

अध्ययन में वर्णनात्मक अनुसंधान के अन्तर्गत सर्वेक्षण विधि का प्रयोग किया गया है।

जनसंख्या–

प्रस्तुत अध्ययन में जनसंख्या के रूप में वाराणसी जनपद के केन्द्र/राज्य द्वारा मान्यता प्राप्त इस्लामिक शिक्षण संस्थाओं के सभी शिक्षकगण हैं। किसी भी अध्ययन के लिए सम्पूर्ण जनसंख्या से आँकड़े एकत्र करना समय एवं लागत के प्रतिकूल है। अतः अध्ययनकर्त्री ने जनसंख्या का प्रतिनिधित्व करने वाले न्यादर्श का चयन किया है।

न्यादर्श–

न्यादर्श के लिए शोधकर्त्री ने सर्वप्रथम वाराणसी जनपद के इस्लामिक शिक्षण संस्थाओं का चयन किया। तत्पश्चात् न्यादर्श में इस्लामिक शिक्षण संस्थाओं में अध्यापनरत् 100 शिक्षकों को सम्मिलित किया गया। जिनमें से 50 शिक्षक शहरी (20 विज्ञान वर्ग, 20 कला वर्ग एवं 10 उर्दू/अरबी) एवं 50 शिक्षक ग्रामीण (20 विज्ञान वर्ग, 20 कला वर्ग एवं 10 उर्दू/अरबी) के है।

शोध में प्रयुक्त उपकरण–

प्रस्तुत अध्ययन में 'आधुनिक संचार माध्यम जागरूकता' सम्बन्धी प्रश्नावली का निर्माण अध्ययनकर्त्री ने अपने मार्गदर्शक की सहायता से किया है, जिसका उद्देश्य इस्लामिक शिक्षण संस्थाओं में अध्यापनरत् शिक्षकों में संचार माध्यम के प्रति ज्ञान, कौशल एवं बोध का पता लगाना है। प्रश्नावली में उन प्रश्नों को सम्मिलित किया गया है जो शिक्षकों के व्यवहारिक तथा शैक्षिक कार्यों में प्रयुक्त होने वाले संचार माध्यम हो।

सांख्यिकी विधियाँ–

आँकड़ों के विश्लेषण के लिए मध्यमान, मानक विचलन, मानक त्रुटि एवं टी–अनुपात आदि सांख्यिकी विधियों का भी प्रयोग किया गया है।

आँकड़ों का विश्लेषण एवं व्याख्या–

1. शहरी क्षेत्र के इस्लामिक शिक्षण संस्थाओं के विज्ञान वर्ग एवं कला वर्ग के शिक्षकों में आधुनिक संचार माध्यमों के प्रति जागरूकता स्तर की तुलना–

H_{01} शहरी क्षेत्र के इस्लामिक शिक्षण संस्थाओं के विज्ञान वर्ग एवं कला वर्ग के शिक्षकों में आधुनिक संचार माध्यमों के प्रति जागरूकता स्तर में कोई सार्थक अन्तर नहीं है।

सारणी–1

S.No.	Group	N	Mean	SD	$M_1 = M_2$	SE_D	C.R.
1.	Science Group	20	11.45	3.19	0.80	1.12	0.714
2-	Art Group	20	10.65	3.85			

सारणी–1 में शहरी क्षेत्र के इस्लामिक शिक्षण संस्थाओं के विज्ञान वर्ग एवं कला वर्ग के शिक्षकों में आधुनिक संचार माध्यमों के प्रति जागरूकता स्तर का मध्यमान क्रमशः 11.45 तथा 10.65 तथा दोनों वर्गों का मानक विचलन क्रमशः 3.19 तथा 3.85 है जिसकी मानक त्रुटि 1.12 है दोनों समूह के परिगणित क्रान्तिक अनुपात का मान .714 है जो कि .05 तथा .01 सार्थकता स्तर पर स्वायत्तता अंश ∞ के लिए दिये गये सारणी मान 2.03 तथा 2.72 से कम है अतः मध्यमान का अन्तर उक्त सार्थकता स्तर पर असार्थक है और शून्य परिकल्पना स्वीकृत एवं शोध परिकल्पना अस्वीकृत होती है। परिणामतः शहरी क्षेत्र के इस्लामिक शिक्षण संस्थाओं के विज्ञान वर्ग एवं कला वर्ग के शिक्षकों में आधुनिक संचार माध्यमों के प्रति जागरूकता स्तर में कोई सार्थक अन्तर नहीं है।

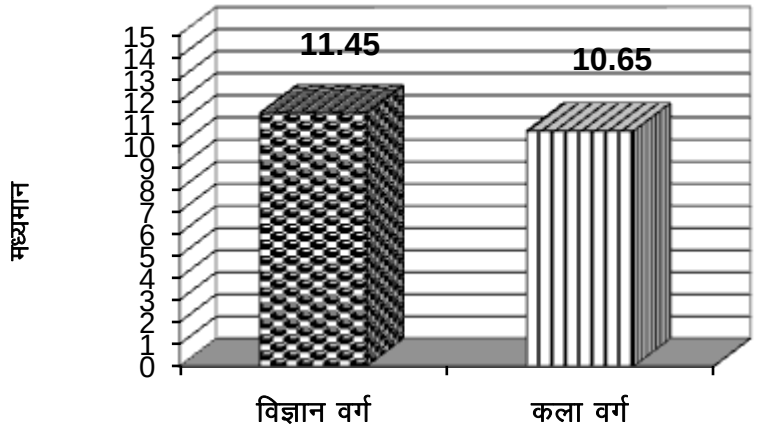

2. शहरी क्षेत्र के इस्लामिक शिक्षण संस्थाओं के उर्दू/अरबी के शिक्षकों का एवं अन्य विषयों के शिक्षकों से आधुनिक संचार माध्यमों के प्रति जागरूकता स्तर की तुलना–

H_{02} शहरी क्षेत्र के इस्लामिक शिक्षण संस्थाओं के उर्दू/अरबी के शिक्षकों का एवं अन्य विषयों के शिक्षकों से आधुनिक संचार माध्यमों के प्रति जागरूकता स्तर में कोई सार्थक अन्तर नहीं है।

सारणी–2

S.No.	Group	N	Mean	SD	$M_1 = M_2$	SE_D	C.R.
1.	Urdu/Arabi	10	9.90	3.33	1.15	1.19	0.966
2-	Art/Science Group	40	11.05	3.56			

सारणी–2 में शहरी क्षेत्र के इस्लामिक शिक्षण संस्थाओं के उर्दू/अरबी के शिक्षकों का एवं अन्य विषयों के शिक्षकों से आधुनिक संचार माध्यमों के प्रति जागरूकता स्तर का मध्यमान क्रमशः 9.90 तथा 11.05 तथा दोनों वर्गों का मानक विचलन क्रमशः 3.33 तथा 3.56 है जिसकी मानक त्रुटि 1.19 है दोनों समूह के परिगणित क्रान्तिक अनुपात का मान .966 है जो कि .05 तथा .01 सार्थकता स्तर पर स्वायत्तता अंश ∞ के लिए दिये गये सारणी मान 2.01 तथा 2.68 से कम है अतः मध्यमान का अन्तर उक्त सार्थकता स्तर पर असार्थक है और शून्य परिकल्पना स्वीकृत एवं शोध परिकल्पना अस्वीकृत होती है। परिणामतः शहरी क्षेत्र के इस्लामिक शिक्षण संस्थाओं के उर्दू/अरबी के शिक्षकों का एवं अन्य विषयों के शिक्षकों से आधुनिक संचार माध्यमों के प्रति जागरूकता स्तर में कोई सार्थक अन्तर नहीं है।

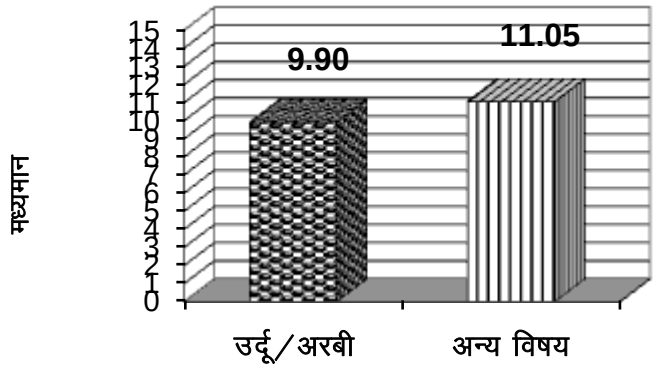

निष्कर्ष–

प्रस्तुत अध्ययन में निम्नलिखित निष्कर्ष प्राप्त हुये–

1. शहरी क्षेत्र के इस्लामिक शिक्षण संस्थाओं के विज्ञान वर्ग एवं कला वर्ग के शिक्षकों में आधुनिक संचार माध्यमों के प्रति लगभग समान जागरूकता स्तर है।
2. शहरी क्षेत्र के इस्लामिक शिक्षण संस्थाओं के उर्दू/अरबी के शिक्षकों का एवं अन्य विषयों के शिक्षकों से आधुनिक संचार माध्यमों के प्रति समान जागरूकता स्तर है।

शहरी एवं ग्रामीण क्षेत्र के इस्लामिक शिक्षण संस्थाओं के विज्ञान वर्ग एवं कला वर्ग के शिक्षकों तथा उर्दू/अरबी तथा अन्य विषयों के शिक्षकों में आधुनिक संचार माध्यमों के प्रति समान जागरूकता स्तर तथा आधुनिक संचार माध्यमों का शिक्षण अधिगम प्रक्रिया में व्यवहारिक प्रयोग समान है। प्राप्त परिणाम के सापेक्ष पूर्व परिणाम में **गोस्वामी, सरिता (2021)** के निष्कर्ष सूचना और संचार प्रौद्योगिकी के प्रति माध्यमिक विद्यालय के शिक्षकों के लिंग आधार पर दृष्टिकोण में कोई महत्वपूर्ण अंतर नहीं है। दोनों संचार तकनीक के इस्तेमाल से वाकिफ हैं। विज्ञान और कला शिक्षकों के दृष्टिकोण में कोई महत्वपूर्ण अंतर नहीं पाया गया है। विज्ञान और कला दोनों के शिक्षक अपने–अपने विषयों में सूचना और संचार के उपयोग को आवश्यक मानते हैं।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

- गुप्ता, के0एन0. (2009). इन्फार्मशन्स एण्ड कम्यूनिकेशन टेक्टनोलॉजी इन् टीचर एजूकेशन, *विद्यामेघ पत्रिका.* अंक 140, 2009, पृ पृः 37–39
- गुप्ता, निधि (2018). उच्चतर माध्यमिक विद्यालयों के छात्रों में तकनीकी शिक्षा का अभिप्राय एवं महत्त्व : ग्वालियर जिले के सन्दर्भ में, *एरियो इण्टरनेशनल रिसर्च जर्नल,* वॉ0 14।
- गुप्ता, पाण्डेय एवं माथुर (2007). सूचना एवं संप्रेषण तकनीकी समर्पित शिक्षक शिक्षा कार्यक्रमों की समीक्षा, पी–एच.डी. शोध प्रबन्ध, रीवां : अवधेश प्रताप सिंह विश्वविद्यालय।
- चन्द्रा, सुभाष एवं अन्य (2015). माध्यमिक शिक्षकों में इन्टरनेट के ज्ञान एवं प्रयोग का विश्लेषणात्मक अध्ययन, *इण्डियन रिसर्च जर्नल मैनेजमेण्ट सोशियोलॉजी एण्ड ह्युमिनिट्ज,* वॉ0 6, इश्शू–4।
- तिवारी, आर.ए. एवं टीकम, एम. (2016). अवरनेस एण्ड यूज ऑफ इन्फार्मेशन एण्ड कम्यूनिकेशन टेक्नोलॉजी बाइ बी.एड. स्टूडेन्ट्स ऑफ पं0 रविशंकर यूनिवर्सिटी, *जर्नल ऑफ रविशंकर यूनिवर्सिटी,* 22, पृ0 44–48
- ली, अरूधंती बी. (2018). अवरनेस एण्ड इम्पैक्ट ऑफ इन्फार्मेशन कम्यूनिकेशन टेक्नोलॉजी ऑन द एकेडेमिक परफार्मेन्स ऑफ द स्टूडेन्ट्स ऑफ सारदा विलास टीचर्स (बी.एड.) कॉलेज, मैसूर : ए स्टडी, *इण्टरनेशनल जर्नल ऑफ लाइब्रेरी एण्ड इन्फार्मेन्शन स्टडीज,* वॉ0 8(4). पृ0 29–35
- शर्मा, विवेक एवं गोदारा, राजेन्द्र (2020). शिक्षक शिक्षा में सूचना व संचार प्रौद्योगिकी के प्रभाव का अध्ययन, *इण्टनेशनल जर्नल ऑफ एप्लाइड रिसर्च,* वॉ0 6(7). पृ0 70–72
- सरकार, तन्मय (2021). अवरनेस एण्ड एप्लीकेशन ऑफ इन्फार्मेशन एण्ड कम्यूनिकेशन टेक्नोलॉजी इन एजुकेशन एमंग द हायर सेकेण्डरी स्टूडेन्ट, वॉ0 6, इश्शू–1, पृ0 85–90

ISSN : 2319-7137, Volume: 15/Issue: 01, January-June : 2022

भारत की राजनीतिक व्यवस्थाओं में परिवर्तन एवं सुधार : एक समीक्षा

देवी लाल
तदर्थ सहायक प्राध्यापक,
राजनीति विज्ञान विभाग
आर.के.एस.डी. (पी.जी.) महाविद्यालय, कैथल

सारांशः वर्तमान संदर्भ में सुशासन एक ऐसा विषय बनकर उभरा है। जिसके कारण राजनीतिक व्यवस्थाओं में बहुत अच्छे परिवर्तन देखने को मिल रहे हैं। भले ही यह प्रक्रिया विश्व के किसी भी देश से संबंधित ही क्यों न हो। मात्र भारत ही नहीं यूरोप, एशिया, अफ्रीका, एशियाई देश, लैटिन अमेरिका के देशों में जहां आधुनिकता के कारण लोगों की विचारधाराओं में शासन के प्रति बदलाव देखने को मिल रहा है वही पर सुशासन में भी परिवर्तन देखने को मिल रहा है। अंतरराष्ट्रीय स्तर पर यु.एन.ओ. नें भी सुशासन को लेकर अनेक सुझाव दिए गए हैं। लगभग सभी देशों ने इस संस्था के द्वारा जो सुझाव दिए गए हैं के ऊपर अमल किया है। क्योंकि इसके द्वारा लोगों की सामाजिक स्तर व राजनीतिक स्तर पर समस्याओं को कम करने का प्रयास किया जा रहा है, दूसरा सरकार इसके माध्यम से जनता का विश्वास जीतने तथा जनता की सहानुभूति प्राप्त करने का प्रयास करती है। मेरे सुझाव में सुशासन की मुख्य रूप से दो तरह की प्रक्रिया हमें समाज में देखने को मिलती है प्रथम सरकार का सरकार के प्रति सुशासन जिसमें राष्ट्रीय सरकार का और राज्य सरकारों के प्रति कैसा सुशासन है। दूसरा सरकार का जनता के प्रति कैसा सुशासन है। जिसमें प्रशासन के लोगों के साथ किस तरह के संबंध है। तीसरा सरकार के गैर–सरकारी संगठनों के साथ भी किस तरह के संबंध है। यह भी सुशासन की एक प्रक्रिया का ही रूप है। सुशासन को प्रभावशाली बनाने के लिए मुख्य रूप से महिलाओं व पुरुषों की भागीदारी को सुनिश्चित करना है कानूनों को प्रभावशाली ढंग से लागू करना, कार्यों में पारदर्शिता को स्थापित करना, समाज के प्रत्येक व्यक्ति के साथ समानता स्थापित करना, उत्तरदायित्व को स्थापित करना, सरकारी गैर– सरकारी व निजी कार्यालयों में उत्तरदायित्व सुनिश्चित किया जाए आदि उद्देश्यों के साथ सुशासन को स्थापित किया जा सकता है। सुशासन के हमें बहुत से लक्षण भी वर्तमान समय में दिखाई दिए हैं, जैसा कि भारत में 2005 में सूचना का अधिकार अधिनियम लागू होना, कार्यालयों में ई–गवर्नेंस को बढ़ावा मिलना, लोगों के अंदर जागरूकता आना, मीडिया का लोगों में प्रभाव बढ़ना और डिजिटलाइजेशन को बढ़ावा मिलना इत्यादि। यदि प्रशासनिक अधिकारी और जनता आपस में एक दूसरे के प्रति उत्तरदायित्व की भावना ईमानदारी से रखें तो सुशासन को बड़ी अच्छी तरह से राजनैतिक व्यवस्थाओं में लागू किया जा सकता है।

संकेत शब्द :– राजनीतिक व्यवस्थाएँ, लोकतान्त्रिक प्रक्रिया, सुशासन, स्वरूप, न्यायपालिका।

अगर हम इतिहास पर नजर डालें तो दो बातें हमें अच्छी तरह से समझ में आ जाएगी। प्रथम कौटिल्य ने कहा था कि प्रजा के हित में ही राजा का हित है। अर्थात राजा यदि प्रजा का अहित चाहेगा तो राजा का अहित होना सुनिश्चित है । दूसरी प्लेटो ने कहा था कि जब बुद्धिजीवी लोग शासन से जी चुराएंगे या फिर शासन में प्रतिभागी नहीं बनेंगे तो यह सुनिश्चित है कि उन्हें बुरे लोगों का शासन

सहन करना पड़ेगा। इन दोनों बातों से यह स्पष्ट हो जाता है कि प्रजा के लिए कल्याणकारी कार्य करना अति आवश्यक है तथा अच्छे बुद्धिजीवी व ईमानदार लोगों का प्रशासन में होना भी आवश्यक है। किसी भी राजनीतिक व्यवस्था में सुशासन से अभिप्राय भी यही है कि समाज में लोगों की जो समस्याएं हैं प्रशासन के माध्यम से दूर की जाए तथा लोगों के लिए कल्याणकारी कार्य अधिक से अधिक किए जाएं और यह तभी सुनिश्चित किया जा सकता है जब शासन व्यवस्थाओं में राजनीतिक व प्रशासनिक तौर पर अच्छे नेतृत्व वाले व ईमानदार व्यक्तियों का चुनाव हो । भारत में लोकतांत्रिक व्यवस्था को अपनाया गया है । विश्व के लगभग अन्य देशों में भी लोकतांत्रिक व्यवस्था को अपनाया गया है जिन देशों में लोकतांत्रिक व्यवस्था को अपनाया जाता है वहां पर सारी राजनीतिक व्यवस्था की जो रीड की हड्डी होती है वह जनता ही होती है। यदि मुख्य तौर पर देखा जाए तो लोकतांत्रिक व्यवस्था में राजनीतिक प्रशासनिक व जनता इन तीनों का घनिष्ठ संबंध होता है और इन तीनों में बगैर किसी एक के किसी का भी अस्तित्व नहीं हो सकता।

वर्तमान संदर्भ में यदि प्रकाश डाला जाए तो राजनैतिक व्यवस्थाओं में निश्चित ही सुधार हुआ है इसमें कोई दो राय नहीं हैं लेकिन इसके साथ–साथ इसमें दोष, कमियां व चुनौतियां भी रही हैं राजनीतिक व्यवस्थाओं में यदि सुधार की प्रक्रिया शुरू की जाए तो वह सुशासन के माध्यम से ही शुरू की जा सकती हैं। सुशासन से अभिप्राय है कि अच्छा प्रशासन ।अच्छा से अभिप्राय है जो सभी लोगों को पसंद आए जनता में जिसका कम से कम विरोध हो प्रशासनिक तौर पर लोगों को सुविधाएं आसानी से प्रदान की जाए। लोगों की समस्याओं को कम किया जाए और उनके लिए कल्याणकारी कार्य ज्यादा से ज्यादा किए जाएं। लोकतांत्रिक व्यवस्थाओं में सुशासन के माध्यम से जनता को अधिक से अधिक सुविधाएं प्रदान करके राजनैतिक व्यवस्था को समृद्ध बनाने का प्रयास किया जाता है। मैंने अपने इस पेपर के अंदर सुशासन के द्वारा राजनैतिक व्यवस्थाओं के दो, तीन पहलुओं पर महत्वपूर्ण प्रकाश डालने का प्रयास किया है जो कि निम्न प्रकार से है।

राजनीतिक व्यवस्था में सुशासन कई तत्वों पर निर्भर करता है और यह बात सर्वविदित है और हम सब जानते हैं कि इसके लिए बहुत से महत्वपूर्ण तत्व होते हैं। जैसे उत्तरदायित्व सुनिश्चित होना, जवाबदेही सुनिश्चित हो, कानून का शासन होना चाहिए जनता के साथ प्रशासन के संबंध अच्छे होने चाहिए। तकनीकी विकास होना चाहिए। राजनीति के भ्रष्टाचार खत्म होना चाहिए। महिलाओं की सहभागिता प्रशासन सुनिश्चित होनी चाहिए। यदि हम इन सभी तत्वों को केंद्रित करके प्रशासन के अंदर कार्य करें तो निश्चित ही राजनीतिक व्यवस्था में सुधार होना स्वाभाविक है। इसके अतिरिक्त राजनीतिक संस्थाओं में भी सुधार की आवश्यकता है। जिसके ऊपर मैं प्रकाश डालने का प्रयास कर रहा हूं।

विधानसभाओं के स्वरूप में सुधार

यदि भारत के संदर्भ में बात की जाए तो भारत के अंदर सभी राज्यों की अपनी–अपनी राज्य विधानसभा है और समस्त भारत की सबसे बड़ी जो विधानसभा है वह है संसद तो संसद के स्वरूप में भी बदलाव होना स्वाभाविक है। वर्तमान में भारत में संसद का पुनर्निर्माण किया जा रहा है जिसके ऊपर केंद्र सरकार लगभग 892 करोड रुपए खर्च करेगी और एक नया संसद भवन भारत के सामने होगा। प्रश्न यह है कि जैसा कि हम संसद की कार्यवाही पहले देखते आ रहे हैं क्या उसने भी बदलाव होगा।

संसद की कार्यवाही के अंदर अक्षर मैंने लाइव टीवी पर जो देखा है उसमें जो हमारे सांसद होते हैं वह एक दूसरे के ऊपर टिप्पणियां करते हैं लेकिन बात यहीं तक नहीं रुकती इससे ज्यादा बुरी स्थिति तब

होती है जब विरोधी दल या सत्ता पक्ष इतना आक्रामक हो जाता है कि एक दूसरे के ऊपर कागजों को फेंकना, एक दूसरे को मारने के लिए दौड़ना या फिर जूते चप्पल तक मारने पर नौबत आ जाती है। एक सुंदर संसद भवन का निर्माण करना अच्छी बात है लेकिन उसके अंदर मर्यादाओं के ऊपर लगाम लगे यही सबसे महत्वपूर्ण है। संसद के अंदर स्पीकर के सामने सभी सांसदों की जवाबदेही सुनिश्चित होनी चाहिए यही सुशासन का सही रूप होगा। भारत की संसद विश्व में लोकतंत्र का सबसे बड़ा रूप है। यदि हमारे द्वारा चुने हुए प्रतिनिधि वहां पर अपनी मर्यादाओं को लांगते हैं या नैतिकता का पतन करते हैं या फिर अपने कर्तव्यों का निर्वहन अच्छी तरह से नहीं कर पाते हैं तो फिर भारत जो विश्व का सबसे बड़ा लोकतंत्र है इसकी छवि पर भी दाग लगता है यहां पर जवाबदेही भी सुनिश्चित होनी चाहिए और उत्तरदायित्व की भावना भी सांसदों में होना चाहिए और नैतिक आचरण होना बहुत ही ज्यादा जरूरी है यह भी सुशासन का एक अच्छा रूप होगा। यही व्यवस्था हमारे राज्यों की राज्य विधानसभाओं में भी सुनिश्चित होनी चाहिए।

दूसरा, आधुनिक समय तकनीकी विज्ञान का समय है और समय के अनुसार चलना वर्तमान की जरूरत भी है इसी आधार पर राज्यों की विधानसभाओं में कागज की कार्यवाही को धीरे–धीरे समाप्त करने का प्रयास किया जा रहा है केंद्रीय मंत्री प्रहलाद जोशी ने कहा है कि भारत में मिजोरम प्रथम राज्य है जहां पर राज्य विधानसभा में कागज का प्रयोग नहीं किया जाता। मिजोरम की विधानसभा पेपरलेस विधानसभा बन चुकी है। विधानसभा में इस तरह का बदलाव टेक्नोलॉजी के माध्यम से वर्तमान की जरूरत भी है और यह एक सुशासन का अच्छा रूप भी है। इसके अतिरिक्त भारत के 18 राज्यों में नेवा को अपनाने के लिए प्रयासरत हैं। उत्तर प्रदेश की विधानसभा ने अपना 2022 का बजट भी नेवा के माध्यम से प्रस्तुत किया है। नेवा का अर्थ है नेशनल ई विधान एप्लीकेशन। इस तरह की कार्यवाही डिजिटल इंडिया के स्वपन को पूरा करती हैं।

न्यायपालिका के स्वरूप में परिवर्तन

राजनैतिक व्यवस्थाओं का एक अन्य रूप हमारी न्यायपालिका भी है। जितनी ज्यादा स्वतंत्र न्यायपालिका होगी लोगों के लिए न्याय उतना ही आसान होगा। वर्तमान समय में सबसे ज्यादा जो कार्यों का भार है वह हमारी न्यायपालिका के ऊपर ही है सुप्रीम कोर्ट के न्यायाधीशों ने भी स्वीकार किया है कि न्यायपालिका के पास सबसे ज्यादा कार्य है और यदि न्यायपालिका के ऊपर कार्यों का भोज इसी तरह से बढ़ता रहा तो लोगों के लिए न्याय प्राप्त करना बहुत ही मुश्किल हो जाएगा और यह हमारे प्रशासन की कमजोरी भी साबित होगी। इसी समस्या का समाधान करने के लिए न्यायपालिका ने कई महत्वपूर्ण निर्णय लिए हैं ताकि लोगों को आसानी से न्याय मिल सके। प्रथम, जितना भी ग्रामीण क्षेत्र होता है वहां पर लोक अदालतें लगाने की कार्यवाही न्यायपालिका के द्वारा की गई है। दूसरा, मोबाइल कोर्ट की सुविधा भी शुरू की गई है भारत में हरियाणा के राज्य मेवात में प्रथम मोबाइल कोर्ट की शुरुआत हुई है यह भी प्रशासन का एक बहुत ही अच्छा रूप माना जा सकता है। न्यायपालिका के साथ लोगों का विश्वास जुड़ा है एकमात्र न्यायपालिका ही ऐसी है जिसमें लोगों की पूर्ण आस्था है यदि लोगों को किसी तरह की कोई समस्या आती है तो केवल न्याय के लिए वह न्यायपालिका की तरफ ही देखते हैं तो न्यायपालिका का भेदभाव रहित होना किसी भी दबाव में आकर निर्णय न देना यह प्रशासन का अच्छा रूप है। तो यह भी सुशासन का ही रूप है।

प्रशासन के स्वरूप में परिवर्तन

राजनीतिक व्यवस्था में सुशासन का सबसे महत्वपूर्ण समरूप है प्रशासन के स्वरूप में परिवर्तन स्वतंत्रता के पश्चात भारत के प्रशासन के स्वरूप में बहुत अधिक परिवर्तन आया है। प्रशासनिक अधिकारियों का जनता के साथ संपर्क होता है और जनता की सभी समस्याएं भी प्रशासनिक अधिकारी सुनते हैं। यदि कोई प्रशासनिक अधिकारी ऐसा नहीं करता है तो उसकी भी जवाबदेही सुनिश्चित हो उसका उत्तरदायित्व भी सुनिश्चित हो ताकि जनता को अधिक समस्या का सामना ना करना पड़े। जैसा की शुरुआत में ही कहा गया था एक राजनीतिक व्यवस्था प्रशासनिक व्यवस्था व जनता के बीच सीधा संबंध होता है जनता ही मुख्य करता होती है लोकतंत्र के अंदर। जनता अपने लिए राजनीतिक व्यवस्था का चुनाव करती है। अपने जनप्रतिनिधियों को चुनती है। जनप्रतिनिधि सरकार बनाते हैं। सरकारें प्रशासनिक अधिकारियों के माध्यम से लोगों को सुविधाएं प्रदान करती है। यह एक चक्र की तरह होता है। इन तीनों के बीच में घनिष्ठ संबंध देखा जाता है। यदि राजनीतिक व्यवस्था जनता की आकांक्षाओं पर खरा उतरती है तो प्रशासन के अंदर सुशासन अच्छा माना जाएगा यदि वह लोगों के लिए जनकल्याणकारी योजनाएं लागू नहीं करती, उनकी समस्याओं का समाधान नहीं करते हैं तो इसे बुरा प्रशासन माना जाएगा। वर्तमान समय में सभी राजनीतिक व्यवस्थाएं लोगों को अधिक से अधिक सुविधाएं, सस्ता न्याय, सामाजिक समानता स्थापित करने का पूर्ण प्रयास करते है। ताकि जनता का प्रशासन में पूर्ण विश्वास बना रहे।

निष्कर्ष

निष्कर्ष के तौर पर कहा जा सकता है कि भारत में आजादी के 75 वर्ष बाद प्रशासनिक आधार पर राजनीतिक व्यवस्था में सुधार देखने को मिला है। जब भारत स्वतंत्र हुआ था उस समय की परिस्थितियां कुछ अलग तरह की थी। वर्तमान की परिस्थितियां एक अलग तरह की परिस्थितियां हैं। स्वतंत्रता के समय भारत में आर्थिक अस्थिरता का भी माहौल था तकनीकी विकास इतना अधिक नहीं था लोगों के अंदर समझदारी इतनी ज्यादा नहीं थी धीरे–धीरे समय परिवर्तन के साथ परिस्थितियां भी बदली और प्रशासन ने अपना स्वरूप भी बदला जिसके परिणाम स्वरूप वर्तमान समय में भारत विश्व का सबसे बड़ा लोकतंत्र देश भी है और सुशासन व्यवस्था भी अच्छी हैं लेकिन इसमें भी सुधार की आवश्यकता है। तकनीकी विकास के माध्यम से जनता की समस्याओं को कम किया जा सकता है आज ऑनलाइन जितनी भी सुविधाएं जनता को प्रदान की गई है उससे जनता को बहुत ही आसानी हो गई है। इससे जनता का समय भी बचता है और उनके धन की भी बचत होती है और सार्वजनिक सुविधाएं जनता को आसानी से राजनीतिक व्यवस्थाओं के माध्यम से प्रदान की जाती है। यही कारण है कि सुशासन एक बहुत ही अच्छे विषय एवं विकल्प के रूप में उभरा है सुशासन का रूप जितना अच्छा होगा जनता उतनी ही अधिक खुश होगी यही राजनैतिक व्यवस्थाओं का मूल उद्देश्य होता है।

संदर्भ सूची :

1. "भारत में शासन" टाटा मैकग्रा हिल, द्वितीय संस्करण, 2014

2. भारत में सुशासनः चुनौतियां एवं समाधान, सूर्यभान प्रसाद एवं नंदलाल, भारती प्रकाशन45, धर्म संघ कॉन्प्लेक्स, दुर्गकुंड वाराणसी

3. भारत में प्रशासनिक सुधार एवं सुशासन, डॉक्टर जनक सिंह मीना, प्वाइंटर पब्लिकेशन, जयपुर 2016

ISSN : 2319-7137, Volume: 15/Issue: 01, January-June : 2022

संगीत जगत में काज़ी नज़रूल इस्लाम का योगदान

डॉ0 रूमा चटर्जी
असि0 प्रोफेसर
दाऊ महिला (पी.जी.) कॉलेज, फिरोजाबाद

बांग्लादेश के महान राष्ट्रीय कवि काज़ी नज़रूल इस्लाम का जन्म 24 मई1899 ई0 आसनसोल के चुरूलिया ग्राम में हुआ था। बहुआयामी व्यक्तित्व के धनी थे। बांग्ला कवि, महान साहित्यकार, महान संगीतकार, देशप्रेमी, स्वतंत्रता सेनानी। अन्याय के विरूद्ध बोलने से नहीं डरते थे इसलिये विद्रोही कवि के रूप में प्रसिद्ध हैं। काज़ी नज़रूल एक ऐसे संगीतकार हैं जो बांग्लादेश व भारत के पश्चिम बंगाल में अति लोकप्रिय हैं। उनके गीत 'नज़रूल गीति' के नाम से प्रसिद्ध है। संगीत क्षेत्र में उनकी उपलब्धियाँ असीम है। काज़ी नज़रूल के अधिकांश गीत सहज, सरल एवं स्वच्छन्द हैं। उनके गीतों में छन्द के विचित्र मिलन व अलंकारों का अप्रभुत संगम देखने को मिलता है। उनके गीतों में माटी की खुशबू, वीरता का जोश, प्रभु के प्रति भक्ति तो है ही साथ ही शास्त्रीय संगीत में विद्वता झलकती है। भावों के अनुसार उनके गीतों को पाँच विभागों में विभाजित किया जा सकता है– (1) स्वदेश आत्मबोधक, (2) मानवीय प्रेमगीत, (3) भक्तिमूलक, (4) प्रकृति, (5) हास्यगीत आदि।

1. स्वदेश आत्मबोधक– अपने देश की स्वतंत्रता व देशभक्ति के गीत के प्रति उनका प्रेम व अनुराग जो कि अप्रभुत था, वे दसवीं कक्षा में थे देश स्वतंत्रता के लिये जबरदस्त आन्दोलन चल रहा था तब नज़रूल का ध्यान किताबों तक कैसे सिमटा रह सकता था, तब स्वाधीनता संग्राम में सक्रिय काज़ी नज़रूल के अध्यापक 'निवारण चन्द्र घटक' युगान्तर नामक क्रान्तिकारी दल के कार्यकर्ता थे उन्हीं से प्रेरित होकर सैन्य प्रशिक्षण के लिये 'बंगाली डबल कम्पनी' में भर्ती हुये। मगर नियति ने कुछ और ही तय करके रखा था, सैन्य संघर्ष के लिये उद्धत नज़रूल को सरस्वती स्वयं अपने सान्निध्य में रखना चाहती थी इस तरह उनकी कलम से तलवार की धार निकली '1922' में ''बिजली'' नामक पत्रिका में ''विद्रोही'' नामक एक कविता छपी, इस कविता ने साहित्य जगत में हलचल मचा दी। इस कविता के माध्यम से वह विश्व में विद्रोही कवि के रूप में प्रसिद्ध हुये। इस कविता में अंग्रेजों के अत्याचार व अनाचार का पुरजोर–शोर से विरोध किया। इस कविता के बोल हैं– **''बोलो वीर बोलो चिर उन्नतशील, मेरा मस्तक निहार झुका पड़ा है, हिमाद्री शिखर, बोलो, महा विश्व महा आकाश चीर, सूर्यचन्द्र से आगे धरती पाताल स्वर्ग भेद ईश्वर का सिंहासन छेद, उठा हूँ मैं धरती का एकमात्र शाश्वत् विलय।''**[1]

बांग्ला जातीय मुक्ति संग्राम में नज़रूल के कोरस गान का विशेष महत्व है जैसे– **''मेरा शक्ति मेरा छात्र दल (सर्वहारा से चयनित) ''अग्निपथ है सेना दल'' (जंजीर)! चलचल (सन्ध्या) अंग्रेजों के विरूद्ध में उनके गाने ''भागार गान'' नाम से प्रसिद्ध है।''**[2]

''देश के महान क्रान्तिकारी सुभाषचन्द्र बोस ने नज़रूल को जीवन्त मानवता की संज्ञा दी है। सुभाष जी का कथन था– ''नज़रूल सच में विद्रोही कवि हैं जो अन्याय के खिलाफ लड़ाई करने की

शक्ति व संचार है। ''कठिन पर्वतशील एवं मरूभूमि'' इन कविताओं में कठिनाईयों से लड़ने के लिये अद्भुत ताकत व उत्साह संचार करता है।''[3]

[4]''सुरसाकी''[1] में काली माँ का वर्णन है। सुरसाकी[2] में ''मेरे देश के माटी सोना में ज्यादा शुद्ध है'' हिन्दू मुसलमान के विषय में कुछ गीत जिसमें देशभक्ति व जाति मैत्री झलकती है जो दादरा व छायानट सुर में है। सुरसाकी[4] हिन्दू मुसलमान दो भाई हैं दोनों भारत की आँख हैं। ''एक ही बगीचे के दो पौधे हैं एक देवदार और दूसरा कदम का पेड़'' सुरसाकी''[4] एक ही गोल में हिन्दू–मुसलमान दो फूल हैं, मुस्लिम उसका नयन और हिन्दू उसका प्राण दोनों एक ही आकाश में वि शशि की तरह माँ की गोद में खेल रहे हैं। इससे यह सिद्ध होता है काज़ी नज़रूल इस्लाम की धर्मनिरपेक्ष कवि शायद ही कोई है।

प्रेम संगीत– प्रेम संगीत के गज़ल गान में नज़रूल अद्वितीय थे। गज़ल फारसी देश का एक प्रकार का प्रेम संगीत है, जिसमें स्थाई अंश को छन्द में गाना अन्य अंशों को बिना छंदों में गाया जा सकता है। यह अंश शायर नाम से प्रसिद्ध है, इनमें प्रमुख मिर्जा ग़ालिब हैं नज़रूल के पूर्व अतुल प्रसाद सेन ग़ज़ल की रना करते थे। नज़रूल के सबसे जनप्रिय गान ''बुलबुल को बगीचे के फूल की शाखाओं में डोलने से मना किया है''[5] उनकी गीत में कविता की झलक होती थी, नज़रूल की ग़ज़लें बहुत जनप्रिय रही। [6]''प्रेम संगीत में 'बुलबुल' और 'चोखेर चातक' सर्वश्रेष्ठ संग्रह है। बुलबुल का प्रथम प्रकाशन 1928 दिलीप कुमार राय को समर्पित 'चोखेर चातक' 1920 प्रतिमा सोम को समर्पित वनगीति का प्रकाशन 1925 में जयाउद्दीन खान साहेब को उत्सर्जित था उनको प्रेम गीत को जनप्रिय करवाने में सहायक रहे– दिलीप कुमार राय, इन्दुबाला, कमला! **भक्ति मूलक गीत** इन गानों में श्यामा संगीत व इस्लामिक भक्ति गीत, गीतों में नज़रूल में आश्चर्यजकनक प्रतिभा का परिचय दिया है। रामप्रसाद जो 'श्यामा संगीत' के पण्डित माने जाते हैं जिसमें काली माँ के भजन होते हैं उसके बाद भक्ति गानों में यदि किसी का स्थान आता है तो वो काज़ी नज़रूल इस्लाम ही हैं उसमें सबसे बड़ी बात है मुस्लिम समुदाय के होते हुए भी श्री कृष्णा, काली मां के भजनों में रूपों का वर्णन अद्भुत है।

[7]''जवा फूल तुने क्या आराधना की जो तुझे काली माँ के चरण में स्थान मिला, [8]''हे माँ श्यामवर्ण रूप में प्रेमसागर को कहाँ छुपा रखा है। प्रख्यात गायक अब्बासउद्दीन के अनुरोध पर इस्लामिक संगीत की भी रचना की, [9]''ए मन रमजान के महीने में लेकर आयी खुशी।''[9]

प्रकृति प्रेम– नज़रूल के गीतों में प्रकृति सौन्दर्य का चित्रण सार्थक रूप में पाया जाता है। गीतों के शाब्दिक चयन पाठकों को मुग्ध किये बिना नहीं रहता। मटियाली गीतों पर भी अच्छी पकड़ थी।

हास्य गीत– [10]''हास्य गीत में काज़ी नज़रूल इस्लाम अच्छा खासा दखल रखते थे ''चन्द्रबिन्दु'' प्रथम संस्करण सरकार द्वारा जप्त कर लिया गया 30 नवम्बर 1945 में प्रतिबन्ध हटा लिया गया संगीत ग्रंथ में कुल 18 गीत हैं।''[10] हास्य गीतों में विशेषकर दो विधाओं में उनका अस्तित्व स्पष्ट है पहला राजनैतिक व सामाजिक देश के सम्मान में तीव्र व्यंग्य प्रधान एवं द्वितीय मानवीय प्रेम व धर्मप्रधान।

काज़ी नज़रूल इस्लाम द्वारा कार्यों की सूची–

1. शायरी, 2. कविताएँ और गीत, 3. छोटी कहानियाँ, 4. उपन्यास, 5. नाटक, 6. निबन्ध, शायरी–अग्निवीना (द फेयरी लयूट) 1922 संचिता संग्रहित कवितायें– 1925, फनीमानसा (द कैक्टस) 1927 और भी कई हैं।

निष्कर्ष– बहुमुखी प्रतिभा के धनी काज़ी नज़रूल को इस शोध पत्र में समेटना बहुत मुश्किल है। उनके संगीत विधा में जितनी विविधता देखने को मिलता है, वो अप्रभुत है। वे स्वयं मुस्लिम धर्म के होते हुये भी दूसरे धर्मों को बराबर सम्मान दिया वे धर्म निरपेक्षता के उच्चतम मिसाल है। उन्होंने उस भारत के लिये संघर्ष किया जिसमें पाकिस्तान व बांग्लादेश भी है, क्योंकि तब बंटवारा नहीं हुआ था ये सभी भारत के अन्तर्गत में थे। मेरा ये शोधपत्र लिखने का केवल एक ही उद्देश्य है कि काज़ी नज़रूल के गीत, ग़ज़ल, कविता व साहित्य के अद्भुत प्रतिभा को सम्पूर्ण भारत पहचाने उनको भारत से पद्मश्री का सम्मान प्राप्त हुआ था। बाद में बांग्लादेश के राष्ट्रकवि बने। उनका जन्म भारत में हुआ। भारत के लिये लड़े, भारत के लिये गीत लिखे लेकिन भारत उनको भूल गया। उनकी मृत्यु 29 अगस्त 1976 को बांग्लादेश में डिमेनशिया नामक बीमारी से ग्रस्त होने से चल बसे। सच्ची श्रद्धांजलि यही है उनके गीत व साहित्य का प्रचार भारत के जन–जन में हो।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची :

1. धर्म मानवता, नज़रूल, पृ0सं0 74
2. नीतिकार व सुरकार, सुशील कुमार गुप्त, पृ0सं0 311
3. नज़रूल स्मृति (विश्वनाथ दे), पृ0सं0 19
4. सुरसाकी, (नज़रूल), पृ0सं0 1, 2, 3, 4
5. तरूने इलज्जा शनिवार चिट्ठी (पोष 1338)
6. यूनिवर्सल म्यूजिक इण्डिया प्राइवेट लिमिटेड (चयनिका)
7. अब्बाजउद्दीन अहमद, पृ0सं0 74, 75
8. वही
9. नज़रूल चरित मानस, पृ0सं0 315
10. वही

ISSN : 2319-7137, Volume: 15/Issue: 01, January-June : 2022

माध्यमिक स्तर के विद्यार्थियों में तनाव का उनके शैक्षिक उपलब्धि पर पड़ने वाले प्रभाव का अध्ययन

शोध निर्देशक
डॉ0 आलोक कुमार सिंह
असिस्टेन्ट प्रोफेसर
शिक्षक शिक्षा विभाग
सल्तनत बहादुर पी0जी0 कालेज,
बदलापुर, जौनपुर (उ0प्र0)

शोधकर्त्ता
सुनील कुमार
एम0ए0 (भूगोल), एम0एड्0, नेट (शिक्षाशास्त्र)
वीर बहादुर सिंह पूर्वान्चल विश्वविद्यालय,
जौनपुर (उ0प्र0)

सारांश

समस्या कथन माध्यमिक स्तर के विद्यार्थियों में तनाव का उनके शैक्षिक उपलब्धि पर पड़ने वाले प्रभाव का अध्ययन करना है। अध्ययन में कुल विद्यार्थियों, छात्र एवं छात्राओं के आधार पर उद्देश्यों का निर्माण कर अध्ययन किया गया है। अध्ययन में सहसम्बन्धात्मक सर्वेक्षण विधि का प्रयोग किया गया है। प्रस्तुत अध्ययन हेतु न्यादर्श का चयन जौनपुर जनपद के माध्यमिक विद्यालयों में से किया है। इन विद्यालयों के 10+2 स्तर के समस्त विद्यार्थी समष्टि है तथा अध्ययन के लिए चयनित विद्यार्थी न्यादर्श है। प्रस्तुत अध्ययन में न्यादर्श के चुनाव हेतु यादृच्छिक प्रतिदर्शन विधि का प्रयोग किया गया है। प्रस्तुत अध्ययन में जौनपुर जनपद के 20 उत्तर प्रदेश माध्यमिक शिक्षा परिषद से सम्बद्ध माध्यमिक विद्यालयों का चयन कर माध्यमिक विद्यालयों में से कुल 500 विद्यार्थियों (250 छात्र एवं 250 छात्राओं) का चयन यादृच्छिक विधि से किया गया है। शैक्षिक उपलब्धि के लिए विद्यार्थियों की हाईस्कूल परीक्षा में प्राप्त प्राप्तांकों को तथा डा0 जॉकी अख्तर, एसोसिएट प्रोफेसर, पी.जी. डिपार्टमेण्ट ऑफ साइकोलॉजी, करीम सिटी कॉलेज, जमशेदपुर (झारखण्ड) द्वारा निर्मित ''स्टूडेन्ट्स स्ट्रेस स्केल'' का प्रयोग किया गया है। आँकड़ों के विश्लेषण हेतु एनोवा (प्रसरण) विधि एवं टी–अनुपात सांख्यिकी विधियों का प्रयोग किया गया है। अध्ययन के निष्कर्ष में पाया गया कि– तनाव और शैक्षणिक उपलब्धि के बीच एक महत्वपूर्ण एवं नकारात्मक संबंध की पहचान की गई। तनाव का कारण अत्यधिक पाठ्यक्रम के बोझ, अभिभावकों का विद्यार्थियों से अधिक उपलब्धि प्राप्त करने की अपेक्षा करना, विद्यार्थियों का स्वयं दूसरों से आगे निकलने की अत्यधिक कोशिश करना इत्यादि कारण हो सकता है।

मुख्य शब्द– माध्यमिक स्तर, छात्र, छात्राएँ, तनाव, शैक्षिक उपलब्धि, प्रभाव

भूमिका–

तनाव व्यक्ति की शारीरिक एवं मानसिक दशा है जिसमें व्यक्ति असमान्य रूप से व्यवहार करने लगता है। यदि व्यक्ति की आवश्यकताएं तुरन्त और स्वतः ही पूरी हो जाएं तो जीवन इतना सरल हो जायेगा कि फिर उसे प्रति आकर्षण एवं आनन्द की अनुभूमि ही समाप्त हो जायेगी इसलिए प्रकृति ने आवश्यकताओं की पूर्ति में बाधाओं को उत्पन्न करते रहना मानव जीवन के सुख के लिए अनिवार्य सा कर दिया है। यदि बिना बाधाओं के आवश्यकताएं पूरी हो जायेंगी तो जीने के लिए कुछ नहीं रह जायेगा ये बाधाएं ही जवीन के संग्राम में समय–समय पर उत्पन्न होती रहती है जो व्यक्ति में एक विशेष प्रकार का दबाव बनाये रखती हैं यही तनाव या 'Stress' के नाम जाना जाता है।

वैचारिक विभिन्नता का योगदान तनाव को घटाता–बढ़ाता हैं जैसे– दिवा–स्वप्न तथा काल्पनिक उड़ान चिन्ता पैदा करता है। आत्म विश्वास एवं दृढ़ इच्छा शक्ति तनाव की तीव्रता को कम करता है। तनावपूर्ण जीवन की घटनाएँ सामान्य लोगों में पाचन सम्बन्धी समस्या पैदा करती हैं तथा संवेगात्मक तनाव का मुख्य प्रभाव ब्लड ग्लूकोज पर पड़ता है। अध्ययन में यह भी पाया गया कि चिन्ता तथा मधुमेय पारस्परिक रूप से सह–सम्बन्धित था। यह भी देखा गया कि चिन्ता, तनाव तथा मधुमेय का

व्यक्तित्व प्रतिरूप से नकारात्मक रूप से सहसम्बन्धित था जो समायोजन की प्रक्रिया में स्पष्ट रूप से दिग्दर्शित होता था। लम्बा प्रशिक्षण तथा विषयी–कार्यों तथा चारित्रिक शीलगुण के कारण छात्रों में तनाव पैदा होता है। तनाव की अन्तिम परिणति अवसाद था यह मुख्य से छात्रों में दिखाई देता है।

मैककेन एवं अन्य (2000). के तर्क है कि छात्र प्रत्येक सेमेस्टर में अपेक्षित समय पर उच्च तनाव का अनुभव करते हैं। अकादमिक व्यस्तता, वित्तीय दबाव और समय प्रबंधन कौशल की कमी से तनाव का निर्माण होता है। अत्यधिक तनाव भलाई, भावनात्मक दृष्टिकोण और शैक्षणिक प्रदर्शन को प्रभावित कर सकता है। **असवाल (2002).** ने निष्कर्ष रूप में इन्होंने पाया कि विभिन्न प्रकार के सामाजिक स्तरों में तनाव के अलग–अलग कारण रहे जो उनके जीवन जीने के तरीके को प्रभावित करते हैं। **रैडक्लिफ और लेस्टर (2003).** ने स्वीकार किया कि कक्षा असाइनमेंट, पर्याप्त मार्गदर्शन नहीं, आपस में मिलने और जुड़ने का दबाव तनाव के निर्माण के कारण होते हैं।

कडापट्टी, मंजुला जी. एवं विजयलक्ष्मी, ए.एच.एम. (2012). ने अध्ययन में इंगित किया कि– उच्च आकांक्षा, खराब अध्ययन की आदतें, अध्ययन की समस्याएं, निम्न सामाजिक–आर्थिक स्थितियां शैक्षणिक तनाव को प्रभावित करने वाले तनाव कारक/कारक हैं। अतः विद्यार्थियों में अपने अध्ययन के प्रति आकांक्षा/उम्मीद होनी चाहिए, न कि उनकी क्षमताओं और योग्यताओं से परे। इंटरमीडिएट स्तर पर अपने पाठ्यक्रम का चयन करते समय छात्रों को उचित परामर्श की आवश्यकता होती है। माता–पिता को बच्चे की रुचि और योग्यता पर विचार करना चाहिए न कि पाठ्यक्रम के चयन पर थोपना चाहिए। पारिवारिक वातावरण अनुकूल होना चाहिए और सीखने की प्रक्रिया को आनंददायक बनाया जाना चाहिए और माता–पिता को इसे किशोरों के लिए एक तनावपूर्ण घटना के रूप में बनाने से बचना चाहिए। अंततः छात्रों को अपने शैक्षणिक जीवन में प्रगति करने और अपने लक्ष्य या लक्ष्य तक पहुँचने के लिए सहायक और उत्तेजक वातावरण बहुत आवश्यक है। **अज़िला, एडेम मैक्सवेल एवं अन्य (2015).** ने तनाव और अकादमिक उपलब्धि. घाना के एक पॉलिटेक्निक में व्यावसायिक छात्रों के अनुभवजन्य साक्ष्य पर अध्ययन किया। इस पत्र का उद्देश्य तीन तहों में है। पहला अध्ययन क्षेत्र के भीतर तनाव के स्रोतों की पहचान करना है; दूसरा यह जांचना है कि क्या लिंग, अध्ययन के कार्यक्रम, कार्यभार और शिक्षा के स्तर के आधार पर प्रतिभागियों के बीच तनाव के बीच महत्वपूर्ण अंतर हैं; अंत में, इसने तनाव और छात्रों के प्रदर्शन के बीच संबंध का पता लगाया। तनाव के स्रोतों पर, अध्ययन के परिणामों ने जांच की गई प्रत्येक श्रेणी के आधार पर तनाव के प्रमुख स्रोतों की पहचान की। निष्कर्ष आगे सुझाव देते हैं, छात्रों के बीच तनाव श्रेणी के सबसे प्रमुख स्रोत हैं। ये स्रोत सीधे उनके अकादमिक कार्य से संबंधित हैं। इसलिए यह जरूरी है कि प्रबंधन और व्याख्याता छात्रों को तनाव के बारे में यथार्थवादी चेतावनी, सिफारिशें और आश्वासन देकर तनाव के बारे में जागरूकता पैदा करके छात्रों के बीच तनाव के स्रोतों को कम करने के लिए आवश्यक कदम उठाएं, जिसे तनाव टीकाकरण भी कहा जाता है। यदि उचित रूप से उठाए गए ये कदम निवारक दृष्टिकोण के रूप में कार्य करेंगे ताकि भविष्य में तनाव के नकारात्मक पहलुओं से बचा जा सके।

समस्या कथन– माध्यमिक स्तर के विद्यार्थियों में तनाव का उनके शैक्षिक उपलब्धि पर पड़ने वाले प्रभाव का अध्ययन।

अध्ययन का उद्देश्य–

1. माध्यमिक स्तर के विद्यार्थियों में तनाव का उनके शैक्षिक उपलब्धि पर पड़ने वाले प्रभाव का अध्ययन करना।
2. माध्यमिक स्तर के छात्रों में तनाव का उनके शैक्षिक उपलब्धि पर पड़ने वाले प्रभाव का अध्ययन करना।
3. माध्यमिक स्तर की छात्राओं में तनाव का उनके शैक्षिक उपलब्धि पर पड़ने वाले प्रभाव का अध्ययन करना।

अध्ययन की परिकल्पनाएँ– H_{01} अधिक, सामान्य एवं कम तनाव वाले विद्यार्थियों की शैक्षिक उपलब्धि में कोई सार्थक अन्तर नहीं है।

H_{02} अधिक, सामान्य एवं कम तनाव वाले छात्रों की शैक्षिक उपलब्धि में कोई सार्थक अन्तर नहीं है।

H_{03} अधिक, सामान्य एवं कम तनाव वाले छात्राओं की शैक्षिक उपलब्धि में कोई सार्थक अन्तर नहीं है।

शोध–विधि– वर्णनात्मक अनुसंधान के उपर्युक्त प्रकारों में से सहसम्बन्धात्मक सर्वेक्षण विधि को अध्ययनकर्त्ता ने अपनी समस्या के अध्ययनार्थ उपयुक्त पाया। अतः अध्ययन में सहसम्बन्धात्मक सर्वेक्षण विधि का प्रयोग किया गया है।

जनसंख्या– अध्ययन हेतु जनसंख्या में जौनपुर जनपद में उत्तर प्रदेश माध्यमिक शिक्षा परिषद द्वारा सम्बद्ध माध्यमिक विद्यालयों में कक्षा–11 के विद्यार्थियों को सम्मिलित किया गया है।

न्यादर्श– प्रस्तुत अध्ययन हेतु न्यादर्श का चयन जौनपुर जनपद के माध्यमिक विद्यालयों में से किया है। इन विद्यालयों के 10+2 स्तर के समस्त विद्यार्थी समष्टि है तथा अध्ययन के लिए चयनित विद्यार्थी न्यादर्श है।

न्यादर्श चयन विधि– प्रस्तुत अध्ययन में न्यादर्श के चुनाव हेतु यादृच्छिक प्रतिदर्शन विधि का प्रयोग किया गया है। प्रस्तुत अध्ययन में जौनपुर जनपद के 20 उत्तर प्रदेश माध्यमिक शिक्षा परिषद से सम्बद्ध माध्यमिक विद्यालयों का चयन कर माध्यमिक विद्यालयों में से कुल 500 विद्यार्थियों (250 छात्र एवं 250 छात्राओं) का चयन यादृच्छिक विधि से किया गया है।

प्रयुक्त उपकरण–

शैक्षिक उपलब्धि– शैक्षिक उपलब्धि के लिए विद्यार्थियों की हाईस्कूल परीक्षा में प्राप्त प्राप्तांकों को सम्मिलित किया गया है।

तनाव मापनी– डा0 जॉकी अख्तर, एसोसिएट प्रोफेसर, पी.जी. डिपार्टमेण्ट ऑफ साइकोलॉजी, करीम सिटी कॉलेज, जमशेदपुर (झारखण्ड) द्वारा निर्मित ''स्टूडेन्ट्स स्ट्रेस स्केल'' का प्रयोग किया गया है।

सांख्यिकी विधियाँ– आँकड़ों के विश्लेषण हेतु एनोवा (प्रसरण) विधि एवं टी–अनुपात सांख्यिकी विधियों का प्रयोग किया गया है।

प्रदत्तों का विश्लेषण एवं व्याख्या–

1. माध्यमिक स्तर के विद्यार्थियों में तनाव का उनके शैक्षिक उपलब्धि पर पड़ने वाले प्रभाव का अध्ययन–

H_{01} अधिक, सामान्य एवं कम तनाव वाले विद्यार्थियों की शैक्षिक उपलब्धि में कोई सार्थक अन्तर नहीं है।

तालिका–1

अधिक, सामान्य एवं कम तनाव वाले विद्यार्थियों की शैक्षिक उपलब्धि में अन्तर का प्रसरण–मान

Source	df	SS	MS	F	Table Value
Between Groups	2	93523.12	46761.56	16.80	.01(2,497)=4.66
Within Groups	497	1383547.35	2783.80		
Total	499	1477070.47	49545.36		

0.01 पर सार्थक

व्याख्या– प्रसरण–मान = (16.80) जो कि स्वतंत्रांश = (2, 497) पर एफ–अनुपात के क्रान्तिक मान 4. 66 से अधिक है, 0.01 पर सार्थक है। पूर्व निर्मित शून्य परिकल्पना अस्वीकृत होती है। परिणामतः अधिक, सामान्य एवं कम तनाव वाले विद्यार्थियों की शैक्षिक उपलब्धि में सार्थक अन्तर है।

सारणी सं0 1.1

अधिक, सामान्य एवं कम तनाव वाले विद्यार्थियों की शैक्षिक उपलब्धि के मध्यमानों के बीच टी–अनुपात में अन्तर

S.No.	Level	N	M	S_D	D	t-value
1	High	130	361.99	5.77	20.81	3.61*
	Moderate	234	382.80			
2	High	130	361.99	6.47	37.44	5.79*
	Low	136	399.43			
3	Moderate	234	382.80	5.69	16.63	2.92*
	Low	136	399.43			

माध्यमिक स्तर के अधिक, सामान्य एवं कम तनाव वाले विद्यार्थियों की शैक्षिक उपलब्धि का मध्यमान क्रमशः 361.99, 382.80 एवं 399.43 तथा तीनों के मध्य टी–मान क्रमशः 3.61, 5.79 एवं 2.92 है। सार्थक युग्म तुलना में अधिक तनाव वाले विद्यार्थियों की शैक्षिक उपलब्धि मध्यम एवं निम्न तनाव वाले विद्यार्थियों की तुलना में कम है जबकि कम तनाव वाले विद्यार्थियों की शैक्षिक उपलब्धि सामान्य तनाव वाले विद्यार्थियों की अपेक्षा अधिक है।

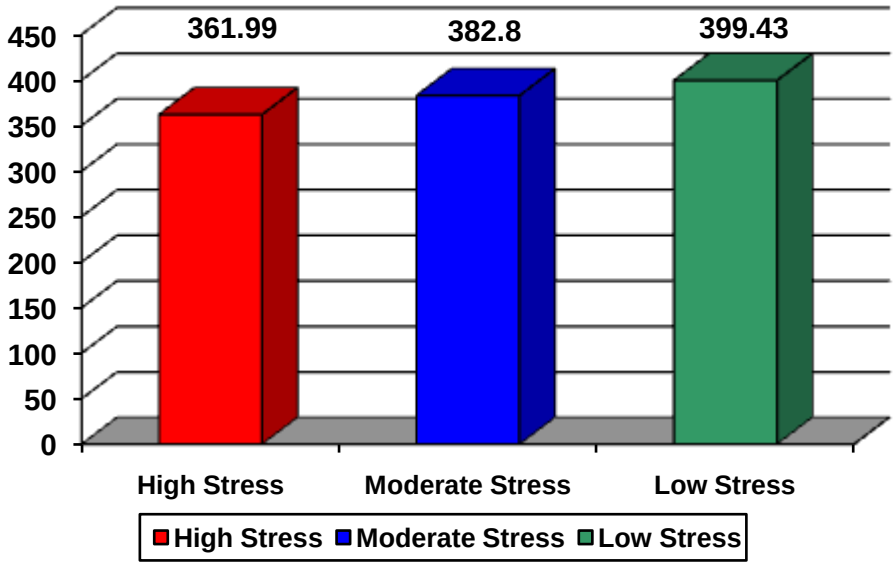

आरेख सं0 1 : अधिक, सामान्य एवं कम तनाव वाले विद्यार्थियों की शैक्षिक उपलब्धि के मध्यमानों का आरेख चित्र

2. माध्यमिक स्तर के छात्रों में तनाव का उनके शैक्षिक उपलब्धि पर पड़ने वाले प्रभाव का अध्ययन–

H_{02} अधिक, सामान्य एवं कम तनाव वाले छात्रों की शैक्षिक उपलब्धि में कोई सार्थक अन्तर नहीं है।

तालिका 2

अधिक, सामान्य एवं कम तनाव वाले छात्रों की शैक्षिक उपलब्धि में अन्तर का प्रसरण–मान

Source	df	SS	MS	F	Table Value
Between Groups	2	40376.28	20188.14	9.46	.01(2,247)=4.71
Within Groups	247	527125.32	2134.11		
Total	**249**	**567501.60**	**22322.25**		

0.01 पर सार्थक

व्याख्या– प्रसरण–मान = (9.46) जो कि स्वतंत्रांश = (2, 247) पर एफ–अनुपात के क्रान्तिक मान 4.71 से अधिक है, 0.01 पर सार्थक है। पूर्व निर्मित शून्य परिकल्पना अस्वीकृत होती है। परिणामतः अधिक, सामान्य एवं कम तनाव वाले छात्रों की शैक्षिक उपलब्धि में सार्थक अन्तर है।

सारणी सं0 2.1

अधिक, सामान्य एवं कम तनाव वाले छात्रों की शैक्षिक उपलब्धि के मध्यमानों के बीच टी–अनुपात में अन्तर

S.No.	Level	N	M	S_D	D	t-value
1	High	67	352.22	7.06	11.26	1.60
	Moderate	119	363.48			
2	High	67	352.22	8.07	34.29	4.25
	Low	64	386.52			
3	Moderate	119	363.48	7.16	23.04	3.22
	Low	64	386.52			

माध्यमिक स्तर के अधिक, सामान्य एवं कम तनाव वाले छात्रों की शैक्षिक उपलब्धि का मध्यमान क्रमशः 352.22, 363.48 एवं 386.52 तथा तीनों के मध्य टी–मान क्रमशः 1.60, 4.25 एवं 3.22 है। सार्थक युग्म तुलना में अधिक एवं सामान्य तनाव वाले छात्रों की शैक्षिक उपलब्धि निम्न तनाव वाले छात्रों की तुलना में कम है जबकि उच्च एवं सामान्य तनाव वाले छात्रों की शैक्षिक उपलब्धि में सार्थक अन्तर नहीं है।

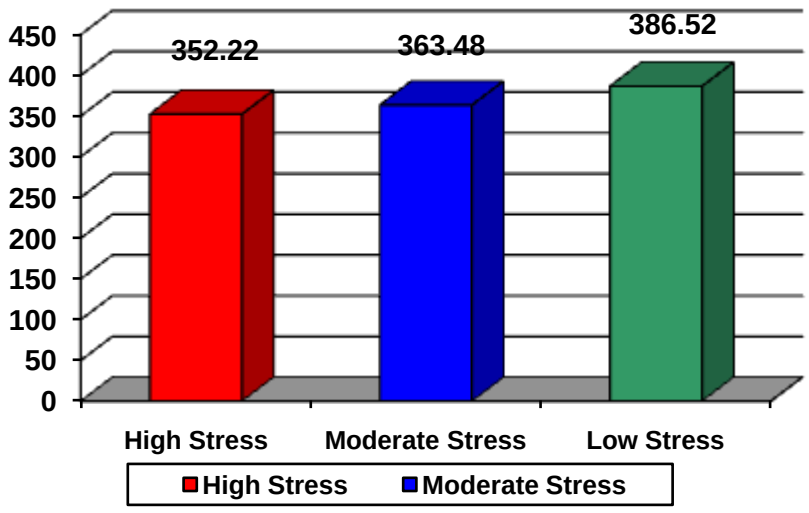

आरेख सं0 2 : अधिक, सामान्य एवं कम तनाव वाले छात्रों की शैक्षिक उपलब्धि के मध्यमानों का आरेख चित्र

3. माध्यमिक स्तर के छात्राओं में तनाव का उनके शैक्षिक उपलब्धि पर पड़ने वाले प्रभाव का अध्ययन–

H_{03} अधिक, सामान्य एवं कम तनाव वाली छात्राओं की शैक्षिक उपलब्धि में कोई सार्थक अन्तर नहीं है।

तालिका 3

अधिक, सामान्य एवं कम तनाव वाली छात्राओं की शैक्षिक उपलब्धि में अन्तर का प्रसरण–मान

Source	df	SS	MS	F	Table Value
Between Groups	2	81146.76	40573.38	14.17	.01(2,247)=4.71
Within Groups	247	707427.54	2864.08		
Total	**249**	**788574.30**	**43437.46**		

0.01 पर सार्थक

व्याख्या– प्रसरण–मान = (14.17) जो कि स्वतंत्रांश = (2, 247) पर एफ–अनुपात के क्रान्तिक मान 4. 71 से अधिक है, 0.01 पर सार्थक है। पूर्व निर्मित शून्य परिकल्पना अस्वीकृत होती है। परिणामतः अधिक, सामान्य एवं कम तनाव वाली छात्राओं की शैक्षिक उपलब्धि में सार्थक अन्तर है।

सारणी सं0 3.1

अधिक, सामान्य एवं कम तनाव वाली छात्राओं की शैक्षिक उपलब्धि के मध्यमानों के बीच टी–अनुपात में अन्तर

S.No.	Level	N	M	S_D	D	t-value
1	High	63	368.08	8.29	34.47	4.16
	Moderate	123	402.54			
2	High	63	368.08	9.50	48.58	5.11
	Low	64	416.66			
3	Moderate	123	402.54	8.25	14.11	1.71
	Low	64	416.66			

माध्यमिक स्तर के अधिक, सामान्य एवं कम तनाव वाली छात्राओं की शैक्षिक उपलब्धि का मध्यमान क्रमशः 368.08, 402.54 एवं 416.66 तथा तीनों के मध्य टी–मान क्रमशः 4.16, 5.11 एवं 1.71 है। सार्थक युग्म तुलना में अधिक तनाव वाली छात्राओं की शैक्षिक उपलब्धि सामान्य एवं निम्न तनाव वाली छात्राओं की तुलना में कम है जबकि सामान्य एवं निम्न तनाव वाली छात्राओं की शैक्षिक उपलब्धि में सार्थक अन्तर नहीं है।

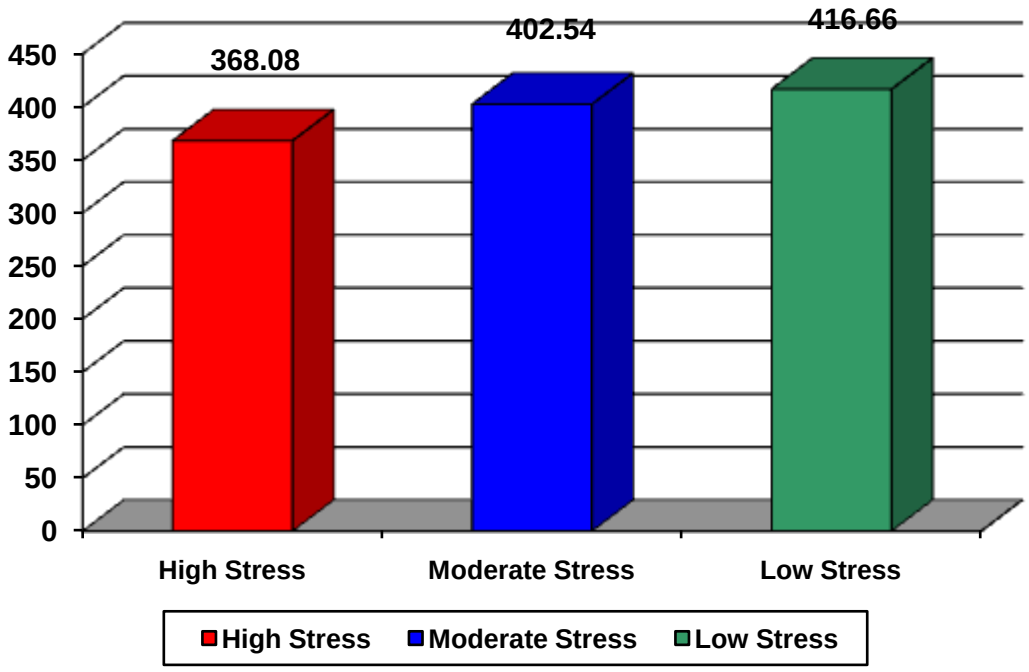

आरेख सं0 3 : अधिक, सामान्य एवं कम तनाव वाली छात्राओं की शैक्षिक उपलब्धि के मध्यमानों का आरेख चित्र

निष्कर्ष–

अध्ययन में निम्नलिखित निष्कर्ष प्राप्त हुये–

- अधिक तनाव वाले विद्यार्थियों की शैक्षिक उपलब्धि मध्यम एवं निम्न तनाव वाले विद्यार्थियों की तुलना में कम है जबकि कम तनाव वाले विद्यार्थियों की शैक्षिक उपलब्धि सामान्य तनाव वाले विद्यार्थियों की अपेक्षा अधिक है अर्थात् विद्यार्थियों में तनाव का उनके शैक्षिक उपलब्धि पर नकारात्मक प्रभाव है।
- अधिक एवं सामान्य तनाव वाले छात्रों की शैक्षिक उपलब्धि निम्न तनाव वाले छात्रों की तुलना में कम है जबकि उच्च एवं सामान्य तनाव वाले छात्रों की शैक्षिक उपलब्धि में अन्तर नहीं है अर्थात् छात्रों में तनाव का उनके शैक्षिक उपलब्धि पर नकारात्मक प्रभाव है।
- अधिक तनाव वाली छात्राओं की शैक्षिक उपलब्धि सामान्य एवं निम्न तनाव वाली छात्राओं की तुलना में कम है जबकि सामान्य एवं निम्न तनाव वाली छात्राओं की शैक्षिक उपलब्धि में अन्तर नहीं है अर्थात् छात्राओं में तनाव का उनके शैक्षिक उपलब्धि पर नकारात्मक प्रभाव है।

अध्ययन के परिणाम में तनाव और शैक्षणिक उपलब्धि के बीच एक महत्वपूर्ण एवं नकारात्मक संबंध की पहचान की गई। तनाव का कारण अत्यधिक पाठ्यक्रम के बोझ, अभिभावकों का विद्यार्थियों से अधिक उपलब्धि प्राप्त करने की अपेक्षा करना, विद्यार्थियों का स्वयं दूसरों से आगे निकलने की अत्यधिक कोशिश करना इत्यादि कारण हो सकता है। **खान और कौसर (2013).** ने अध्ययन के निष्कर्ष में पाया कि कि तनाव निश्चित रूप से अकादमिक प्रदर्शन को नकारात्मक रूप से प्रभावित करता है। **अब्दुल्ला, सिटी फातिमा एवं अन्य (2020).** के अध्ययन में सहसंबंध विश्लेषण से पता चला कि परिसर का जीवन, वित्तीय और संबंध छात्रों के शैक्षणिक प्रदर्शन पर महत्वपूर्ण प्रभाव डालते हैं। इसके अलावा, प्रतिगमन विश्लेषण से पता चला है कि तनाव का स्तर जितना अधिक होगा, शैक्षणिक प्रदर्शन उतना ही कम होगा।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची :

- असवाल, सीमा (2002) **लाइफ स्टाइल स्ट्रेस एण्ड कोपिंग विहैवियर ऑफ वर्किंग वुमेन,** पी–एच.डी. साइको, सी.एस.जे.एम. विश्वविद्यालय, कानपुर।
- Abdullah, Siti Fatimah et. al. (2020). Stress and Its Relationship with the Academic Performance of Higher Institution Students, *International Journal of Advanced Research in Education and Society*, Vol. 2, No. 1, pp. 61-73.
- Khan, M.J. and Altaf, S. Kausar,H.(2013). Effect of Perceived Academic Stress on Students' Performance, FWU Journal of Social Sciences, 7(2), 146-151
- Kadapatti, Manjula G. and Vijayalaxmi (2012). Stressors of academic stress - a study on pre-university students, *Indian J.Sci.Res.*, 3(1) : pp. 171-175.
- McKean,M.,Misra, R.,West, S, and Tony , R.(2000).College Students' Academic Stress and Its relation to Their Anxiety, Time Management, and Leisure Satisfaction. American Journal of Health Studies, 16, 41-51
- Radcliff, C. and Lester, H.(2003). Undergraduate medical Education. Perceived Stress during undergraduate medical training, A qualitative study. Medical Education, 37(1), 32-38